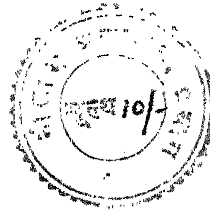
चेतन

उपेन्द्रनाथ अश्क

नीलाभ प्रकाशन
इलाहाबाद—१

पहला संस्करण १९५२
दूसरा संस्करण १९५३
तीसरा संस्करण १९५६
चौथा संस्करण १९६४

मूल्य [redacted]



प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन गृह,
५, खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद-१

मुद्रक
पियरलेस प्रिंटर्स,
४, बाई का बाग़, इलाहाबाद

पाठकों के लिए एक संकेत

चेतन—पंजाबी निम्न-मध्यवर्ग के एक युवक के जीवन-संघर्ष की एक झलक प्रस्तुत करता है। उपन्यास का नायक वही है। लेकिन क्या वास्तव में वही उपन्यास का नायक है? क्या बस्ती ग़ज़ाँ, जालन्धर, लाहौर और शिमला की तंग बोसीली गलियाँ, उनके ऊँचे-नीचे मकान और उनकी दीवारें (जो उनके बीच रहने वालों के भाग्य पर हर तरह से छा जाती हैं) या फिर इन बस्तियों का तंग-दस्त, तंग-दिल छोटे बाबू लोगों का दबा-घुटा वर्ग (जिस पर हाय-हाय की फटकार बरसती रहती है) इस उपन्यास का नायक नहीं?

चेतन इसी वर्ग का एक भावुक नमूना है। मध्य-वर्ग का यह व्यक्ति—यह चेतन—अपनी अकेली हस्ती को बहुत बड़ी चीज़ समझता है। यह बड़ी और कीमती चीज़, जब ठोस वास्तविकता की चट्टानों से टकराती है तो जतन से पाले हुए उसके सपने, प्यारी-प्यारी विडम्बनाएँ और सुनहरे आदर्शवाद सिसकियाँ लेने लगते हैं। ठोंकरों पर ठोंकरे, ज़हर के घूँट पर घूँट, अन्दर ही अन्दर नफ़रत और गुस्से के उबाल पर उबाल और हार-थक कर सजीले सपनों का ज़िन्दगी के बाट-बखरों से समझौता! और तब वह कीमती चीज़—वह उसकी अपनी अकेली हस्ती—बड़ी दर्दनाक बन जाती है। 'ईश्वर' और धर्म की तरह 'मनुष्यता,' 'संस्कृति,' 'कला,' 'प्रेम'—सब पूँजी के बाज़ार में ही अपनी असली कीमत रखते हैं, इस सच्चाई को चेतन बड़ी करारी चोटें खा कर सीखता है। चुपचाप अपने आँसू अन्दर पी कर वह सीखता चला जाता है।

वह पहले 'प्रकृति की गोद में अपनी चोटें छिपाता था, तो अब कला की शरण में आ जाता है'—क्योंकि इसमें 'अपने कटु-वातावरण से रूसके

पलायन' में 'आत्माभिव्यक्ति' का सुख है। तभी उसको कुछ मिलता है—कुछ !....किन्तु कला में भी उसको निष्कृति का असली मार्ग नहीं मिलता। क्योंकि वह अभी तक अपनी अकेली हस्ती को बड़ी चीज़ समझता है। हालाँकि वह पूरे सिलसिले की एक बड़ी कड़ी है। उससे अलग कुछ नहीं।

और यों केवल चेतन इस उपन्यास का नायक नहीं रह जाता। इसका असली नायक एक-के-पीछे-एक लगा हुआ इन कड़ियों का वह सिलसिला है, जिनके बिना चेतन महज़ हवा में हाथ-पाँव मारने वाली एक छाया की तरह रह जाता है। इस सिलसिले के सब से भरे-पूरे और सजीव व्यक्ति हैं—चेतन की माँ—सब्र और संतोष की देवी; उसका पिता—नशे और क्रूरता का देव; उसके भाई साहब—हर ख़रख़शे से बचने के लिए छड़ी उठा कर बाहर निकल जाने वाले; कुन्ती—उसके प्यार की पहली चीज़; और उसके सब से गहरे प्रेम को पाने वाली नीला और उस प्रेम की आड़—उसकी भोली-भाली बीवी चन्दा ! और चेतन के सामाजिक जीवन को बनाने वाले अन्य दूसरे लोग—जैसे 'हुनर' साहब—गाँवों से आ कर शहर में रंग जमाने वाले शायर; सरदार जगदीश सिंह—समाज के शरीफ़ लुटेरों के हाथ का खिलौना; विशेषकर कविराज रामदास—चेतन जैसे होनहार नवयुवकों का 'भला करने' और उनकी प्रतिभा को 'चूसने वाली' एक सब से मोटी, सब से चिकनी, चालाक और अच्छी-भली जोंक; फिर म्यूज़िक कॉलेज के डायरेक्टर और संगीत विशारद बनने के सपने लेने वाला ग़रीब दुर्गादास....!

फिर चेतन क्या है ?

जिस पर्दे पर इन सब लोगों का फ़िल्म चलता है, चेतन वह पर्दा है। इस हंगामे से अलग वह सिर्फ़ एक छाया है, जो पाठक को कभी-कभी उदास कर देती है—कभी-कभी बहुत उदास कर देती है, क्योंकि वह सारा फ़िल्म उसी पर अंकित हुआ है। लेखक ने स्वयं उसे एक कैनवस का स्थान और दर्जा दिया है।

और यों यह उपन्यास निम्न-मध्य-वर्ग के प्रतीक एक व्यक्ति के मानस-पट पर हर उस घटना-दुर्घटना, आशा-आकांक्षा, सफलता-असफलता, प्यार

और चोट और उनकी ऊहापोह का उपन्यास है, जो निचले मध्यवर्गीय जीवन का ताना-बाना कसते और ढीला करते हैं।

लेकिन इस वर्ग के प्रतीक—इस चेतन ने एक बुद्धिजीवी कलाकार की राह पकड़ ली है। यह राह असंतोष की है, झल्लाहट की है, अपने और दुनिया भर के ऊपर क्रोध की है, इन झल्लाहटों—याने इनके कारण को—दूर करने की है। भागने की नहीं, अपने आपको—याने समाज को बदलने की है।

मध्य वर्ग का पाठक इस उपन्यास में अपने वर्ग का एक नमूना इतने नज़दीक से देख लेता है कि उस परिवार का अन्दर-बाहर, उनके पीछे और आगे का भरा-पूरा 'क्लोज़-अप-चित्र'—इतनी ओर से लिया गया। उसकी आँखों के सामने आता है कि इसका जोड़ उसे हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में कम—और शायद ही कहीं—मिलेगा।

रही उपन्यास की कला तो वह हमारे पुराने मंदिरों की मूर्तिकला की याद दिलाती है, जिनकी दीवारें मूर्तियों से भरी होती हैं। एक बीच की बड़ी मूर्ति, फिर अगल-बगल दो-चार उससे छोटी, फिर इनके चारों ओर इन मूर्तियों की कथा चित्रित करती हुई अनेक मूर्तियाँ....देवी देवता, उनके गण, उनके सेवक और उनकी लीलाएँ....*(शमशेर बहादुर सिंह की एक आलोचना के आधार पर)*

●

कोई उत्कृष्ट कलाकृति लेखक ही से नहीं, पाठक और आलोचक से भी श्रम और समझदारी की माँग करती है।

चेतन

उस जागरूक (अन्तर अथवा वाह्य) द्वन्द्व

के नाम

जो आज के निम्न-मध्य-वर्गीय का

भाग्य ही नहीं, सम्बल भी है।

१ तंग आ कर आख़िर एक दिन चेतन चुपचाप अपनी भावी पत्नी को देखने के लिए बस्ती ग़ज़ाँ की ओर चल पड़ा।

बस्ती ग़ज़ाँ जालन्धर से कुछ अधिक दूर नहीं। दोनों में इतना ही अन्तर है कि सुन्दर-से-सुन्दर घोड़े-ताँगे वाला भी बड़ी ख़ुशी से फ़ी सवारी दो पैसे ले लेता है और कभी-कभी किसी सूखी-सड़ी कंजूस बुढ़िया को एक पैसे पर ले जाने को भी तैयार हो जाता है। किसी ज़माने में यह ग़ज़ जाति के लम्बे-तगड़े पठानों की बस्ती थी, लेकिन अब इसमें पतले-दुबले, तपेदिक के रोगी-से, हिन्दू-मुसलमान दोनों जातियों के लोग आबाद हैं। न जाने ये बाहर से आ कर वहाँ बस गये हैं या उन्हीं सुन्दर, सुगठित, बलिष्ठ पठानों के वंशज हैं।

चुपचाप अपने मन में उस लड़की का चित्र बनाता (जिसकी चर्चा इतने दिनों से उसके घर में बराबर हो रही थी) चेतन चला जा रहा था। दिन ढल रहा था और बाज़ारों में छिड़काव के कारण मिट्टी की सोंधी-सोंधी महक फैल रही थी। चारों ओर ख़ासी चहल-पहल थी। 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में अपनी-अपनी दूकानों के तख़्तों पर बैठे दो कलावन्त क्लार्नेटों पर मुँह फुला-फुला कर अपनी कला का परिचय दे रहे थे। कुछ आगे चौरस्ती अटारी में, गा कर किस्से बेचने वाले दो पंजाबी कवि तहमद लगाये, लट्ठे की खुले गले वाली कमीज़ें पहने, उल्टी-सीधी पगड़ियाँ बाँधे, पान से ओठ लाल किये, अनपढ़ सास और पढ़ी-लिखी बहू की लड़ाई का किस्सा गा-गा कर सुना रहे थे और भीड़ जैसे अपनी ही कटी हुई पतंग को दूसरे के हाथों तार-तार होते देख, ख़ुश होने वालों की भाँति, बड़े मज़े से सुन रही थी।

'सूदाँ' के बड़े खुले चौक में ट्रंक वालों ने बाहर चौक में लगी हुई, एक-दूसरे के ऊपर रखे ट्रंकों की कतारें शाम के ग्राहकों के लिए झाड़-पोंछ कर चमका दी थीं। 'छत्ती गली' के कोने पर दीनू हलवाई ने अपने मिठाई के थालों को बाहर सजा दिया था और गरमागरम इमरतियाँ भूखे ग़रीबों की

भूख को और भी तेज़ कर रही थीं।

इन सब की उपेक्षा करता हुआ चेतन छत्ती गली में दाखिल हुआ और 'बड़ा बाज़ार' की भीड़ से किसी तरह बचता-बचाता बस्ती के अड्डे पर आ कर एक ताँगे में बैठ गया। ताँगे में उस समय केवल दो ही सवारियाँ बैठी हुई थीं। चेतन चाहता था कि चार बजे से पहले ही बस्ती पहुँच जाय। ताँगे वाले से उसने पूछा, "क्यों भाई कितनी देर है?"

"बस एक सवारी और ले लूँ बाबू जी, चलता हूँ!"

तभी एक हाँफते-काँपते लाला दूर से आते दिखायी दिये। ताँगे वाले ने वहीं से हाँक लगायी, "ताँगा बस तैयार ही है सेठ जी!"

और सेठ जी आ कर पिछली सीट पर चेतन के साथ लद गये।

तब ताँगे वाले ने फिर ज़ोर से पुकारा—"चलो भाई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को!"

चेतन का धैर्य जाता रहा। चिढ़ कर उसने कहा, "अब चल भी! चार सवारियाँ तो हो गयीं, चालान करायेगा क्या?"

हँस कर ताँगे वाला बोला, "आप का क्या जाता है बाबू जी, आगे बैठा लूँगा।"

चेतन चीखा, "मुझे जल्दी है और फिर चार सवारियाँ तो हो गयीं।"

ताँगे वाले ने लापरवाही से उत्तर दिया, "एक सवारी तो सरकार यहीं उतर जायगी।"

चेतन का जी चाहा, ऐसे पाजी ताँगे वाले को छोड़ कर दूसरे पर जा बैठे, पर अन्य कोई ताँगा तैयार न था और उसे जल्दी थी। बोला, "अच्छा ज़रा तेज़ी से चल, एक सवारी के पैसे मैं और दे दूँगा।

प्रसन्न हो कर ताँगे वाले ने दुआ दी, टिटकारी भरी और ताँगा हवा से बातें करने लगा।

२ बस्ती ग़ज़ाँ को आसानी से दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक वह जो उत्तर और दक्षिण के दो पुराने, बड़े महराबदार दरवाज़ों के अन्दर, छोटी ईंटों के, अँधेरे, सीलदार मकानों को अपनी चार-दीवारी में लिये अपनी दुनिया में मस्त है—इसमें छोटा, तंग, टेढ़ा मेढ़ा, कटे-फटे फ़र्श पर अपने निवासियों के दिलों की भाँति, गहरे गढ़े लिये हुए एक ही बाज़ार है। दूसरा वह, जो बड़ी ईंटों के नये ढंग पर बने हुए मकानों से सजा है। इसमें यद्यपि बाज़ार के नाम पर, अड्डे की चन्द दुकानें ही हैं, लेकिन इसकी गलियाँ बड़ी चौड़ी हैं और हाल ही में उन पर म्युनिसिपल कमेटी का काला, बेडौल, तारकोल की सड़कों पर मस्त हाथी की तरह झूम कर चलने वाला इंजन भी फिर गया है। इसके अतिरिक्त इस हिस्से की एक गली में लड़कियों का एक मिडिल स्कूल भी है और नगर की ओर दो-तीन नयी सुन्दर कोठियों के सामीप्य का सौभाग्य भी इसे प्राप्त है। यह हिस्सा नगर के साथ बस्ती वालों के बढ़ते हुए मेल-मिलाप और पुराने हिस्से के कौटुम्बिक झगड़ों के कारण धीरे-धीरे अपना एक अलग अस्तित्व पा गया है।

इन दोनों भागों के बीच—एक के महराबदार दरवाज़े और दूसरे की दूकानों के सामने—नगर से आने वाली सड़क आ कर समाप्त हो गयी है और प्रातः ६ बजे से रात के ११ बजे तक हर घड़ी यहाँ ताँगे वालों की आवाज़ें सुनी जा सकती हैं।

सड़क के साथ पुराने भाग की ओर बड़ी नाली है और इसके साथ ही मकानों की दीवारों तक, खुली-सी जगह है। इस तरह सड़क, इसके पास का स्थान और नाली के साथ की खुली जगह—सबको मिला कर एक चौक-सा बन गया है। पुराने भाग की ओर इसी चौक में बस्ती के बेकार और भिखमंगे धूप में दिन भर बैठे ऊँघा करते और नये हिस्से की दूकानों पर बस्ती के बेफ़िक्रे, पान चबाते, गँडेरियाँ चूसते और आपस में गाली-गलौज किया करते हैं।

इसी चौक में आ कर चेतन चुपचाप ताँगे से उतरा। उसने ताँगे

वाले को पैसे दिये और लपक कर बायीं तरफ़ नये हिस्से की एक गली की ओर बढ़ा। तेज़ चलता हुआ वह लड़कियों की पाठशाला के पास से गुज़रा और एक उड़ती हुई दृष्टि उसने उसके बन्द दरवाज़े पर भी डाली। गली के कोने वाले मकान के सामने जा कर वह रुका और उसने ज़ोर से आवाज़ दी, "मुल्कराज, मुल्कराज !"

एक छोटे कद के पतले-दुबले लड़के ने किवाड़ खोले और जैसे हँसने की नक़ल उतारते हुए कहा, "आओ, आओ !"

"नहीं मैं आऊँगा नहीं !"—यह कहता हुआ चेतन अन्दर चला गया।

कमरा छोटा और अँधेरा था। फ़र्श पर एक पुरानी दरी बिछी हुई थी, जिस पर पुस्तकों के अम्बार लगे थे। वहीं जा कर अपने स्थान पर बैठते हुए मुल्कराज ने पुस्तकों से बची हुई दरी पर कुछ खाली जगह की ओर इशारा किया और चेतन से कहा, "बैठो, बैठो !"

"नहीं मैं बैठूँगा नहीं," यह कहते हुए चेतन बैठ गया और फिर तनिक खिसियानी-सी मुस्कराहट के साथ उसने कहा, "इतना न पढ़ो, मर जाओगे !"

मुल्कराज केवल हँस दिया।

"देखो," चेतन बोला, "मुझे जल्दी है। एक मामले में तुम्हारी सहायता लेने आया हूँ। यहाँ तुम्हारी गली में जो स्कूल है, उसमें 'बेरी वाली गली' के पंडित दीनबन्धु की लड़की पढ़ती है।"

"चन्दा, हाँ, हाँ !"

"तुम उसे जानते हो ?"

"अरे मैं, बस्ती का रहने वाला, बस्ती की लड़कियों को न जानूँगा ? और फिर वे तो हमारे दूर के शरीक* होते हैं।"

"लड़की यहीं पढ़ती है न ?"

"हाँ, हाँ !"

---

*शरीक = खानदानी !

"तो उठो। छुट्टी होने वाली होगी, मुझे पहचान नहीं, वह निकले तो ज़रा बता देना।"

उठते हुए एक अर्थ-भरी दृष्टि से चेतन की ओर देख कर मुल्कराज ने कहा, "क्यों ?" और अपने वही साधारण मैले कपड़े पहने, वह गली में आ गया। जब चेतन भी बाहर निकल आया तो मुल्कराज ने किवाड़ बन्द करके कुण्डी लगा दी।

गली के सामने चौक में, एक हाथ में छोटी-सी बाँसुरी थामे उस पर 'जग विच मैनूँ कमलिए हीरे' की तर्ज़ का कोई गीत गाता और दूसरे से डुगडुगी बजाता हुआ, एक मदारी लोगों को इकट्ठा करने की कोशिश में था। दूकानों पर बैठे हुए बेफ़िक्रे और अपने फटे हुए कुरतों और पैबन्द लगे तहमदों में मस्त बेकार वहाँ जमा होने लगे थे और कहीं से छोटे-छोटे नंग-धड़ंग बच्चों की टोली, शैतानी फ़ौज की तरह, उधर उमड़ पड़ी थी। अड्डे के ताँगे वाले तब और भी ज़ोर-ज़ोर से सवारियों को आकर्षित करने के लिए आवाज़ें लगाने लगे और जैसे मदारी की बाँसुरी और उनकी आवाज़ों में भारी होड़ लग गयी।

मुल्कराज और चेतन उस गली से निकल कर प्रकट तमाशा देखने के उद्देश्य से भीड़ के पास आ खड़े हुए। गली की ओर देखते हुए मुल्कराज ने कहा, "अब छुट्टी होने ही वाली है।"

तभी छोटी-छोटी लड़कियाँ अपनी तखतियाँ और बस्ते लिये पाठशाला के फाटक से निकलीं और पेड़ की डाली से भिन्न दिशाओं को उड़ जाने वाली चिड़ियों की तरह बिखर गयीं।

मुल्कराज बोला, "अब कुछ देर बाद ही ऊँचे दर्जों में भी छुट्टी होगी।"

चेतन ने जैसे यह बात नहीं सुनी, मुल्कराज के कंधे पर हाथ रखते हुए उसने पूछा, "तो तुम्हें पसन्द नहीं !"

"पसन्द को तो कोई ऐसी बुरी वह नहीं, पर तुम्हें अपनी राय दे दी।" मुल्कराज ने कंधे सिकोड़ते हुए कहा, "ढीली-ढाली, सुस्त, मझोले कद की लड़की है। साधारण युवतियों की तरह मैंने उसे कभी हँसते-बोलते, इठलाते-

खेलते नहीं देखा। तुम ठहरे चालाक चुस्त! तुम्हारे साथ उसकी निभ सकेगी, कह नहीं सकता।"

"रंग कैसा है?" चेतन ने पूछा।

"गेहुआँ है, गोरा तुम उसे नहीं कह सकते।"

चेतन का उत्साह मन्द पड़ गया। उसने सोचा कि वहीं से वापस हो जाय। फिर खयाल आया—माँ ने पूछा तो क्या जवाब दूँगा और स्वयं ही सोच लिया—कह दूँगा कुरूप है। लेकिन फिर अन्तर में किसी ने कहा—कौन जाने सुन्दर ही हो! मुल्कराज बस्ती ही का रहने वाला है, उनके घराने में से ही। शायद वह न चाहता हो कि उनके घराने की लड़की को ऐसा अच्छा वर मिले। और सन्देह की एक दृष्टि मुल्कराज पर डाल कर अनमना-सा वह तमाशा देखने लगा।

सड़क की ओर जिन मकानों की खिड़कियाँ खुलती थीं, उनमें बच्चों के नन्हें चेहरे झाँकने लगे थे। किसी-किसी खिड़की की चिलमन के पीछे, प्रातः से संध्या तक काम-काज में जुटी रहने वाली, कोई पर्देवाली गृहिणी भी आ खड़ी हुई थी। खेल कोई नया न था। वही तीन सींगों वाला बैल, वही रुपया पैदा करने वाला जादू का छूमंत्र और गोली गुम करने वाली थैली! किन्तु मदारी की बातें ही ऐसी दिलचस्प थीं कि कुछ क्षण तक चेतन उन में खो गया और यद्यपि उसके कानों में मदारी के शब्द स्वप्न-संसार के शब्दों की भाँति सुनायी देते रहे, किन्तु उसकी कल्पना के पर्दे पर अनायास कई प्रकार के चित्र अंकित हो चले। कल तक ये सब चित्र सुन्दर कोमलांगी तरुणियों के चित्र थे। पर आज वे सब असुन्दर बन-बन आते। वहीं खड़ा वह एक बार फिर उन कुरूप चित्रों को उन्हीं सुन्दर तस्वीरों में परिणत करने का प्रयास कर रहा था, पर बार-बार वही असुन्दर, मझोले, गेहुँएँ रंग के चित्र उसकी आँखों में आते और फिर सब कुछ जैसे गडमड हो जाता। खीझ-खीझ कर वह तमाशे में ध्यान जमाता, किन्तु कल्पना उसे कहीं-का-कहीं ले जाती!

तभी मुल्कराज ने उसके बाजू को छूते हुए धीरे से कहा, "छुट्टी हो

गयी है, बड़े दर्जों की लड़कियाँ आने लगी हैं ।"

चेतन चौंक कर मुड़ा और दोनों कुछ तिरछे हो कर ऐसे खड़े हो गये कि न मालूम हो कि तमाशा देख रहे हैं, न मालूम हो कि बाज़ार में किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

एक सुन्दर बारह-तेरह वर्ष की लड़की, हाथ में किताबें थामे मानो माप-माप कर क़दम रखती हुई, जैसे अपनी चाल की सुन्दरता से अभिज्ञ, तीन-चार सहेलियों के साथ जा रही थी । जाते-जाते उसने एक चंचल दृष्टि उधर भी डाली । चेतन का दिल धक-धक करने लगा और उसके गाल सुर्ख़ हो गये ।

अनायास ही उसने मुल्कराज के बाजू को छुआ । इशारे से मुल्कराज ने बता दिया कि यह नहीं ।

चेतन शरमिन्दा-सा चुप खड़ा हो गया, फिर उसने कहा, "मैं चलता हूँ ।"

"अब तो वह आने ही वाली है ।"

"नहीं मैं चलता हूँ ।"

"पागल हो गये हो ?"

इस बीच में छोटी-बड़ी लड़कियों की कई टोलियाँ निकल गयीं । पर चेतन कल्पना-ही-कल्पना में उस चंचल किशोरी का चित्र देखने में इतना मस्त था कि शेष कौन आया कौन गया, इसकी उसे सुध न रही । तभी मुल्कराज ने उसके कंधे को छुआ और जैसे अपने ही कन्धे से बात करते हुए धीरे से कहा, "वह आ रही है ।"

उत्सुकता से चेतन ने देखा—एक मझले कद की, कुछ मोटी-सी, गेहुँए रंग की लड़की जैसे घर ही के धुले, मटमैले कपड़े पहने, सीधी-साधी चाल से चली आ रही है । उसके दोनों हाथों पर स्लेट थी, जिस पर लगा हुआ किताबों का अम्बार जैसे उसके वक्ष का सहारा लिये पड़ा था । उसकी आँखें जैसे धरती में गड़ी जा रही थीं ।

चुपचाप वह उसके पास से हो कर गुज़र गयी ।

मदारी का खेल खत्म हो गया था। भीड़ के ऊपर से पैसों की थाली वाला हाथ उसने चेतन के आगे कर दिया। लाचारी से एक "उँहुँ" कर के चेतन वहाँ से चल पड़ा और ताँगे की पिछली सीट पर जा बैठा।

मुल्कराज ने सड़क पर ही से पूछा, "क्यों ?"

चेतन जैसे विवशता से सिर्फ़ मुस्करा कर रह गया।

मुल्कराज बोला, "मैंने तो कहा था शादी...."

चेतन ने बात काट कर कहा, "इस मोटी-मुटल्ली लड़की से ? हरगिज़ नहीं !"



२

इसी वर्ष स्थानीय कॉलेज से चेतन ने बी० ए० की परीक्षा दी थी और उसकी माँ को उसके विवाह की चिन्ता लग गयी थी। लाहौर की पढ़ाई का खर्च सह सकने की शक्ति उनमें नहीं थी। इतना भी न जाने कैसे हो गया ! पिता का अपना ही खर्च मुश्किल से चलता था। माँ ने जैसे-तैसे अब तक चेतन की शिक्षा का प्रबन्ध किया था। पर उसे लाहौर भेजना तो उस के बस के भी बाहर था। गहने थे, पर कितने ? और वे भी न जाने कहाँ-कहाँ गिरवी रखे हुए थे ! इन्हीं कारणों से अब वह चाहती थी कि उसका यह बेटा, जब इतना पढ़-लिख गया है तो उसका कर्तव्य है कि कहीं नौकरी करे, घर-बार बसाये और इस प्रकार शीघ्र ही नौकरी से रिटायर होने वाले अपने पिता और गृहस्थी के झंझटों से रिटायर होने वाली माँ को सहारा दे।

किन्तु चेतन की उच्चाकांक्षा इस तरह सीमित होने को तैयार न थी। कारागार के सीखचों में बन्द व्यक्ति के अरमानों की भाँति वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। यद्यपि परीक्षा-फल निकलने से कई दिन पहले उसने अपने ही स्कूल में नौकरी कर ली थी और जिन दर्जों की बैंचों पर बैठ कर अध्यापकों की झिड़कियाँ सुनी थीं, उन्हीं में अब अध्यापक की कुर्सी को

सुशोभित करने का गर्व भी उसने अनुभव कर लिया था, तो भी यह कोल्हू के बैल का-सा जीवन उसे पसन्द न था। लाहौर के किसी कॉलेज के बदले स्कूल जैसे उस स्थानीय कॉलेज में बी० ए० तक पढ़ने के कारण कॉलेज-जीवन के जिन अनुभवों से वह वंचित रह गया था, उन्हें एक बार लाहौर जा कर प्राप्त कर लेने की उत्कट लालसा उसके मन में, जैसे विवश हो, दबी पड़ी थी। वह चाहता था कि यदि बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाय तो जैसे भी हो, लाहौर जा कर एम० ए० या एल०-एल० बी० करने का प्रयत्न करे।

जब वह लाहौर में शिक्षा पाये हुए अपने मुहल्ले के मित्रों को देखता तो अपने आप को उनके सामने निरा स्कूल का छात्र पाता। क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या देशी, क्या विदेशी—सभी विषयों पर वे बड़ी सुगमता से अँग्रेज़ी में धारा प्रवाह बोलते चले जाते थे। स्वयं उससे तो अँग्रेज़ी का एक शुद्ध वाक्य भी न बोला जाता था। इसलिए लाहौर भाग जाने को उसका मन छटपटाया करता था। तभी एक दिन बस्ती से लकवे की बीमारी से लाचार एक वृद्ध महाशय अपने हिलते हुए शरीर को डण्डे के सहारे थामे, एक दूसरे व्यक्ति के कंधे पर हाथ रखे, उसके घर आये। बैठक के साथ जो कमरा था, चेतन उस समय उसी में बैठा कहानियों की एक पुस्तक पढ़ने का प्रयास कर रहा था। प्रयास इसलिए कि पढ़ने की अपेक्षा वह स्वयं कहानी लिखने को अधिक व्यग्र था, पुस्तक तो वह केवल प्रेरणा के लिए पढ़ रहा था। उसने कहानी लिखने का प्रयत्न किया था, पर वह सफल न हो पाया था। किसी काग़ज़ पर दो, किसी पर चार और किसी पर दस पंक्तियाँ तक लिख कर वह फेंक चुका था और पुनः कहानियों की पुस्तक पढ़ने में निमग्न हो गया था।

मकान के बाहर, मुहल्ले के खुले चौक में, खड़े हो कर उन वृद्ध के साथ आने वाले व्यक्ति ने चेतन के दादा का नाम ले कर आवाज़ दी।

चेतन के दादा भोजन करके बड़े इतमीनान से ऊपर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उन अपरिचित व्यक्तियों को अपना नाम पुकारते सुन, हुक्का हाथ में ही लिये, वे नीचे बैठक में आ गये और उन्हें सादर बैठा कर आप भी बैठ

गये। इसके बाद उन आगन्तुकों की बातें सुन कर दादा के चेहरे पर जो उल्लास खेलने लगा था और धीरे-धीरे होने वाली बातों की जो भनक चेतन के कान में पड़ी थी, उससे उसने जान लिया था कि उन महानुभावों के आने का प्रयोजन क्या है। वास्तव में ब्राह्मण जाति के निम्न-मध्य-वर्ग में अच्छे पढ़े-लिखे और रोज़गार से लगे हुए लड़कों का अभाव था। इसी कारण जो लोग उसकी प्रतिभा का पता पा कर और यह जान कर कि कॉलेज से निकलते ही वह अपने स्कूल में चालीस रुपये मासिक की नौकरी प्राप्त करने में सफल हो गया है, उनके घर आया करते थे, उनकी बातों से वह पूरी तरह परिचित था। उसे पूरा विश्वास था कि अभी उसके दादा उसे आवाज़ देंगे और उसे कुछ मनोरंजन का सामान मिलेगा। पर ऐसा नहीं हुआ। वह प्रकट पुस्तक में ध्यान जमाये इसी बात की प्रतीक्षा करता रहा, पर उसके दादा ने कोई आवाज़ न दी और कुछ बातें करने के बाद वे ऊपर, सम्भवतः चेतन की माँ से कुछ पूछने चले गये।

ऐसी दशा में पहले वह स्वयं उठ कर बैठक में आ जाया करता था और आगन्तुकों को अवसर दे दिया करता था कि वे उससे बातें करके विवाह सम्बन्धी उसके विचारों को जान लें या फिर वह अपने मित्र अनन्त को बुला लाता था और वे दोनों मिल कर आगन्तुकों को लड़कियों के पिता होने का दण्ड दिया करते थे। किन्तु उस दिन दादा के चले जाने पर भी वह उठ कर वहाँ न जा सका। लकवे के कारण शरीर-कम्पन की बीमारी में ग्रसित, प्रतिक्षण अत्यन्त दयनीय रूप में अपने हाथ और गर्दन को हिलाते रहने वाले, उन बुज़ुर्ग की आकृति में कुछ ऐसी बात थी कि वह उनसे किसी तरह के परिहास का विचार मन में न ला सका। उनका स्वर इतना धीमा, गम्भीर और संयत था कि साधारण लोगों की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व से अनायास ही श्रद्धा हो आती थी। भाग कर पास की गली से अपने मित्र अनन्त को बुला लाने की इच्छा भी तब उसे नहीं हुई।

कुछ देर बाद दादा ने एक काग़ज़ उनके हाथ में ला कर दिया। बड़ी कठिनाई से उसे अपने काँपते-से हाथ में थाम कर, उन्होंने अपनी जेब से

ऐनक का डिब्बा निकाला और उसे अपने शरीर से सटा कर खोलने का प्रयास करने लगे। तब जैसे चौंक कर उनके साथ आये हुए व्यक्ति ने झट उसे खोल कर उन्हें दे दिया। सफ़ेद कमानी की साधारण सस्ती ऐनक—उसे बड़ी कठिनाई से नाक पर लगा कर उन्होंने काग़ज़ पढ़ा और लपेट कर जेब में रख लिया। चेतन समझ गया, उसके दादा ने उसकी माँ से पूछ कर चारों अंग* लिख कर दिये हैं।

इसके बाद नमस्कार करते हुए वे वृद्ध उठे, जाते-जाते चेतन के पास आ कर उन्होंने अपना काँपता हुआ हाथ उस के सिर पर फेरा और कहा, "अब तो परीक्षा हो चुकी है बेटा, अब इतनी मेहनत न किया करो। कुछ दिन आराम करो और सेहत बनाओ!" बस इतना कह, अपने हिलते हुए शरीर को जैसे-तैसे सम्हालते हुए, वे बैठक की सीढ़ियाँ उतर गये। न उन्होंने दूसरों की भाँति उसकी शिक्षा-दीक्षा, वेतन या विचारों के सम्बन्ध में प्रश्न किये, न अपने ही बारे में कुछ बताया।

उनके चले जाने के बाद चेतन के मन में प्रबल आकांक्षा उठी कि वह अपनी माँ अथवा दादा से उनके इस आगमन का ठीक कारण पूछे, पर वह मन मार कर बैठा रहा।

शाम को खाना खाते समय उसे पता चल गया कि उसका अनुमान ग़लत न था। लकवे की बीमारी से ग्रसित वे बुज़ुर्ग रिटायर्ड ओवरसियर थे। उनके साथ उनका छोटा भाई था, जिसके ईंटों के दो भट्टे 'काला बकरा' में थे। उसी की लड़की के सम्बन्ध में बात करने वे आये थे। उसे यह भी पता चला कि वे चारों अंग लिख कर ले गये हैं। तब खीझ कर चेतन ने अपनी माँ से कहा था, "दादा न जाने क्यों उनको साफ़ इनकार नहीं कर देते। क्यों व्यर्थ दो भलेमानुसों को परेशान करते हैं?"

माँ ने आँखों में आँसू भर कर वही पुरानी बातें दुहरानी शुरू की

---

*लड़के का, लड़के की माँ का, उसके पिता तथा उसके दादा का, अपना और ननिहाल का गोत्र बताने को चारों अंग बताना कहते हैं। पुराने विचार के हिन्दुओं में यदि लड़के के इन चारों अंगों में कोई लड़की के चारों अंगों में किसी से मिल जाय तो सगाई नहीं होती।

थीं—"बच्चा यदि तू घर न बसायेगा तो मैं मुहल्ले में किस तरह मुँह दिखा सकूँगी ? ब्याह, शादी और बीसियों दूसरे संस्कारों और त्योहारों पर किसी-न-किसी घर से कुछ-न-कुछ आता रहता है । मेरे घर अब तेरे ब्याह के सिवा इतनी जल्दी और कौन-सा उत्सव होगा कि मैं उन सबका बदला दे सकूँ । और फिर तेरे ब्याह न करने से कुल को लांछन अलग लगेगा । यह कोई न कहेगा, लड़का नहीं मानता, सब यही कहेंगे कि वंश में कोई दोष होगा जो अब तक शादी नहीं हुई ।"

इन बातों का कोई जला-कटा उत्तर देने के बदले चेतन ने अपना वही पुराना अस्त्र प्रयोग में लाने का विचार किया । गम्भीरता से उसने कहा, "मैं तुम्हारी सब बातें मानता हूँ, पर मैं लड़की देखे बिना शादी न करूँगा और इस बात के लिए शायद वे तैयार न हों ।"

माँ ने कहा, "वे दिखा देंगे ।"

और माँ ने ठीक ही कहा था । दूसरे ही दिन वे वृद्ध फिर आये और उन्होंने कहा कि परमात्मा की कृपा से अंग तो नहीं मिले और आग्रह किया कि यह नाता अब हो ही जाना चाहिए । तब दादा ने उत्तर दिया कि उनकी और बहू की ओर से कोई आपत्ति नहीं, वे तो घर अच्छा चाहते हैं—भलेमानुस लोग ! बाकी किसी चीज़ की उन्हें परवाह नहीं....पर लड़के के पिता से भी पूछ लेना चाहिए । और फिर सकुचाते-सकुचाते उन्होंने कहा कि लड़के को मना लेना भी आप ही का काम है । आजकल के लड़के तो आप जानते हैं....

इस पर वृद्ध ने दादा से चेतन को बुलाने के लिए कहा था और दादा ने चेतन को आवाज़ दी थी ।

जैसे गहरे लाल रंग के ऊपर हल्का पीला रंग उसकी ललाई को नहीं छिपा पाता, इसी तरह जब पहले ऐसे अवसरों पर चेतन आ कर बैठा करता था तो उसके चेहरे पर जो हल्की-सी गम्भीरता होती थी उसके नीचे शरारत साफ़ छिपी दिखायी देती । किन्तु उस दिन जब रोग से विवश उन वृद्ध के सामने चेतन जा कर बैठा तो उसकी वह शरारत ऐसी छिप गयी जैसे

उसका कभी अस्तित्व ही न था। चुप गम्भीर, शरमाया-शरमाया-सा वह जा कर बैठ गया।

बड़े मीठे स्वर में हकलाते-हकलाते उन बुज़ुर्ग ने पूछा, "क्यों बेटा, तुम्हें इस रिश्ते में कुछ आपत्ति तो नहीं ?"

चेतन ने चाहा आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछे, 'किस रिश्ते में ?'— पर न तो वह आश्चर्य का प्रदर्शन कर सका और न कुछ पूछ ही सका, बस चुप बैठा रहा।

उन वृद्ध ने कहा, "तुम्हें लड़की दिखा देंगे बेटा, मैं स्वयं आज़ाद-खयाल आदमी हूँ। जिसके साथ जीवन-भर का नाता हो, उसे देखा तक न जाय, मैं इसे अन्याय समझता हूँ।"

चेतन फिर भी चुप बना रहा। उसकी सब मुखरता न जाने कहाँ उड़ गयी !

फिर कुछ देर बाद वे बोले, "रहे तुम्हारे पिता जी, तो भाई उनकी सेवा में उपस्थित हो कर भली-भाँति उनकी अनुमति प्राप्त कर ली जायगी। तुम्हारी ओर से तो कोई आपत्ति नहीं ?"

चेतन का गला सूख-सा रहा था, उस के कंठ में जैसे गोला-सा अटक गया था, पर उनके अन्तिम वाक्य से उसे जैसे ज़बान मिल गयी। धीरे से बोला, "जी....जी....मैं अभी आगे पढ़ना चाहता हूँ।"

"तुम जैसे अध्ययनशील, बुद्धिमान युवक से ऐसी ही आशा है बेटा," उन्होंने समर्थन करते हुए कहा, "आगे ज़रूर पढ़ो ! गुण अपने पास हो तो क्या बुरा है ? कोई छीन तो लेगा नहीं ! और दो वर्ष तो पलक झपकते बीत जायँगे। चन्दा उन लड़कियों में से नहीं, जो पति के मार्ग का रोड़ा बन जायँ। सरल, सीधी, समझदार लड़की है, तुम्हारी पढ़ाई में किसी तरह की बाधा न डालेगी। फिर हमसे भी जहाँ तक हो सकेगा, तुम्हारी सहायता करेंगे।"

चेतन क्या कहे ? वह तय न कर सका।

वृद्ध अपने भाई के कंधे का सहारा ले कर उठे और दादा की ओर देख

कर बोले, "हम आज ही पंडित जी के पास जायँगे और परमात्मा ने चाहा तो उन्हें मना कर ही आयँगे, नमस्कार !"

और अपने हिलते हुए हाथ जोड़ कर उन्होंने विदा ली।

कृतज्ञता के बोझ से जैसे दब कर दादा भी उनके साथ उठे।

"आप बैठिए, व्यर्थ कष्ट न कीजिए !" और यह कह कर वे तनिक हँसते हुए अपने छोटे भाई को साथ ले कर उसी दयनीय दशा में काँपते, हिलते, झूलते, डोलते सीढ़ियाँ उतर गये।

कुछ देर तक चेतन चुपचाप वहीं बैठा रहा था। फिर उसका सारा क्रोध पोते के विवाह की सुखद कल्पना में डूबे, धीरे-धीरे हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अपने सत्तर वर्ष के बूढ़े दादा पर उतरा। चीख़ कर उसने कहा, "मैंने कितनी बार आपसे कहा है कि मुझे तंग न किया करें, फिर क्यों आप लोग मुझे सताते हैं ? मैं घर छोड़ कर चला जाऊँगा।" और पैर पटकता हुआ वह अपने कमरे में जा कर लेट गया।

दोपहर को उसकी माँ जब खाना खाने के लिए उसे बुलाने आयी तो वह छत की ओर टकटकी लगाये चारपाई पर लेटा था।

माँ चारपाई पर जा कर बैठ गयी और प्यार से बोली, "खाना नहीं खाओगे आज ?"

बिना उसकी ओर देखे रुखाई से चेतन ने कहा, "मुझे भूख नहीं।"

इस वाक्य के पीछे जो बवंडर छिपा हुआ था, वह शायद माँ से छिपा न रहा। खाना खाने के लिए फिर उसने नहीं पूछा।

कुछ क्षण तक चुप रह कर वह बोली—"आज ज्वाली महरी की लड़की आयी थी !"

चेतन चुप रहा।

"उस की ससुराल भी तो बस्ती ग़ज़ाँ ही में है," माँ ने कहा, "बेचारी बड़ी दुखी है। अभी दो वर्ष भी नहीं हुए कि उसका ब्याह हुआ था। फिर लड़का भी कौन घर-घर का पानी भरने या कुल्फ़ियाँ लगाने वाला था।*

---

* पंजाब के धीवर प्रायः घरों में पानी भरते हैं या मलाई की कुल्फ़ियाँ लगाते हैं।

रेलवे में पैंतीस रुपये पाता था। अभी छः महीने हुए उस के घर लड़का हुआ था। सब तरह का आनन्द था...."

किसी पर उतार न सकने से चेतन के हृदय में क्रोध उमड़ा पड़ रहा था, पर ज्वाली महरी की इस मन्द-भाग्य लड़की के दुख की बात सुन कर जैसे वह कुछ क्षण के लिए सन्न हो कर बैठ गया।

एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर और सहज ही भर आने वाली आँखों को पोंछ कर माँ ने कहा, "आज बेटा वह विधवा है। कुछ ही दिन हुए उस के पति की बदली सम्मा सट्टा की ओर किसी रेगिस्तानी स्टेशन पर हुई थी। बड़ी लाइन, दिन-रात का काम और रेगिस्तान की गर्म झुलसा देने वाली लू। वहाँ जाते ही उसे ज्वर हो आया। पर काम तो ज्वर की अपेक्षा नहीं करता। इससे पहले कि छुट्टी की प्रार्थना स्वीकार हो कर आती और उसके स्थान पर दूसरा बाबू जाता, वह घर में बेहोश हो कर पड़ गया। उस वीराने में अपना कौन था? दूसरे ज्वाली की लड़की बच्चे से थी और रेल का डाक्टर भी इन छोटे स्टेशनों पर कहाँ आता है! बेचारा अकेला चार-पाँच दिन बेहोश पड़ा रहा। यहाँ तब खबर पहुँची जब वह सभी व्याधियों से सदा के लिए मुक्त हो चुका था।"

चेतन का क्रोध बिलकुल जाता रहा। ज्वाली की लड़की के दारुण दुख से जैसे दुखी हो कर उस ने कहा, "तुम बीरो की ही बात कर रही हो न?"

माँ ने कहा, "हाँ-हाँ, उसी की! उन्हीं की गली के पास तो उनका घर है।"

"किन का?"

"पंडित दीनबन्धु का।"

"कौन दीनबन्धु?"

"वही जो आज बस्ती से आये थे।"

"कौन?" समझ कर भी चेतन ने न समझते हुए पूछा।

माँ ने तनिक-सा हँस कर कहा, "अरे वही जो आज तुम्हारे लिए आये थे। बातों-बातों में बीरों से लड़की की बात चली थी। उसने कहा—भाभी

लड़की तो ऐसी सुशील और हँसमुख है कि क्या कहूँ । स्वर तो इतना मीठा है कि जो दो मिनट उससे बात कर लेता है, उस पर निछावर हो जाता है ।"

चेतन चुप रहा ।

माँ ने कहा, "बेटा, लड़कियाँ तो एक से बढ़ कर एक सुन्दर, सुशिक्षित मिल जाती हैं, पर सरल और सुशील लड़की का मिलना कठिन है । तू जा कर देख क्यों नहीं आता, न पसन्द होगी न करना !"

माँ यह कह कर चुप हो गयी और चेतन मन-ही-मन उस भोली भाली लड़की के चित्र बनाने लगा ।

कुछ देर बाद जब फिर माँ ने उससे खाना खाने के लिए कहा तो वह चुपचाप उठ खड़ा हुआ ।

माँ की बातों का, उस भोली-भाली लड़की की उस प्रशंसा का जो बीरो से मिलने के बाद वह प्रतिदिन किया करती थी और उस लड़की को एक नज़र देख आने के लिए माँ के अनुरोध का ख़याल करके चेतन मन-ही-मन हँस पड़ा । सिनेमा के चित्रों की भाँति गत कई दिनों के दृश्य उसकी कल्पना के सम्मुख घूम गये और सिर नीचा किये वह उन्हीं के विवेचन में मग्न चलता आया । उसे नहीं मालूम—कब वह अड्डे पर ताँगे से उतरा: कब उसने पैसे दिये और जब वह इतने लम्बे, तंग, जन-संकुल बाज़ारों को पार करके इतनी दूर चला आया । जब उसने सिर उठाया तो वह चौरस्ती अटारी के समीप पहुँच गया था ।

सन्ध्या के सूरज की अन्तिम मुस्कान ऊँचे श्वेत मकानों की छतों को सुनहरा बना रही थी । मुहल्ले के चौक में केवल विधवा मंसो का चर्खा अभी तक चल रहा था । शेष स्त्रियाँ अपने घरों में जा कर काम-धन्धे में जुट गयी थीं । कुएँ पर भीड़ क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रही थी और किसी पल भी झगड़े की सम्भावना की जा सकती थी । कुएँ के पास ही, ज़रा हट कर, काले-कलूटे शरीर को लिये मोटा, बलिष्ठ तेलू भैंसों की सानी-पानी का प्रबन्ध कर रहा था । कुरते की आस्तीनें उसकी चढ़ी थीं और हाथ भूसे तथा खली के पानी

से लिथड़े थे। खली की एक तीखी-सी गन्ध मुहल्ले के चौक में फैल गयी थी। उस समय धीरे-धीरे चलता हुआ चेतन मुहल्ले में दाखिल हुआ।

४ माँ रसोई घर में बैठी खाना पका रही थी जब चेतन ने जा कर कहा, "देख आया हूँ तुम्हारी बस्ती वाली शहज़ादी भी! उससे तो मैं सात जन्म शादी करने की बात नहीं सोच सकता।"

माँ रोटी बेल रही थी। रुक कर उत्सुकता से उसने पूछा, "तुमने कहाँ देखा उसे?"

"बस्ती में और कहाँ!" चेतन ने उत्तर दिया।

बेसब्री से माँ ने कहा, "तुम इधर आ कर बैठो तो मालूम हो। वहीं खड़े-खड़े क्या बातें कर रहे हो।"

"अब जूते तो मैं उतारने से रहा," चेतन ने ज़रा हँस कर उत्तर दिया। "और फिर बातें ही ऐसी कौन-सी हैं, बस स्कूल से घर जाते समय देखा उसे। मझोले कद की भद्दी सुस्त लड़की है....।"

माँ रोटी बेलना छोड़ कर चौखट में आ खड़ी हुई। चेतन कहता गया, "अपने शरीर का, अपने कपड़ों का, अपनी किसी बात का उसे होश नहीं—बाल बिखरें, कपड़े मैले—ऐसी फूहड़ लड़की से मैं ब्याह करूँगा? ठीक ही वह मेरी पढ़ाई में मुझे मदद देगी!"

"पढ़ाई!" खीझ कर माँ ने कहा, "अब तुम और कहाँ तक पढ़ते जाओगे। बहुतेरा पढ़ लिया। नौकरी मिली है तो अब कुछ दिन उस पर टिको, शादी करो, घर बसाओ और ऐसे रहो जैसे दुनिया रहती है। तुमसे तीन-तीन बरस छोटे लड़के मुहल्ले ही में दो-दो बच्चों के बाप हैं। सालिग राम को देख लो, चरण दास को देख लो...."

कटु हो कर चेतन बोला, "सारे का सारा मुहल्ला कुएँ में जा पड़े तो क्या मैं भी कूद पड़ूँ? और नौकरी भी क्या मैं अभी छोड़ रहा हूँ। लाहौर जा कर पढ़ लेना भी कौन आसान बात है? मैं तो उन महाशय की बात कर

रहा था जो यह कहते थे कि लड़की समझदार है और तुम्हारे रास्ते की रुकावट न बनेगी।"

और यह कह कर चेतन उपेक्षा से हँस दिया।

माँ ने कहा, "तो बहुत ही कुरूप और फूहड़ है? बीरो तो कहती थी....।"

मैंने तुम्हें बता दिया न कि मोटी-मुटल्ली, ढीली-ढाली लड़की है। मोटे ओठ और पिलपिला-सा मुँह, सुस्त इतनी दिखायी देती है कि क्या कहूँ। अपने कपड़े धोना, बाल सँवारना तक नहीं जानती। फिर चबा-चबा कर कहने लगा—"बीरो कहती थी....बीरो कहती थी....बीरो....।"

पर माँ ने बात काट कर कहा, "बेटा सीधी लड़कियाँ अच्छी होती हैं और बनाव-सिंगार—मैं तो इससे पहले ही जली बैठी हूँ। अपनी भाभी ही को देख लो। वह ताश-शतरंज में लगा रहता है, यह बनाव-सिंगार में और मैं उनकी बाँदी बनी सारा दिन घर का काम करती हूँ।"

चेतन ने हँस कर रद्दा जमाते हुए कहा, "तो यह तुम्हारा काम करेगी, इस आशा से हाथ धो रखो! माँ-बाप के लाड़-प्यार में पली इकलौती लड़की है। हाथ से तिनका उसने कभी तोड़ा नहीं, यदि तुम अब बाँदी हो तो फिर भी बाँदी ही रहोगी, इसका मैं तुम्हें विश्वास दिला देता हूँ।"

"तो ऐसी निकम्मी लड़की को ले कर मैं क्या करूँगी?"

तवे पर जो रोटी पड़ी थी, वह जलने लगी और जब तीखी गंध उड़ कर उन तक पहुँची, तो झट माँ ने जा कर उसे उठाया। एक ओर से बिलकुल कोयला हो कर तवे से चिमट गयी थी। रोटी को एक ओर फेंक कर माँ ने चिमटे से तवे को साफ़ किया, कपड़े से पोंछा और नीचे आग को मन्द करके फिर रसोई-घर की चौखट पर आ खड़ी हुई।

चेतन जाने लगा था। उसे रोक कर माँ ने कहा, "तुम उन्हें चिट्ठी लिख दो।"

"चिट्ठी?" चेतन ने हैरानी से पूछा।

"हाँ, चिट्ठी के बिना वे बेचारे शायद दुविधा में रहें और शायद तुम्हारे

पिता के पास वे हो आये हों, इसलिए तुम उन्हें लिख दो।"

"क्या लिख दूँ?"

"कोई बहाना बना दो, लिख दो, मैं अभी आगे पढ़ना चाहता हूँ, मैं जल्दी ब्याह नहीं कर सकता। जो तुम्हें ठीक लगे, लिख दो।"

यह कह कर वह जल्दी से अपने आसन पर जा बैठी और रोटी बेलने लगी।

चेतन नीचे अपने कमरे में गया, जल्दी-जल्दी उसने वह सूट उतार डाला, जिसे जाते समय पहनने में उसने आधा घंटा लगाया था। गले में कुरता पहन और कमर में तहमद कस कर वह बाहर अपने दोस्तों में गपशप करने निकल पड़ा। तभी ऊपर रसोई-घर की खिड़की से झाँक कर माँ ने कहा, "देखो देर न लगाना, जल्दी आ जाना, और वह 'बुद्धू' कहीं मिले तो उसे भेजना! आ कर खाना खा जाय, फिर मेरी ओर से चाहे सारी रात पड़ा ताश-शतरंज से सिर फोड़े!" और फिर जैसे माँ ने अपने से कहा, "सुबह से खाना खा कर गया है, एक मिनट के लिए भी नहीं आया। भगवान शत्रु को भी ऐसी निकम्मी सन्तान न दे!"

●

५ चेतन के बड़े भाई रामानन्द को माँ ने यों ही 'बुद्धू' की उपाधि न दे रखी थी। चेतन के दादा उनके विषय में कहा करते थे—'इसके सामने घी का घड़ा लुढ़क रहा हो तो भी यह हिलने का नाम न ले!' घर के सुख-दुख तो दूर रहे, अपनी परेशानियाँ भी उन्हें छू न पाती थीं, पिता की डाँट-डपट, मार-पीट; माँ के गिले-शिकवे, कोसने-उलाहने; पत्नी के ताने-मेहने और रोना-रूठना—कोई बात उनकी निर्लिप्तता को भंग न कर पाती। एक अजीब ढंग की, रुखाई की सीमा को पहुँची हुई, वीतरागता उनकी आकृति से सदैव टपका करती।

यह वीतरागता उस ढीठपने ही का दूसरा रूप थी, जो प्रायः रोज़-रोज़ की डाँट-डपट या मार-पीट के कारण बच्चों में पैदा हो जाया करती है।

चेतन के ये बड़े भाई, न केवल बचपन ही में अधिक पिटे थे, वरन् युवावस्था में भी उनकी ख़ूब 'आव भगत' हुई थी। बचपन में पिता की निर्दयता के भय से माँ ने उन्हें अपने पीहर भेज दिया था। वहाँ मार-पीट से मुक्ति मिल गयी, किन्तु नानी सौतेली थी, इसलिए डाँट-डपट, ताने-मेहने आठों पहर उनके गले का हार रहे। चेतन के पिता रेलवे में थे। जब वे 'रिलीविंग' में हुए, माँ ने सब बच्चों को जालन्धर दाख़िल करा दिया और नानी इस 'डहूस'✻ से तंग आ गयी तो माँ ने भाई साहब को भी जालन्धर बुलवा लिया। यहाँ नानी के सौतेले व्यवहार और नाना की रूखी-फीकी डाँट-डपट से पिंड छुटा तो पिता के तूफ़ानी दौरे और तूफ़ानी मार-पीट से पाला पड़ने लगा। चेतन के पिता पंडित शादीराम किसी दूरस्थ स्टेशन से किसी दूरस्थ स्टेशन को (छुट्टी पर जाने वाले किसी स्टेशन-मास्टर का स्थान लेने के हेतु) जाते हुए जालन्धर से गुज़रते तो अपने उस आगमन की स्मृति के रूप में अपने इस बड़े लड़के को सौ-पचास थप्पड़ और दस-बीस पटखनियाँ दे जाते।

चेतन या उसके छोटे भाइयों की अपेक्षा उसके ये बड़े भाई ही क्यों अधिक पिटते ? इसका कारण सम्भवतः उन दो उपाधियों में निहित है जो माँ और नानी ने उन्हें दे रक्खी थीं—'बुढ़ऊ' और 'डहूस'।

वे बड़े थे, इसलिए शायद पंडित जी की दृष्टि सबसे पहले उन्हीं पर पड़ती और प्रायः उन्हीं को पंडित जी की 'कृपाओं' का भाजन बनना पड़ता।

या फिर नानी की उपाधि के अनुसार उन्होंने ऐसा मन-मस्तिष्क और शरीर पाया था कि न उन पर उस मार-पीट का प्रभाव पड़ता और न वे उससे बचने के उपाय सोच पाते। पंडित शादीराम भी, जिन्हें मार-पीट की कला में अपूर्व दक्षता प्राप्त थी, कई बार अपने बड़े बेटे की इस सहन-शीलता से हार कर कह उठते, "पीटते-पीटते मेरे हाथ दुखने लगते हैं,

---

✻ डहूस = मन्द-बुद्धि, मोटी खाल वाला बैल-सरीखा व्यक्ति !

लेकिन इस 'डहूस' के कान पर जूँ भी नहीं रेंगती," और उन के इस ढीठपने से चिढ़ कर वे पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति सुनाते :

दो पइय्याँ, विस्सर गइय्याँ
सदका मेरी हूई दा*

पंडितजी साधारणतः पढ़ाई के सिलसिले ही में पीटते। यदि वे अपने किसी बेटे के हाथ में पुस्तक देख लेते तो पहले मामूली तौर पर, बड़े स्नेह से, हँसते-हँसते, पुस्तक ले कर उसके दो चार पृष्ठ उलटते। फिर सहसा उसकी परीक्षा लेने के लिए (जैसी भी पुस्तक हो, उसके अनुसार) कोई अंग्रेज़ी, गणित, भूगोल अथवा इतिहास का प्रश्न पूछ बैठते। यदि उत्तर ठीक होता तो लड़के की पीठ ठोंकते, उसे उठा कर चूम लेते और प्रसन्नता से उसके भविष्य के सम्बन्ध में कई उत्साह-भरी भविष्यद्वाणियाँ करते हुए अपने उस जोश में और भी कठिन प्रश्न पूछते—परिणाम सदैव ठुकाई होता।

चेतन भी बचपन में दो-तीन बार पिटा था, इस बुरी तरह कि वह बहुत दिन तक बीमार रहा था; किन्तु बचपन में पिटा सो पिटा, उसके बाद यथाशक्ति उसने ऐसा अवसर न आने दिया। वह सदा उनकी मार-पीट से बचने, उनके सामने न पड़ने, जिस समय वे घर में हों, उस समय घर से ग़ायब हो जाने के बीसों बहाने सोच लेता। उसका छोटा भाई, छोटा होने पर भी, उसकी इस 'दूरदर्शिता' से लाभ उठा लेता और पिता की मार-पीट से बचने के उपाय सोचने और उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने में सदैव उसकी सहायता करता—वह बीमार पड़ जाता कि चेतन उसे डाक्टर के पास ले जा सके; पीड़ा से कराहने लगता कि चेतन उसका सिर दबा सके; गुम हो जाता कि चेतन उसे ढूँढ़ने का बहाना कर सके।

जब पंडित जी घर पर होते तो दोनों छोटे भाई सदा उनके सामने जाने से बचने के बीसों बहाने सोच लेते। वे इस बात का भी विशेष ध्यान रखते कि पंडित जी आयें तो उन दोनों के हाथ में तो क्या, घर के किसी कोने में भी उन्हें पुस्तक का कोई पृष्ठ तक न दिखायी दे। बाहर मुहल्ले ही से उनकी

*दो पड़ीं भूल गयीं; मेरी पीठ के सदक़े!

आवाज़ सुन कर वे पुस्तकें छिपाना शुरू कर देते। पंडित जी नीचे होते तो वे तुरन्त ऊपर की पुस्तकें छिपा देते और जब वे ऊपर आते तो बहाने से नीचे जा कर, वहाँ यदि कोई पुस्तक पड़ी हो तो, उसे उड़ा देते। अपनी समस्त सतर्कता और चाबुकदस्ती के बावजूद यदि उन्हें पंडित जी के कमरे में जाना पड़ जाता तो न केवल वे कभी हाथ में पुस्तक न ले जाते, वरन् पंडित जी जिस कमरे में हों, वहाँ यदि भूले से भी कोई पुस्तक पड़ी रह गयी हो, तो बातों-बातों में उसे बड़ी कुशलता से, उनकी दृष्टि बचा कर, उड़ा देते। यदि पंडित जी को गर्मी लग रही हो तो उन्हें इस ज़ोर से पंखा करते कि उनका मन लेट जाने को चाहे। लेट जाते तो उनके पाँव तथा पिंडलियाँ इस निष्ठा से दबाते कि वे खर्राटे लेने लगते।

यदि इस समस्त सावधानी के बावजूद दुर्भाग्य उनका कोई बस न चलने देता—उनमें से कोई पंडित जी के चंगुल के फँस जाता और पंडित जी उसकी परीक्षा लेने लगते तो दूसरा सदैव इस बात का प्रयास करता कि पंडित जी के किसी घनिष्टतम मित्र को उनके आने का समाचार इस भाँति पहुँचा दे कि वह भागा-भागा पंडित जी से मिलने चला आये और भाई का गला छूटे।

किन्तु चेतन के ये बड़े भाई (यों चाहे सदा उपन्यास पढ़ते या आवारा-गर्दी करते) जब पंडित जी घर आते तो तुरन्त पुस्तकें ले बैठते। न केवल वे घर से गुम रहने या पंडित जी के समक्ष जाने से बचने के उपाय न सोचते, वरन् जब पंडित जी घर आते तो वे सदैव घर ही में बने रहते—सम्भवतः अपनी आवारागर्दी का हाल छिपाने और पढ़ने में अपनी निष्ठा उन्हें बताने के लिए! फिर चेतन और उसके छोटे भाई की-सी सतर्कता और चाबुक-दस्ती भी उनके यहाँ न थी। वे न हाज़िर-जवाब थे, न जल्दी बहाने सोच सकते थे। पिटने पर भी वे सदा अपने पिता से चिपके रहते और इसीलिए प्रायः घर तो घर, बाज़ार तक में भी पिटते!

पंडित जी पुस्तक देख कर ही प्रश्न पूछते हों, यह बात न थी। कई बार सहसा वे ऐसे समय और ऐसा प्रश्न पूछते जिसकी रत्ती भर भी सम्भावना न होती।

....एक बार वे एक दावत के सिलसिले में (पूर्ववत भाई साहब साथ थे) सड़क की ओर से जाने के बदले लाइन-लाइन थानेदार के यहाँ जा रहे थे कि सहसा एक सिगलन की ओर संकेत करके उन्होंने पूछा, "इसे अंग्रेज़ी में क्या कहते हैं ?"

भाई साहब ने तुरन्त उत्तर दिया, "सिंगल !"

और तड़ से एक थप्पड़ उनके मुँह पर पड़ा, "यह पंजाबी भाषा का नहीं कम्बख़्त, अँग्रेज़ी का शब्द है। स्टेशन-मास्टर का लड़का हो कर गँवारों की तरह 'सिगल सिंगल' बके जा रहा है।"

दो और थप्पड़ जड़ते हुए उन्होंने वैसे ही और शब्द पूछे। थानेदार बेचारे बढ़िया पुरानी देशी शराब रखे उनकी प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु पंडित जी भाई साहब की मरम्मत करते हुए रास्ते ही से लौट आये।

....'चीचोकी मलियाँ' स्टेशन के सामने एक मिलेट्री का डिपो था। चेतन के बड़े भाई उस समय आठवीं श्रेणी में पढ़ते थे और चेतन छठी में। वह पहली बार अपने बड़े भाई के साथ चीचोकी मलियाँ आया था। एक दोपहर जब अपने पिता के साथ वे दोनों डिपो के सामने से जा रहे थे, चेतन ने सहसा अपने भाई से प्रश्न किया, "यह बैरक-सी क्या है, भरा जी* ?"

भाई साहब ने बोर्ड पढ़ते हुए बताया, "चीचोकी मलिया मिलेट्री डिपोट...."

अभी उन्होंने वाक्य पूरा भी न किया था कि पूरे ज़न्नाटे के साथ एक थप्पड़ उनकी कनपटी पर पड़ा और उनकी आँखों के आगे तारे नाचने लगे, "आठवीं जमात में पड़ता है और यह भी मालूम नहीं कि शब्द 'डिपो' है डिपोट' नहीं।"

और पंडित जी ने काँटे वाले से वहीं कुर्सी मँगायी और भाई साहब से पुस्तक लाने को कहा। चेतन पानी पीने के बहाने खिसक गया। पीछे भाई साहब की जो दशा हुई उसका अनुमान लगाया जा सकता है।

---

*भरा जी = भाई साहब

....उन दिनों चेतन स्वयं आठवीं श्रेणी में पढ़ रहा था, उनका नया मकान अभी पूरा न बना था और वे सब मुहल्ले के साथ ही 'खोसलों की गली' में एक विधवा का मकान किराये पर ले कर रहते थे। उसकी गणित की परीक्षा थी और घर पर पंडित जी (मकान बनवाने के हेतु छुट्टी ले कर) आये हुए थे।

चेतन को गणित से तनिक भी लगाव न था। वह सदैव सौ में से एक-दो नम्बर ही पाता। ये एक-दो नम्बर भी उस की योग्यता की अपेक्षा अध्यापक की उदारता ही का प्रमाण होते। वार्षिक परीक्षा में रेखागणित ही उसकी सहायता करता।

बात यह थी कि बचपन ही से उसका गणित कमज़ोर और अँग्रेज़ी अच्छी थी। पंडित शादीराम ने उसका गणित सुधारने की ओर कभी ध्यान न दिया था और उस समय जब उसे दूसरी का गणित भी न आता था, तीसरी श्रेणी में दाख़िल करा दिया था। उन्हें विश्वास था कि वह एक ही वर्ष में दो कक्षाओं का गणित सीख लेगा। इसीलिए स्कूल ही के एक अध्यापक की ट्यूशन भी उसे रख दी थी। यद्यपि वे महाशय वर्ष भर उसे गणित पढ़ाते रहे और चेतन उन महाशय के कारण तीसरी श्रेणी में पास भी हो गया, तो भी गणित में वह कोरे का कोरा ही रहा। रहता भी क्यों न, जब कि अध्यापक महाशय उसे गणित का अभ्यास कराने की अपेक्षा उससे हुक्का भरवाते और पाँव दबवाते। गणित में यह कमज़ोरी धीरे-धीरे उस विषय से अरुचि और फिर घृणा में परिणत हो गयी और फिर ऐसा हुआ कि गणित की पुस्तक देख कर ही चेतन एक विचित्र प्रकार की उदासीनता और उकताहट अनुभव करने लगा।

उस दिन यद्यपि परीक्षा चार बजे समाप्त हो गयी थी, किन्तु चेतन बड़ी देर बाद घर पहुँचा—इस आशा से कि उसके पिता अपने अभिन्न हृदय मित्र देसराज के साथ बाज़ार शेखाँ की शोभा बढ़ाने चले गये होंगे, पर कदाचित उस दिन देसराज आया न था या पंडित जी की जेब में मदिरा के लिए पर्याप्त पैसे न थे या कोई और कारण था, नियम के विरुद्ध वे घर

ही पर थे। चेतन के पहुँचते ही उन्होंने डाँट कर पूछा, "कहाँ मर गये थे ? अब परीक्षा समाप्त हुई है तुम्हारी ?"

चेतन का गला सूख गया। उसकी आँखों में धुँधियाली-सी छा गयी। हकलाते हुए उसने जो बहाना बनाने की चेष्टा की, उसे पंडित जी ने बीच ही में काट दिया और उससे प्रश्न-पत्र माँगा।

काँपते हाथों से चेतन ने पेपर अपने पिता की ओर बढ़ा दिया।

झटके के साथ पेपर उसके हाथों से छीनते हुए उन्होंने पूछा, "कितने प्रश्न ठीक हैं ?"

यद्यपि चेतन का एक भी प्रश्न ठीक न था तो भी उसने कहा कि उसके पाँच प्रश्न ठीक हैं। सहपाठियों से सुने हुए ठीक उत्तर उसने अपने पिता को बता दिये और अपने इस झूठ को सत्य का रंग देते हुए उसने यह भी कहा कि केवल 'काम और वक्त' और 'सूद-दर-सूद' के प्रश्न उसकी समझ में नहीं आये।

इससे पूर्व कि पंडित जी ठीक प्रश्नों के विषय में उसके सत्य की जाँच करते, उन्होंने 'काम और वक्त' का प्रश्न पढ़ा और बोले, "इसमें मुश्किल क्या है ? कौन-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आयी ?"

चेतन मुँह ही में कुछ बड़बड़ा कर रह गया।

"जाओ अपनी पुस्तक लाओ।"

उस समय भाई साहब ने, जो उन दिनों मैट्रिक में पढ़ते थे, अपने पिता से पेपर लिया और प्रश्न पढ़ कर बोले, "यह तो बिलकुल आसान है।"

चेतन ने एक क्रोध-भरी दृष्टि अपने भाई पर डाली और धीरे-धीरे उस व्यक्ति की-सी चाल से लड़खड़ाता हुआ पुस्तक लेने चला जिसके भाग्य का निर्णय मृत्यु के रूप में, जज ने सुना दिया हो।

भाई साहब ने इस बीच में प्रसन्नता-पूर्वक लैम्प ला कर उसकी चिमनी को साफ़ किया, बत्ती काटी, तेल भरा और उसे चौकी पर रख कर जला दिया। इस ओर से निश्चित हो कर वे अपने पिता के लिए हुक्का भर लाने को चले गये। जब इतने पर भी चेतन पुस्तक ले कर न आया तो उसके

पिता गरजे। तब माँ ने आ कर रुआँसे स्वर में कहा कि भूखा था, खाना खा रहा है....।

चेतन ने बैठे-बैठे यह बात सुनी। उसके पेट में एक गोला-सा उभर कर उसके कंठ तक आ गया। यदि नीचे न जाना होता तो वह फूट-फूट कर रो उठता, किन्तु किसी प्रकार अपनी समस्त शक्ति से अपने आप को संयत रख, दो कौर किसी-न-किसी तरह निगल कर, वह उठा। उसके पाँव मन-मन भर के हो रहे थे। उसे कुछ दिखायी न दे रहा था। पुस्तक यद्यपि ताक ही में पड़ी थी, फिर भी उसे ढूँढ़ने में उसे काफ़ी देर लग गयी। इतने में उसके पिता की गरज सुनायी दी। काँपते हुए रुआँसे स्वर में "आया जी" कह कर, पुस्तक, स्लेट और पेंसिल ले, वह चींटी की-सी चाल से नीचे को चला। उस समय उसे ऐसा लग रहा था जैसे प्रत्येक सीढ़ी उसे किसी गहरे अँधेरे गर्त्त में लिए जा रही है। उसका शरीर रेंगते हुए उस ग़रीब घोंघे की तरह अपने आप में सिकुड़ा-सा जा रहा था जिसने संकट की गंध पा ली हो।

जब वह जा कर पंडित जी के सामने बैठ गया तो उन्होंने स्लेट-पेंसिल और पुस्तक ले कर उसे एक उदाहरण समझाया कि यदि पचीस मज़दूर एक खेत को पाँच दिन में काटते हैं तो पाँच मज़दूर उसे पचीस दिन में काटेंगे। और उन्होंने उसे समझाया कि काम करने वालों की संख्या अधिक हो तो समय कम हो जाता है और कम हो तो अधिक।

चेतन का भय जो मार-पीट की निकट-सम्भावना से उत्पन्न हुआ था, कुछ दूर हो गया। भय के दूर होने के कारण घोंघा फिर खोल से बाहर निकलने लगा। चेतन फिर सम्हल कर बैठ गया और ध्यान से समझने लगा। उस समय उसे न जाने कैसी एकाग्रता प्राप्त हो गयी कि वह प्रश्न जो गणित से घृणा होने के कारण कभी उसकी समझ में न आया था, अपनी सारी सूक्ष्मता के साथ तुरन्त उसकी समझ में आ गया। वास्तव में उसने कभी समझने का प्रयास ही न किया था। उस समय मार के भय से या समझाने वाले के सामीप्य के कारण प्रश्न की समस्त जटिलता सर्वथा स्पष्ट हो कर, उसकी समझ में आ गयी।

जब चेतन के पिता ने उससे पूछा कि प्रश्न उसकी समझ में आ गया है या नहीं तो उसने 'हाँ' सूचक सिर हिलाया।

तब पंडित जी ने उससे योंही एक मौखिक प्रश्न पूछा। चेतन ने झट उत्तर बता दिया। फिर वे उससे प्रश्न करते गये और चेतन उत्तर देता गया। हर बार वे प्रश्न को जटिल बनाते गये, यहाँ तक कि उन्होंने एक खासा मुश्किल प्रश्न पूछा।

चेतन का साहस बँध गया था। उसने कहा, "जी मैं तनिक सोच कर बताता हूँ।"

चेतन की मेधा-शक्ति से प्रसन्न हो कर उसके पिता ने उसे सोचने की आज्ञा दे दी और जब सोचने पर भी उसने डरते-डरते कहा, "जी यह मेरी समझ में नहीं आया," तो सहसा पंडित जी की दृष्टि मूर्खों की भाँति मुँह बाये बैठे अपने बड़े लड़के पर चली गयी। और उन्होंने जैसे बन्दूक दागी, "तू बता !"

भाई साहब सिटपिटाये ! काफ़ी सोचने के बाद उन्होंने जो उत्तर दिया, उसकी दाद में एक ज़ोर का थप्पड़ उनके गाल पर पड़ा।

"मैट्रिक में पढ़ता है कमबख्त और आठवीं का सवाल नहीं आता।"

और पंडित जी ने अपनी कृपा-दृष्टि को चेतन के बदले भाई साहब की ओर मोड़ दिया।

मैट्रिक तक मार-पीट के बल पर किसी-न-किसी प्रकार पढ़ कर भाई साहब कॉलेज में दाखिल तो हो गये, किन्तु परीक्षा में सफल होना उन्होंने उतना आवश्यक नहीं समझा। अंग्रेज़ी में कमज़ोर थे, किन्तु संस्कृत से तो जैसे उनके प्राण जाते थे। यह बात वे कभी न समझ पाते कि यह क्लिष्ट भाषा, जो न किसी सरकारी नौकरी में काम आती है, न किसी व्यापारिक दफ़्तर में, जो आर्यों के समय में भी जनसाधारण की भाषा न थी, आजकल क्यों पढ़ायी जाती है ? क्यों आवश्यक है कि संस्कृत या अरबी-फ़ारसी में से एक विषय अवश्य लिया जाय। इस के स्थान पर किसी ललित कला या शिल्प

की शिक्षा क्यों नहीं दी जाती जिसमें वे निश्चय ही अपनी योग्यता दिखा सकते थे। और एक दिन गर्मी की छुट्टियों से पहले, तीन महीने की फ़ीस ले कर वे दिल्ली भाग गये थे और वहाँ एक पेंटर की दूकान पर शिष्य हो गये थे। दुर्भाग्य से पंडित शादीराम के एक पुराने मित्र ने उन्हें देख लिया और इस प्रकार भाई साहब को न केवल विवश हो कर लौट आना पड़ा, बल्कि उसी कॉलेज में फिर से शिक्षा पाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

पिता की कठोरता से भाई साहब घबराये नहीं, मार के भय से वे कॉलेज में प्रविष्ट तो हो गये, किन्तु क्लास में बैठ कर प्रोफ़ेसरों के शुष्क लैक्चर सुनने की अपेक्षा कॉलेज के सुहाने उपवन के किसी घने वृक्ष की छाया में बैठ कर नित्य-नये मनोरंजक उपन्यास पढ़ने लगे। वे सब उपन्यास भाई साहब 'महन्तराम बुक सैलर' की दुकान से, दो पैसे प्रतिदिन के हिसाब से, किराये पर ले आते। महन्तराम की दुकान भैरो बाज़ार में थी और उसमें फ़ज़ल बुक डिपो लाहौर से ले कर नवल किशोर प्रेस लखनऊ तक सभी प्रकार की संस्थाओं से छपी हुई पुस्तकों के ढेर लगे रहते थे। भाई साहब वह राशि-राशि ज्ञान दीमक की भाँति चाट गये थे और साहित्य के उस महान्-कोष को चाट जाने पर भी वे दीमक ही की भाँति कोरे-के-कोरे थे।

उपन्यास वे केवल मन बहलाव या समय काटने के लिए पढ़ते थे, मनन चिन्तन के लिए नहीं। इसी कारण जिस उल्लास और उत्सुकता से वे, 'बेगुनाह कैदी,' 'नीली छतरी,' 'बहराम डाकू,' 'चन्द्रकान्ता संतति,' 'भूत-नाथ' और तीरथराम फ़िरोज़पुरी के अनुवाद आदि पढ़ गये थे, उतने ही आनन्द से वे बङ्किमचन्द्र, टैगोर, शरत् और प्रेमचन्द के उपन्यास निगल गये थे।

परिणाम वही हुआ जिस की उन्हें आशा थी। उन की हाज़िरियाँ कम हो गयीं, और यद्यपि पंडित शादीराम ने अपने सिद्धान्त 'तेल तमा जिसको मिले तुरत नरम हो जाय,' के अनुसार प्रोफ़ेसरों को रिश्वत देने का प्रयास भी किया और दूसरे विषयों में किसी प्रकार भाई साहब के लैक्चर पूरे भी हो गये, किन्तु संस्कृत के प्रोफ़ेसर को वे किसी भाँति राम न कर पाये। भाई

साहब परीक्षा में न बैठ सके और जब एक बार नहीं बैठे तो फिर नहीं बैठे।

कॉलेज से पिंड छूटा तो भाई साहब ने जीविकोपार्जन की चिन्ता करने की अपेक्षा ताश और शतरंज को अपना साथी बनाया। इसमें कुछ उनका दोष था, कुछ उनके पिता का। जब भाई साहब दिल्ली से आ गये तो माँ के परामर्श से पंडित जी ने इस चंचल 'बोते*' को बाँधने के विचार से, उस की नाक में नुकेल डालना आवश्यक समझा। अपने एक स्टेशन मास्टर मित्र की लड़की से उनकी सगाई कर दी। जब भाई साहब परीक्षा में बैठने के स्थान पर घर बैठ गये तो उन्हें किसी काम पर लगाने या कोई कला-कौशल सिखाने के बदले पंडित जी ने उनकी शादी कर दी।

इसके पश्चात् यद्यपि दूसरे वर्ष भाई साहब ने कॉलेज जाने से साफ़ इन-कार कर दिया, तो भी पंडित जी को उन्हें नौकर कराने की चिन्ता नहीं हुई। एक बार माँ के अनुरोध से तंग आ कर वे उन्हें ऑडिट आफ़िस में, अपने एक मित्र के पास, अवश्य ले गये, किन्तु जब उसने उन्हें केवल पैंतीस रुपये मासिक पर 'ऑफ़िस ब्वाय' रखने से अधिक कुछ करना स्वीकार न किया तो पंडित जी ने अपने उस मित्र को बीसियों गालियाँ दीं और कहा कि पैंतीस रुपये तो मैं रोज़ शराब पर खर्च कर देता हूँ कम्बख्त! और अपने इस थर्ड डिविज़न मैट्रिक पास सुपुत्र को ले कर चले आये।

फिर यद्यपि पंडित जी ने उनकी नौकरी लगाने के हेतु फ़िरोज़पुर, लाहौर और दिल्ली जाने के लिए, चेतन की माँ से कई बार रुपये लिये, किन्तु वे बाज़ार शेखाँ के साक़ी की दुकान तक हो कर ही लौट आये।

रहे भाई साहब, तो उन्होंने अपने लिए मॉटो बना रखा था—सोचो मत। इसी मॉटो पर अक्षरशः चलने का परिणाम था कि इस बेकारी और बेरोज़गारी के होते भी एक लड़का और दो लड़कियाँ उनके यहाँ हो गयी थीं। एक मर चुकी थी और दूसरी को उनकी पत्नी कूल्हे से लगाये फिरती थी और वे स्वयं अपने इन बीवी-बच्चों को पालने के लिए कहीं नौकरी

---

*ऊँट।

ढूँढ़ने की बात एकदम भुलाये; गुलछर्रे उड़ा रहे थे। कभी जब माँ या पत्नी घर में उनका दम नाक में कर देतीं और ऐसे तीखे व्यंग्य-बाण छोड़तीं कि भाई साहब सोचने को विवश हो जाते तो वे आँगन में किसी औंधी बाल्टी पर या दरवाज़े की किसी चौखट में कुछ क्षणों के लिए घुटनों पर कुहनियाँ टिकाये, हथेलियों पर ठोड़ी रखे, अतीव एकाग्रता से सोचने की मुद्रा बना कर बैठ जाते। सम्भवतः वे सोचना भी चाहते, किन्तु इस क्षेत्र में वे अपने आप को सदैव उस खिलाड़ी-सा पाते जिसे खेल का आरम्भिक ज्ञान भी न हो। कुछ क्षण इसी मुद्रा में रहने के पश्चात् सहसा सिर को झटक कर वे उठते और सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान या पंडित बनारसी-दास सूतवाले की दुकान पर जा कर किसी ताश या शतरंज की टोली में सम्मिलित हो जाते। धीरे-धीरे वे उस क्षेत्र में अपना स्थान बना लेते। ताश और शतरंज में उनकी अपूर्व प्रतिभा के सम्मान में कोई-न-कोई खिलाड़ी उनको अपना स्थान दे देता और फिर एक बार जूते एड़ियों से ठकोर कर झाड़ने के पश्चात् वे जम कर जो बैठते तो दूसरों को अपनी योग्यता का लोहा मनवाये बिना न उठते।

किन्तु चेतन की माँ अपने इस बेटे की बेकारी और अकर्मण्यता तथा उसकी बहू के कर्कश, झगड़ालू स्वभाव से अत्यन्त दुखी थी। जब अपने सुपुत्र को काम में लगा देखने के लिए पिता के समस्त प्रयत्न शराबखाने तक जा कर ही समाप्त हो गये तो माँ ने कहीं से ऋण ले कर उसे एक लाँडरी खोल दी।

बात वास्तव में यों हुई कि भाई साहब के प्रिय मित्र सरदार नन्दासिंह सोडा-वाटर वाले की दुकान पर, जहाँ शीतकाल में सोडे का बाज़ार सर्द और शतरंज की महफ़िल गर्म रहती थी, फ़िरोज़पुर का एक व्यक्ति आया जो शतरंज का ज़बरदस्त खिलाड़ी था। उसने पहली बैठक में भाई साहब को, जो उस इलाके में शतरंज के चैम्पियन माने जाते थे, निरन्तर कई बार मात दे दी।

जब बिसात उठी तो एक सच्चे खिलाड़ी की तरह भाई साहब ने उसके

खेल की भूरि-भूरि प्रशंसा की और लेमोनेड की एक बोतल खोलते हुए उसे दूसरे दिन के लिए आमंत्रित किया। तब उसने बताया कि वह तो काम की खोज में जालन्धर आया है। उधर से निकला था, शतरंज बिछी देख कर बैठ गया, नहीं उसे तो काम-धन्धा ढूँढ़ना है। भाई साहब का कुतूहल बढ़ा और वे उसे उसके अड्डे—स्टेशन की सराय तक छोड़ने गये। बातों-बातों में उन्हें यह ज्ञात हो गया कि उसका नाम राजाराम है। वह लाँडरी के काम में निपुण है, धोने और रँगने में दोआबा (सतलज और व्यास नदी के मध्य का प्रदेश) भर में उसका कोई सानी नहीं। किसी समय फ़िरोज़-पुर ही में उसकी लाँडरी थी, किन्तु १९२१ के असहयोग आन्दोलन में वह जेल चला गया और उसकी लाँडरी चौपट हो गयी। जेल में उसने दो चीज़ें सीखीं—एक शतरंज, दूसरे राष्ट्रीय कविता। भाई साहब को उसने अपने कई बैत सुनाये और यह भी बताया कि वह प्रसिद्ध डाइर और ड्राइक्लीनर* होने के साथ-साथ ही ख्याति-प्राप्त राष्ट्रीय कवि भी है। फ़िरोज़पुर में उसकी रँगाई-धुलाई के साथ उसके बैतों की भी धूम है। जब लाहौर काँग्रेस के लिए सरकार ने मिण्टोपार्क देना स्वीकार न किया था तो उसी ने यह प्रसिद्ध बैत लिखा था :

मिंटो पार्क नू ले जाओ वई लन्दन चुक्क के।
असां रावी ते झंडा झुलावांगे वई।†

कि एक बार लाँडरी टूटने पर उसने कई बार पुनः लाँडरी स्थापित करने का प्रयास किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। अब फ़िरोज़पुर छोड़ कर वह जालन्धर आया है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय जो थोड़ी-बहुत पूँजी लगाने को तैयार हो तो साझे में लाँडरी खोले।

शतरंज के इस कुशल खिलाड़ी और राष्ट्रीय कवि के दुर्भाग्य से भाई साहब को बड़ी सहानुभूति हुई, किन्तु शतरंज और ताश की चैम्पियनशिप

---

* रँगने और धोने वाला

† मिंटोपार्क को लन्दन उठा कर ले जाओ। हम अपना झंडा रावी पर झुलायेंगे।

के अतिरिक्त उनके पास कुछ न था। फिर भी उन्होंने उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा और सान्त्वना दी कि वे उसके लिए कुछ-न-कुछ प्रबन्ध अवश्य करेंगे।

उस दिन दिये जले जब चेतन घर आया तो उसने देखा कि माँ बर्तन मल रही है और उसके पास ही एक औंधी बाल्टी पर बैठे हुए भाई साहब लाँडरी के काम की प्रशंसा के पुल बाँध रहे हैं।

"हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा आये," वे कह रहे थे, "कपड़े लोगों के और धो कर देने वाले धोबी, लाँडरी वाले को तो मुफ़्त में लाभ हो जाता है। कोई ही ऐसा बिज़नेस होगा जो इतनी कम पूँजी से आरम्भ किया जा सके और जिसमें इतना लाभ हो।"

चेतन उस समय जल्दी में था इसलिए उसने भाई साहब की पूरी बात नहीं सुनी, किन्तु उस दिन के पश्चात् उसने देखा कि लाँडरी के काम में भाई साहब का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। दिन का पर्याप्त समय वे घर ही में रहने लगे हैं, ड्राइ क्लिनिंग और डाइंग की कला में उन्हें पर्याप्त दक्षता प्राप्त होती जा रही है और जितना समय वे घर पर रहते हैं, माँ को लाँडरी के लाभ समझाते रहते हैं....।

एक दिन उसने सुना भाई साहब कह रहे थे, "यदि मैं ताश शतरंज में व्यर्थ समय नष्ट करता रहा तो इसमें मेरा क्या दोष है। मुझे किसी ने कोई कला-कौशल सिखाया ही नहीं। मैं दिल्ली भाग गया था, यदि मुझे वहाँ से वापस न बुलाते तो मैं अब तक वहाँ प्रसिद्ध पेंटर हो गया होता। अब भी यदि मैं लाँडरी का काम सीख जाऊँ तो न केवल अपना, बल्कि सारे परिवार का बोझ अपने कन्धों पर उठा लूँ।"

माँ बहुत प्रसन्न हुई कि अन्त में सुबह का भूला शाम को घर आ गया है। उसी दिन से वह इस बात का जतन करने लगी कि अपने इस बेटे को किसी-न-किसी प्रकार लाँडरी के लिए रुपये इकट्ठे कर दे। सुयोग भी आ उपस्थित हुआ। पंडित शादीराम को उन दिनों 'सट्टे' की नयी-नयी लत लगी थी। दुनिया भर के साधु-सन्तों, पीरों-फ़क़ीरों की सेवा सुश्रूषा के पश्चात् वे

इसी व्यसन के कारण खासे ऋणी भी हो गये थे। तभी उन्हें जालन्धर छावनी के एक पहुँचे हुए ज्योतिषी का पता चला। बस वे पन्द्रह दिन की छुट्टी ले कर जालन्धर आ पहुँचे। जालन्धर से छावनी और छावनी से जालन्धर, बीसियों चक्कर काटने और उन ज्योतिषी जी की चौखट पर निरन्तर माथा रगड़ने के पश्चात् उन महाराज के दर से उन्हें 'दड़े'* का नम्बर मिला और इसे भाई साहब का भाग्य कहिए या उनके फ़िरोज़पुरी मित्र का, कि वह नम्बर आ गया और पंडित जी को साढ़े तीन हज़ार रुपये मिल गये।

यद्यपि उस समय पंडित जी के सिर पर लगभग उतना ही ऋण था और माँ की इच्छा थी कि परमात्मा ने जब उनको सुअवसर दिया है तो उन्हें उसका पूरा लाभ उठा कर सट्टे को सदैव के लिए 'नमस्कार' कह देना चाहिए, लेकिन पंडित जी अपने भगवान को इतना कृपण न समझते थे। पत्नी के उपदेश भरे परामर्श के उत्तर में "भगवान तेरी लीला अपरम्पार है!" का नारा बुलन्द करते हुए उन्होंने कहा, "जिस भगवान ने एक बार दिया है, वह फिर क्यों न देगा?" और केवल डेढ़ हज़ार का ऋण उतारा; फल, मिठाई, कपड़ों और रुपयों का एक थाल ज्योतिषी जी के घर पहुँचाया और शेष रुपया अस्सी नव्बे प्रति दिन के हिसाब से सट्टे पर लगाते रहे। किन्तु जब माँ ही की बात पूरी हुई कि वह तो भगवान ने उन्हें सुधरने का एक अवसर दिया था, नहीं लक्ष्मी यों मारी-मारी नहीं फिरती तो सारा रुपया ठिकाने लगा कर, डेढ़ हज़ार का फिर साढ़े तीन हज़ार ऋण बना कर और माँ को "काल जीभी"‡ की उपाधि से विभूषित करके वे पुनः अपने स्टेशन पर चले गये।

माँ ने भाई साहब की प्रेरणा और सहायता से जैसे-तैसे उस रुपये में से तीन-चार सौ बचा लिया था। दो-तीन सौ कहीं से उधार लिया और लाँडरी

*दड़ा = सट्टा = एक तरह की लाटरी है जिसमें १०० तक नम्बर होते हैं। जिसका नम्बर आ जाता है उसे सौ गुना पैसे मिलते हैं।

‡काली जीभ वाली।

खोलने की व्यवस्था कर दी।

उन दिनों भाई साहब का उत्साह अपने शिखर पर था। उनके पाँव धरती पर न पड़ते थे। बड़े तमतराक से उन्होंने अड्डा होश्यारपुर में एक तबेला किराये पर लिया, कपड़े धोने के लिए घाट बनवाये और बड़े-बड़े विज्ञापनों के साथ, जिनमें उनके मित्र फ़िरोज़पुरी राष्ट्रीय कवि ने अपने बैतों में लाँडरी के गुण-गान बखान करने में बड़ी उदारता से काम लिया था, 'भारत लाँडरी वर्क्स' के उद्घाटन की घोषणा कर दी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस लाँडरी में राष्ट्रीय कवि बराबर के साझीदार थे।

लाँडरी खोलने में भाई साहब ने इतनी निष्ठा और लगन का परिचय दिया कि चेतन को आप-से-आप उनकी सहायता के लिए तैयार होना पड़ा। अपने कॉलेज के होस्टल, स्कूल के होस्टल, अपने कॉलेज और स्कूल ही के नहीं वरन् अपने मित्रों की सहायता से दूसरे स्कूलों के होस्टलों से भी उसने 'भारत लाँडरी' के लिए कपड़े लाने का प्रबन्ध कर दिया।

पीतल की बड़ी-बड़ी इस्त्रियाँ खरीदी गयीं, ताँबे के बड़े-बड़े तबलबाज़ लाये गये, शो-केश बनवाये गये और बड़े घड़ल्ले से लाँडरी का काम चलने लगा। भाई साहब ने रँगाई और धुलाई का काम सीखने में रत्ती भर भी आलस्य नहीं दिखाया। चेतन ने यह भी देखा कि जब धोबी न होते या दूसरा काम कर रहे होते तो भाई साहब स्वयं ही इस्त्री ले कर कपड़ों के ढेर-के-ढेर प्रेस कर देते।

भाई साहब की इस काया-पलट पर चेतन मन-ही-मन चकित हुआ करता और उसे किसी प्रसिद्ध दार्शनिक का यह कथन स्मरण हो आता—'मनुष्य का मन एक अथाह समुद्र है। इसके गर्भ में क्या है, यह सतह को देख कर नहीं जाना जा सकता' और माँ नित्य पूजा के समय भगवान से कहती "हे भगवान जैसे तूने मेरी सुनी, वैसे ही सब की सुन!"

कुछ महीनों तक मज़े में काम चलता रहा। फिर क्या हुआ, कैसे हुआ,

चेतन को कुछ भी ज्ञात नहीं, किन्तु जहाँ-जहाँ से उसने कपड़े ला कर दिये थे, वहाँ-वहाँ से उसके पास निरन्तर शिकायतें पहुँचने लगीं। उसके एक मित्र ने उलाहना दिया कि तीन सप्ताह तक उसे कपड़े नहीं मिले और जब लाँडरी में गया तो धोबियों ने उसके कपड़े पहन रखे थे। एक दूसरे ने शिकायत की कि उसने अपनी बहन की जो साड़ी रँगने के लिए दी थी, जब वह उसे लेने गया तो उसे कोई दूसरी ही साड़ी मिली। उसने अपनी साड़ी के लिए तगादा किया तो भाई साहब और उनके मित्र उससे लड़ने पर उतारू हो गये कि रँगने के पश्चात् साड़ी वैसी ही कैसे रह सकती है। चेतन का मित्र पूछ रहा था....'रँगने के पश्चात् साड़ी का रंग तो बदल सकता है, किन्तु साड़ी किस रासायनिक क्रिया से बदल गयी।"

चेतन उन दिनों परीक्षा की तैयारी कर रहा था। जब इन शिकायतों, उलाहनों और अभियोगों में प्रति दिन वृद्धि होने लगी और सब ओर त्राहि-त्राहि मच गयी तो एक दिन अपनी पुस्तकों को पटक कर वह लाँडरी पहुँचा। तब उसने देखा कि कपड़ों और उनके झमेलों से मुक्त हो कर, तबेले के घने पीपल की छाया के नीचे, भाई साहब अपने उस फ़िरोज़पुरी मित्र के साथ बिसात बिछाये बैठे हैं, उसे मात-पर-मात दे रहे हैं और नन्दासिंह की दुकान पर उसने उन्हें जो शिकस्त दी थी, उसका बदला भरपूर चुका रहे हैं....

चेतन बोला, बका, भाई साहब ने लाँडरी का काम देखने का वचन भी दिया, किन्तु दशा सुधरने के बदले प्रति दिन बिगड़ती ही गयी। अन्त में एक दिन उसने सुना कि भाई साहब लाँडरी को उसके भाग्य पर छोड़ कर काँग्रेस के डिक्टेटर हो गये हैं।

भाई साहब ने अपने उस फ़िरोज़पुरी मित्र से जहाँ लाँडरी के लाभ सुन रखे थे, वहाँ कारावास के राजनीतिक जीवन के विषय में भी बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बड़े-बड़े नेता पकड़े जा चुके थे, इसलिए जो भी नेता बनने और जेल जाने को तैयार होता, डिक्टेटर बन सकता था। घर में माँ

और पत्नी के कोसनों, लाँडरी में धोबियों और ग्राहकों के तगादों और दूसरे व्यावसायिक झगड़ों से भाई साहब का जीवन इतना कटु हो गया था कि उन्हें जेल की कोठरी कहीं अधिक लुभावनी लगती थी। शतरंज के उस फ़िरोज़पुरी चैम्पियन की चालें देखने और उसे मात देने की जिस उत्कंठा ने भाई साहब को, उपचेतन मन में, इतना बड़ा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने और 'नीच जात का काम' करने के लिए उकसाया था, वह यह जान कर शान्त हो गयी थी कि आखिर उसकी गढ़-रचना कोई ऐसी दुर्जय नहीं और वे अनायास ही उसकी ईंट-से-ईंट बजा सकते हैं। जब उन्होंने फ़िरोज़पुर के उस चैम्पियन पर अपनी गढ़-रचना का सिक्का, उसे निरन्तर शिकस्तें दे कर, जमा लिया तो लाँडरी जैसे 'नीच' काम का जंजाल पाले रखना उन्हें एकदम निरर्थक मालूम हुआ।

चेतन को भी एक तरह से शान्ति मिली। यह सच है कि घर में कुहराम मच गया और जिन लोगों के कपड़े गुम हो गये थे, उनके उलाहने और गालियाँ सुनते-सुनते उसके कान पक गये, किन्तु उसने अपने मित्रों से कह दिया कि भाई साहब लाँडरी से अलग हो गये हैं और अब इस विषय में उनके फ़िरोज़पुरी मित्र ही से पूछ-ताछ की जाय।

भाई साहब ने जिस निष्ठा से लाँडरी खोली थी, उससे कहीं अधिक निष्ठा से वे राष्ट्र-सेवा में निमग्न हो गये। दिन-रात वे काँग्रेस के काम में व्यस्त रहते। कहीं चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, कहीं झंडे की सलामी दे रहे हैं, कहीं जलूस निकाल रहे हैं, और कहीं सभा की व्यवस्था कर रहे हैं। घर वालों को उनके दर्शन भी दुर्लभ हो गये। अपने लम्बे छरहरे शरीर पर खादी की शेरवानी और खादी ही का चूड़ीदार पायजामा पहने, सिर पर तिरछी गाँधी टोपी रखे वे शुतर-बे-मुहार* की भाँति घूमते और घर वालों को इस प्रकार देखते मानो वे किसी नाली में किलबिलाने वाले अत्यन्त उपेक्षणीय, हेय, अन्धे, बुच्चे, कीड़े हों।

---

*शुतरे-बे-मुहार = बे-नकेल का ऊँट !

चेतन के मन में अपने भाई का सम्मान, घर में नित्य नयी दी जाने वाली गालियों के बावजूद, बढ़ने लगा था कि उसे काँग्रेस की एक सभा देखने का सुयोग मिला और उसे ज्ञात हो गया कि भाई साहब के लिए काँग्रेस की डिक्टेटरी भी लाँडरी से अधिक महत्व नहीं रखती।

उस दिन भाई साहब ने उससे अनुरोध किया था कि वह उस दिन की सभा देखने अवश्य आये और उन्होंने यह बताया था कि प्रेस के विषय में सरकार ने जिस कठोरता की नीति से काम लिया है, उसके विरुद्ध प्रोटेस्ट के तौर पर समाचार-पत्र बन्द हो गये हैं। देश में चारों ओर प्रोटेस्ट-सभाएँ हो रही हैं। इसी सम्बन्ध में उन्होंने भी सभा की व्यवस्था की है, जिसमें वे स्वयं एक बहुत ज़ोरदार भाषण देने जा रहे हैं। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उन्हें सभा में गिरफ़्तार कर लिया जाये। उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि वह उनका भाषण सुनने अवश्य आये और चलते-चलते यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो एक आध फूल-माला ज़रूर खरीद कर लेता आये।

चेतन उस दिन एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास पढ़ रहा था। यद्यपि उपन्यास को बीच ही में छोड़ कर जाना उसे बड़ा अप्रिय लगता था, तो भी भाई साहब का अनुरोध था और फिर इस बात की आशंका भी थी कि जाने वे उस दिन पकड़ लिये जायँ और जाने कितने वर्षों के लिए जेल की कोठरी में ठूँस दिये जायँ। इसलिए पुस्तक को हाथ ही में लिये हुए वह चल पड़ा और भाई साहब की इच्छानुसार उसने रास्ते में फूलों की माला भी खरीद ली।

जब वह चौक इमाम नसरुद्दीन में पहुँचा तो सभा प्रारम्भ हो चुकी थी। वह एक ओर खड़ा हो गया। उसने देखा कि डाइंग और ड्राइक्लीनिंग के विशेषज्ञ, राष्ट्रीय कवि सभापति के आसन की शोभा बढ़ा रहे हैं और भाई साहब एक समाचार पत्र से किसी नेता का वक्तव्य पढ़ रहे हैं। इसी को शायद वे भाषण देना कहते थे। चेतन ने देखा कि उनके हाथ काँप रहे हैं,

उनकी टाँगें काँप रही हैं, यहाँ तक कि तख्त और उस पर रखी हुई मेज़ भी काँप रही है।

तभी एक ओर से जनता उठ खड़ी हुई और 'पोलीस' 'पोलीस' का शोर मच गया। इस भगदड़ में चेतन हाथ में माला लिये हुए समीप ही खड़ी एक बैलगाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे क्षण उसे पता चला कि जिसे लोग पुलिस समझते थे, वह तो एक भयभीत साँड़ है। न जाने किस पाजी ने उसे सभा की ओर भगा दिया था। कभी वह डर कर एक ओर जाता, कभी दूसरी ओर, किन्तु जब साँड़ भय की सीमा पार कर, निर्भीक हो गया तो श्रोताओं ने, जो भाषण सुनने की अपेक्षा यह तमाशा देखने लगे थे, उसे रास्ता दे दिया। लोग फिर इकट्ठे होने लगे। चेतन भी बैलगाड़ी से उतर कर सभा के मध्य रखे हुए तख्त की ओर बढ़ा। उस समय उसने देखा कि वहाँ न सभापति महाशय हैं और न वक्ता महोदय और लोग मंच पर चढ़ कर हुल्लड़ मचा रहे हैं....

जब चेतन घर पहुँचा तो उसे पता चला कि वक्ता महोदय तो उससे कहीं पहले घर पहुँच गये हैं और बड़े आराम से खर्राटे भी ले रहे हैं। सभापति महाराज उसके पश्चात् महीनों जालन्धर में दिखायी नहीं दिये। वे दोआबा के गाँवों में भागते, छिपते और अपनी राष्ट्रीय कविताएँ सुना कर देहातियों का आतिथ्य स्वीकार करते, यह कहते फिरे कि उनकी गिरफ़्तारी के वारण्ट निकले हुए हैं और वे पुलिस को छकाते हुए अपने राजनीतिक कार्य को जारी रखे हुए हैं।

एक लम्बी अवधि के पश्चात् होशयारपुर की एक नयी लाँडरी का विज्ञापन चेतन के हाथ लगा जिसकी प्रशंसा में वही बैत छपे थे, जो कभी राष्ट्रीय-कवि ने 'भारत लाँडरी वर्क्स' की प्रशंसा में लिखे थे।

दूसरे दिन जब भाई साहब उठे तो लाँडरी की तरह काँग्रेस की डिक्टेटरी भी उनके मस्तिष्क से विलुप्त हो गयी थी। और क्योंकि ग्रीष्म ऋतु आ गयी

थी, इसलिए भाई साहब ने सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान को अपना अड्डा बनाने का निश्चय कर लिया था।

६ अपने बड़े भाई की प्रकृति के इस पक्ष पर विचार करता हुआ चेतन जब 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में पहुँचा तो उसने देखा कि उसके भाई पंडित बनारसीदास की दुकान पर चन्द बेफ़िक्रों के साथ ताश खेल रहे हैं। चेतन चुपचाप दुकान के तख्ते पर जा खड़ा हुआ। बाज़ी शुरू हो चुकी थी और वे बड़ी तन्मयता से पत्ते लगा रहे थे। उस समय उनकी आकृति पर कुछ ऐसी गम्भीरता विद्यमान थी जो अपनी सेना की व्यूह-रचना करते समय नायक की आकृति पर होती है। पत्ते लगाने के बाद उन्होंने कनखियों से अपने इर्द-गिर्द बैठे हुए खिलाड़ियों पर एक नज़र डाली, फिर दोपहर से उकडूँ बैठे रहने के कारण थकी हुई अपनी टाँगों को पसार कर ज़रा सीधा किया और फिर पत्तों को छिपाते हुए उसी प्रकार जम कर बैठ गये।

तभी पंडित बनारसीदास ने एक थकी हुई हँसी के साथ कहा, बस अब इस पर टिकट* लगाकर खत्म करो।"

इशारा पत्ते बाँटने वाले की ओर था।

चेतन के बड़े भाई ने कहा, "भगवान ने चाहा तो इस बार टिकट बस लग ही जायगी!" और फिर अपने पत्तों पर एक उल्लास-भरी दृष्टि डाल कर अपने सामने बैठे हुए साथी को आदेश दिया, "माँगो भी अब जल्दी कि सारी उम्र पत्ते ही लगाते रहोगे।

धीमी आवाज़ में साथी ने कहा, "सात!"

तब दूसरे ने कहा, "आठ!"

लेकिन उनसे भी बढ़ कर, जैसे उछल कर, चेतन के भाई ने कहा,

*जब एक व्यक्ति उस समय तक पत्ते बाँटता रहे जब तक कि उस पर सौ तक नम्बर हो जायँ, तो उस पर टिकट लग जाती है—पंजाब के ताश खेलने वालों की भाषा में! कहीं-कहीं उसे 'राय साहब' की उपाधि भी दे दी जाती है। टिकट लगने के बाद उसका दूसरा साथी ताश फेंटने लगता है।

"ग्यारह !" और फिर इस बात की प्रतीक्षा किये बिना कि चौथे को भी कुछ बोलना है, उन्होंने कहा, "रंग पान" और पत्ता फेंक दिया।

चुपचाप दुकान के तख़्ते पर खड़ा चेतन सोचने लगा, 'ये लोग कैसे इस फ़िज़ूल के खेल में समय नष्ट कर सकते हैं ? कोई काम नहीं, काज नहीं, आशा नहीं, आकांक्षा नहीं। बस, किसी तरह समय को ज़िबह किये जाते हैं !' एक दयाभरी दृष्टि उसने उन सब पर डाली। चारों खिलाड़ी तन्मय हो कर भूत-भविष्य की चिन्ताओं को भुला कर खेल में निमग्न थे। उनको भी चेतन ने देखा जो खेल को देख कर ही खेलने वालों से अधिक रस पा रहे थे। उन्हीं में सबसे अधिक दिलचस्पी लेने वाले थे स्वयं दुकान के मालिक पं० बनारसीदास !

वहीं खड़े-खड़े उस व्यक्ति का सारा जीवन चेतन के सामने घूम गया। उनके दादा का चित्र भी उसके सामने आया। पतला-दुबला शरीर, पं० रामरत्न नाम। इसी दुकान में जहाँ खेल जमता है, वे नोन-तेल बेचा करते थे। पर नोन-तेल बेचने से ज़्यादा वे मुहल्ले के रोगियों का इलाज किया करते थे। उनके नुसखे अचूक होते। प्रायः मरणासन्न रोगी एक बार उठ कर बैठ जाता। इसके अतिरिक्त वे मुहल्ले के बच्चों को गणित के प्रश्न भी समझाया करते थे। उन्हें आँख से कुछ अधिक दिखायी न देता था। चेतन को स्वयं उनका वह आँखों के पास स्लेट ले जा कर, एक आँख को प्रायः बन्द करके, गणित के प्रश्न समझाना याद था।

पं० बनारसीदास के बचपन ही में उनके पिता परलोक सिधार गये थे। उनकी माँ को पं० रामरत्न ने घर से निकाल दिया था।

हिन्दू विधवा का जीवन आज भी उतना सुगम नहीं, पर तब तो बाघों से घिरी असहाय मृगी के समान था। ससुराल में किसी प्रकार का स्थान न होने के कारण, प्रायः विधवा को किसी देवर, जेठ या ऐसे ही किसी रिश्तेदार के आश्रय में रहना पड़ता था। और इस आश्रय का मूल्य भी उसे भरपूर चुकाना पड़ता था। पंडित बनारसीदास की माँ के साथ भी वही हुआ जो दूसरी अनेक विधवाओं के साथ होता था। पर पंडित रामरत्न को जब मालूम

हुआ कि उनकी बहू अपने सतीत्व को नहीं निभा सकी तो एक रात जब मुहल्ले वाले सुख की नींद सो रहे थे, वे उसे उसके मायके का किराया दे कर चुपचाप स्टेशन पर छोड़ आये।

मातृ-पितृ-स्नेह तथा भय-विहीन पं० बनारसीदास जल्द ही उन सब गुणों से सम्पन्न हो गये, जिन्हें बे-माँ-बाप के बच्चे शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। यही कारण है कि दो-दो तीन-तीन वर्ष में दादा के यत्नों से छोटे दर्जे पास करके जब वे दसवें दर्जे तक पहुँचे तो उन्होंने वहीं डेरा डाल दिया।

पंडित रामरत्न ने भरसक प्रयत्न किया कि किसी तरह वे अपने इस 'योग्य' पोते को मैट्रिक पास करा के, उसे कहीं खाते-कमाते देख कर मरें पर उनकी यह लालसा मन-ही-मन में रही। चौथे वर्ष फिर मैट्रिक में फ़ेल होने पर जब पंडित बनारसीदास अपने दादा की रही-सही पूँजी ले कर चम्पत हो गये, तो इसी फ़िराक में पं० रामरत्न ने प्राण त्याग दिया।

इसके बाद जब तक पूँजी रही पंडित बनारसी दास खूब घूमते रहे, पर जब वह सब खत्म हो गयी तो फिर वापस आ गये और अपने दादा की उस दुकान का जीर्णोद्धार करके उस पर जम कर बैठ गये। पुरखों में से किसी ने नौकरी जैसा निकृष्ट काम न किया तो फिर वे ही क्यों करते? दादा नोन-तेल बेचते थे, उन्होंने इन सब झंझटों से छुट्टी पा कर रुई और सूत का काम शुरू कर दिया। कौन दो-दो पैसे की चीज़ें तोलता फिरे। एक-दो देहाती फँस जाते तो उतनी बचत निकल आती जितनी उनके दादा को दिन भर तराजू से जूझ कर प्राप्त न होती। फिर पं० बनारसीदास दो दिन कमाते तो चार दिन बैठ कर खाते। जिस दिन चार मित्र न आते उस दिन खोये-खोये-से दूकान पर बैठे रहते, फिर स्वयं ही उठ कर उन्हें इकट्ठा कर लाते। शादी तो इस हालत में क्या होती, रहा रोटी का प्रश्न तो उसके लिए यार-बाश मौजूद थे। कभी-कभी खुद भी दो रोटियाँ सेंक लेते। जब और कोई डौल न होता तो सेर-दो सेर दूध पी कर पड़ रहते।

"यह भी कोई जीवन है।" और निमिष भर के लिए चेतन के सामने अपनी आकांक्षाएँ घूम गयीं—"कीड़े!"—उसने मन-ही-मन उपेक्षा से कहा,

"किसी दिन यों ही मौत के मुँह में जा पड़ेंगे।"

तभी उसने देखा, उसके बड़े भाई अपने एक प्रतिपक्षी के साथ गुत्थम-गुत्था हो रहे हैं। चेतन का ध्यान उधर नहीं था। बात यह हुई कि उनके एक प्रतिपक्षी ने रंग का पत्ता छिपा लिया। लेकिन चेतन के भाई को धोखा देना आसान न था, एक थप्पड़ उसके मुँह पर जमाते और गाली देते हुए उन्होंने कहा, "यह पत्ता कब का अपनी माँ के पास छिपा रखा था?"

एक तो तीन-चार घंटे से पीसते रहने का दुःख, दूसरे चालाकी के पकड़े जाने का गुस्सा, तीसरे थप्पड़ की चोट, चौथे गाली....उसने थप्पड़ के जवाब में तान कर घूँसा दे मारा और दोनों गुत्थम-गुत्था हो गये। इससे पहले कि दूसरा कोई उनकी मदद करता, रुई तोलने के बाँटों से दोनों के सिर फट चुके थे। चेतन जब चौंका तो उसने देखा कि एक को पं० बनारसी दास ने पकड़ रखा है और दूसरे को दुर्गादास अपनी बाहों में बाँधे हुए हैं और दोनों घायल सिंहों की तरह एक-दूसरे को ताक रहे हैं और दहाड़ों के नाम पर गालियाँ दे रहे हैं।

चेतन को तब याद आया कि वह तो अपने भाई को बुलाने आया था वह आगे बढ़ा और श्री रामानन्द का हाथ थाम उन्हें घर की ओर ले चला।

●

७

फटे हुए सिर से बहता हुआ रक्त लिये जब श्री रामानन्द घर पहुँचे तो अपने पुत्र को लोहू में लथपथ देख माँ के हाथ-पाँव फूल गये। अपना सब गुस्सा उसे भूल गया और रोने की हद तक चीख कर उसने चेतन से कहा कि लपक कर वह पानी गर्म करे, इतने में वह स्वयं अन्दर से कपड़ा लाती है। कपड़ा तो उस बदहवासी में क्या मिलता, माँ ने अभी-अभी धोबी के यहाँ से आयी हुई नयी धोती फाड़ कर पट्टी बनायी। इतने में चेतन पानी लाया और—"मैं कहता हूँ, कुछ नहीं, मैं कहता हूँ, कुछ नहीं," —रामानन्द के यह कहते रहने के बावजूद माँ ने इस प्रकार, जैसे वह कोई

दूध पीता बच्चा हो, उस ताश और शतरंज के चैम्पियन का सिर अपनी गोद में ले कर घाव धोया और पट्टी बाँध दी। तब उलाहने के स्वर में थकी रुआँसी आवाज़ में उसने पूछा, "कहाँ से यह चोट खा आया तू?"

चेतन ने बता दिया कि खेलते-खेलते झगड़ा हो गया था।

तब चेतन की भाभी श्रीमती चम्पावती (जो इस समय तक उधर से उदासीन अपने कमरे में बैठी ब्लाउज़ सी रही थीं) वहाँ आ गयीं और चीख़ कर बोलीं, "मैं कहती हूँ आप को यही सब कुछ करना है तो मुझे मायके भेज दो।"

चेतन की भाभी चम्पावती आदमपुर दोआबा के स्टेशन मास्टर पं० गिरधारीलाल की लड़की और पटवारी पं० गंगाराम की पोती थीं—पं० गंगाराम के दो लड़के थे—चम्पा के पिता पं० गिरधारीलाल और चचा पं० मुन्शीराम।

जब दोनों पुत्र काम पर जाने लगे, तो पटवारगिरी छोड़ पिता ने संन्यास ले लिया। कौन ऐसी बात थी जिससे वे एकदम संसार से विरक्त हो बैठे, इसे तो भगवान ही जाने, पर पत्नी की मृत्यु के बाद वे बहुत देर तक नौकरी पर नहीं रहे। वे वन में जा बैठे हों या ज्ञान-ध्यान में उन्होंने मन लगा लिया हो, यह बात नहीं। उनके विचार तथा भ्रम वैसे ही बने रहे और आत्मा और परमात्मा के झगड़ों से वे उतने ही दूर रहे जितने पहले थे। हाँ, उन्होंने जोगिया कपड़े अवश्य पहन लिये और जहाँ पहले अपना घर ही उनका घर था, वहाँ अब सब के घर उनके घर हो गये।

चम्पा के पिता आयु में बड़े थे, उन्होंने पदवी भी बड़ी पायी। अपने पिता पं० गंगाराम की पटवारगिरी के ज़माने ही में वे तार बाबू हो गये थे, और फिर बढ़ते-बढ़ते स्टेशन-मास्टर के पद तक जा पहुँचे थे। पंडित मुन्शीराम छोटे थे, इसलिए छोटे रहने ही में उन्होंने अपना गौरव जाना। वे क़स्बे की प्राइमरी पाठशाला में अध्यापक हो गये और यह समझ कर कि विद्या-दान ही सब से उत्तम दान है, वे सहज सन्तुष्ट बने रहे।

किन्तु सम्पन्नता और विपन्नता में कम ही बनती है और पं० मुन्शीराम

और उनके भाई में भी कभी नहीं बनी। एक को अपनी सम्पन्नता का गर्व था, दूसरे को अपनी विपन्नता का अभिमान। पं० गिरधारीलाल की पत्नी मर गयी थी, इसलिए उनके लड़के-लड़कियों ने लड़ना-झगड़ना और अपने अहंकार में रत रहना खूब सीख लिया था। इन्हीं पं० गिरधारीलाल की बड़ी लड़की चम्पावती से चेतन के बड़े भाई रामानन्द का विवाह हुआ तो उनके घर की कलह श्रीमती चम्पावती द्वारा इस घर में भी चली आयी। चम्पावती ने अपने घर में माँ और चची में, माँ और बड़ी भावज में नित झगड़ा होते देखा था और जब दोनों भाई अलग हो गये और माँ भी परलोक सिधार गयी तो उसके पद-चिन्हों पर चलने को अपना परम कर्तव्य मान कर श्रीमती चम्पावती ने अपनी बड़ी भावज को सास की अनुपस्थिति खटकने न दी थी। यह सब होते हुए कैसे सम्भव था कि वह अपनी ससुराल में शान्ति का अखण्ड राज्य रहने देती! वह तो आते ही अलग हो जाती पर दुर्भाग्य से श्री रामानन्द काम के नाम पर सिर्फ़ ताश और शतरञ्ज खेलना जानते थे और अपनी सुपत्नी की डाँट-डपट, रोने-पीटने तथा रूठने का उस धीर-वीर युवक पर कुछ प्रभाव न पड़ता था।

जब चेतन की भाभी ने अपने पति के फटे हुए सिर और लोहू में शराबोर कपड़ों की ओर कोई ध्यान न दिया तो चेतन के भाई पहली बार कराहे। तब बीमार बनने ही में उन्होंने अपनी कुशल समझी। झगड़े का सिगनल होता देख चेतन में ने माँ से कहा कि खाना परोस दो, मैं नीचे बैठक ही में जा कर खा लूँगा। और झट-पट वह थाली ले कर वहाँ से खिसक गया।

नीचे अपने कमरे में जा कर खाना खाने के बाद चेतन ने पानी बाहर कुएँ ही से पी लिया। ऊपर जाना उसे उचित नहीं लगा। फिर जैसे निश्चिन्त हो कर वह माँ के आदेशानुसार बस्ती ग़ज़ाँ के पं० दीनबन्धु को चिट्ठी लिखने लगा। ऊपर होने वाले झगड़े का स्वर उसकी तन्मयता को भंग न करे, इस विचार से उसने किवाड़ भी लगा लिये और कलम-दावात ले कर

बड़े इतमीनान के साथ बैठ गया ।

तब ऊपर उठने वाले तूफ़ान ने कितना ज़ोर पकड़ा, कितने बादल गरजे, कितना पानी बरसा, यह सब उसे मालूम नहीं हुआ। कभी-कभी बंद किवाड़ों को भेद कर आने वाले भावज के कर्कश स्वर से उसे तूफ़ान के पूरे ज़ोरों पर होने का आभास मिल जाता था।

कलम-दावात ले बैठने पर भी वह चिट्ठी न लिख सका, क्योंकि चिट्ठी लिखना और खाना खाना दोनों एक-सी बातें न थीं, और फिर उस समय जबकि ऊपर तूफ़ान उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। तभी जब वह हैरान था कि क्या करे और क्या न करे, उसे बाहर किसी अपरिचित कंठ की आवाज़ सुनायी दी—"रामानन्द, रामानन्द ?"

कोई आगन्तुक उसके भाई का नाम ले कर पुकार रहा था।

वह क्षण भर रुका, किसी ने फिर बैठक के किवाड़ खटखटाये। उठ कर उसने दरवाज़ा खोला। देखा—पतले छरहरे शरीर, लम्बी नाक, छोटी ठोड़ी और गोरे रंग का एक युवक नफ़ीस सूट पहने खड़ा है।

"रामानन्द है ?" उसने पूछा।

"जी, हाँ।"

"कहना हुनर आया है।"

"हुनर साहब।"

"हाँ।"

और जैसे निमिष-मात्र के लिए आगन्तुक को आँखों से पी कर चेतन भागता हुआ ऊपर पहुँचा और जा कर भाई को बड़े उत्साह से उसने यह समाचार दिया कि हुनर साहब आये हैं।

उस समय उसके भाई चुपचाप चारपाई पर लेटे थे, भावज शायद मायके का सामान तैयार करके आँखों में अंगारे लिये मेज़ के एक कोने पर बैठी थीं और माँ एक पीढ़ी पर बैठी रो रही थी।

"हुनर !' चेतन के भाई उछल कर उठे। अपने उस मित्र के आगमन को जैसे दैवी सहायता जान कर उस झगड़े से अपना दामन बचा, वे सीढ़ियों

की ओर लपके।

माँ ने कहा, "खाना तो खाते जाओ।"

"मैं आज खाना नहीं खाऊँगा," यह कहते हुए वे जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गये।

तब उनकी पत्नी ने चीख़ कर क्या कहा, वह सब उन्होंने नहीं सुना।

●

८

उस लम्बे क़द के छरहरे-से युवक को चेतन मुग्ध-सा खड़ा देखता रह गया। उसके बड़े भाई ने कितनी बार उसे इस युवक की कवित्वशक्ति की कहानियाँ सुनायी थीं। किस प्रकार कॉलेज के दिनों ही में वह आशु कविता कर लेता था :—

हलवाई ख़ुश कि दाम ज़्यादा किये वसूल
मैं ख़ुश कि रेवड़ियों में चवन्नी भी आ गयी

या

तार इस मतलब का आया है मुझे भूपाल से
रात भर भैंसे की दुम हिलती रही भूचाल से

ये और ऐसे कितने ही उनके शेर❋ चेतन ने अपने भाई से सुन कर याद कर रखे थे। तब उसे क्या मालूम था कि ये हुनर साहब के नहीं, बल्कि हास्य-रस के एक और प्रख्यात कवि के हैं।

लाहौर के एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र के सम्पादन-विभाग में हुनर साहब काम करते थे। चेतन की बड़ी भारी आकांक्षा थी कि वह भी किसी समा-

❋शेर—इसका उच्चारण उस 'शेर' की तरह नहीं होता जिसका अर्थ सिंह होता है बल्कि इसकी 'ए' में उर्दू 'ऐन' होती है और 'शे' कहने में तालू पर ज़ोर देना पड़ता है। दोहे की तरह दो पंक्तियों की कविता को शेर कहते हैं। उर्दू ग़ज़ल में पृथक-पृथक कई शेर होते हैं।

चार पत्र का सम्पादक बने। कई बार सपनों में अपने आप को सम्पादक के रूप में देख कर वह प्रसन्न भी हो चुका था। इसीलिए हुनर साहब के प्रति उसके मन में वही भाव था जो किसी महान् व्यक्ति के दर्शनार्थ आने वाले श्रद्धालु के मन में होता है। हुनर साहब की बातें, उनकी आकृति, उनकी वेश-भूषा, उनका सभी कुछ उसे साधारण लोगों से कुछ भिन्न जान पड़ा।

तीनों एम्प्रेस गार्डन की ओर जा रहे थे। हुनर साहब लाहौर की दिलचस्पियों का ज़िक्र कर रहे थे—वहाँ के मुशायरे, वहाँ की सम्पादक-मंडली, वहाँ की मजलिसें—और चेतन मुग्ध-सा सुन रहा था। उसके भाई साहब भी प्रभावित थे, किन्तु हुनर साहब ताश या शतरंज के तो चैम्पियन थे नहीं, इसलिए उनके भाग्य से चेतन के भाई साहब को कोई ईर्ष्या न थी, पर चेतन की श्रद्धा का तो जैसे वारपार न था, उसकी दृष्टि तो उनके मुख से हटती ही न थी। उस चेहरे की एक-एक भंगिमा उसके मन पर अंकित हो रही थी और हुनर साहब की बातें उसके कानों से हो कर सीधे उसके हृदय में स्थान बना रही थीं। उसके मस्तिष्क में लाहौर का वातावरण अपनी समस्त विभिन्नता और मनोरंजकता के साथ घूम जाता और अपने सीमित क्षेत्र का विचार करके उसका दम घुटने-सा लगता।

सम्पादक और अध्यापक में कितना अन्तर है! वह सोचता—सम्पादक क़लम का सम्राट है। चाहे तो साम्राज्य बना दे, चाहे तो बिगाड़ दे। वह बड़े-से-बड़े व्यक्ति तक की आलोचना बड़ी निर्भीकता से कर सकता है (चेतन को तब यह मालूम न था कि पूँजीवादी युग में समाचार पत्र ही नहीं खरीदे जाते, उनके सम्पादक और कई बार मालिक तक खरीदे जा सकते हैं।) और अध्यापक—चेतन के सामने घूम गया छुट्टी का दृश्य! लड़के घण्टी बजते ही घरों को भाग जाते और दिन भर माथा-पच्ची करने के बाद थके-हारे अध्यापक इस बात की प्रतीक्षा किया करते कि हेडमास्टर साहब आ जायँ तो उन्हें नमस्कार करके घर जायँ। हेडमास्टर साहब कई बार अपनी क्लास को छुट्टी के बाद भी कितनी देर तक न छोड़ते थे—चेतन को भूख लग-लग कर मिट जाया करती थी। और किसी प्राइवेट संस्था का अध्यापक

तब चेतन की दृष्टि में सबसे बड़ा ग़ुलाम था और सम्पादक सबसे अधिक स्वच्छन्द और स्वतंत्र।

तीनों जा कर लॉन में बैठ गये। एक भिश्ती सामने टाउन हाल की सीढ़ियों पर रखे हुए गमलों को पानी दे रहा था। लॉन में एक ओर कुछ छोटे बच्चे कबड्डी खेल रहे थे। दूसरी ओर कुछ मनचलों में बैतबाजी हो रही थी। लॉन के साथ एक वीथी पर दो-तीन सुन्दर पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अपने परिवार के साथ चहल-कदमी कर रही थीं। उसी वीथी के बराबर एक बेंच पर शलवार और कमीज़ पहने एक अत्यन्त सुन्दर, सम्पन्न, पर अशिक्षित युवक अपने कुत्ते को लिये हुए अपनी भाव-भंगिमा से अपने आप को पूर्ण रूप से शिक्षित दर्शाने का उपक्रम कर रहा था। किन्तु उसकी प्रत्येक भाव-भंगी, उसके गले का खुला बटन, उसके बालों की काट, उसकी शलवार का फुलाव, उसके निपट निरक्षर होने का पता देता था।

तब हुनर साहब ने धीमे स्वर में गा कर एक शेर सुनाया :

फिर एक तक़सीर कर रहा हूँ, खिलाफ़े तक़दीर कर रहा हूँ
फिर एक तदबीर कर रहा हूँ, ख़ुदा अगर क़ामयाब कर दे

और कहने लगे, यह हफ़ीज़ का शेर है—जालन्धर के मशहूर कवि हफ़ीज़ का, और उन्हें इसकी कला पर नाज़ है। शिमले के एक मुशायरे में हम सबको बुलाया गया था। रिज्ज के ऊपर डेविको बॉलरूम में सम्मेलन होने वाला था। मिडल बाज़ार के एक मुस्लिम-होटल में हम ठहरे थे। वहीं हफ़ीज़ ने यह शेर लिख कर सुनाया। सब सिर धुनने लगे। तब मैंने अपने एक शागिर्द 'साहिर' को एक शेर लिख कर दिया। इत्तफ़ाक देखिए, उसकी बारी पहले आ गयी। उसने वह शेर पढ़ा तो लोग कुर्सियों से उछल पड़े। वह दाद मिली कि हफ़ीज़ साहब का मुँह ज़रा-सा निकल आया। जब उनकी बारी आयी तो उन्होंने अपना शेर पढ़ा ही नहीं।

चेतन ने उत्सुकता से कहा, "कृपया अपना वह शेर सुनाइए!"

गर्व के साथ सिर उठा कर हुनर साहब ने शेर सुनाया :

मैं अपनी तक़दीर का हूँ कायल, हरीफ तदबीर पर है मायल
ख़ुदा के दर पर हैं दोनों सायल, जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे

और उछल कर चेतन ने कहा, "वाह तक़दीर का कायल होना तो यही है, 'जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे।' 'जिसे' ने वह बात पैदा कर दी है कि वाह क्या कहने हैं!"

उस समय चेतन को क्या मालूम था कि जिस शेर पर वह सिर धुन रहा है वह तो किसी दूसरे मस्तिष्क की उपज है और हुनर साहब को तो वह कहानी गढ़ने ही की दाद दी जा सकती है। लेकिन तब चेतन के हृदय में श्रद्धा का अगाध समुद्र कहीं से उमड़ पड़ा और उसका जी चाहा कि हुनर साहब के चरण चूम ले।

इसके बाद हुनर साहब ने 'जिगर' मुरादाबादी और 'फ़ानी' बदायूनी की पूरी-की-पूरी ग़ज़लें अपने नाम से सुना डालीं। पर इसे जालन्धर की सीमित दुनिया में रहने वाला, आर्य-समाजी कॉलेज में बी० ए० तक हिन्दी पढ़ने वाला चेतन क्या जानता—विशेषकर उस समय जब उसका उर्दू शायरी का ज्ञान केवल दो-चार स्थानीय मुशायरों में सुनी हुई ग़ज़लों तक ही सीमित था।

रात को हुनर साहब के घर पर मजलिस जमी। वे अपने बहनोई साहब के यहाँ ठहरे थे। शेर पर शेर, ग़ज़ल पर ग़ज़ल सुनाते जाते थे। शेर उनकी ज़बान से ऐसे निकले पड़ते थे, जैसे वर्षा-ऋतु में अनायास ही पहाड़ पर झरने फूट पड़ते हैं। उनका मस्तिष्क काव्य का एक समुद्र था, जिसकी ऊर्मियाँ असंख्य और अगनित थीं।

चेतन के मन में कभी-कभी यह सन्देह अवश्य सिर उठाता कि इतनी-सी आयु में उन्होंने इतनी ग़ज़लें कैसे कह डालीं और इतना कुछ कहने पर भी उनका कोई संग्रह क्यों नहीं छपा। पर प्रायः प्रत्येक ग़ज़ल के साथ किसी-न-किसी कवि-सम्मेलन की जो एक कहानी हुनर साहब सुनाते थे, उसके कारण वह सन्देह ज़ोर न पकड़ पाता और संग्रह के बारे में जब उसने

झिझकते हुए प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि प्रकाशक तो दयानतदार मिलते नहीं, फिर कोई संग्रह छपवाये भी तो कैसे और क्यों ?

अन्त में एक बजे के लगभग हुनर साहब ने अपनी एक कहानी सुनानी शुरू की जो उन्होंने हाल ही में लिखी थी। तब चेतन के बड़े भाई जम्हाइयाँ लेने लगे। दिल-ही-दिल में अपने इस असाहित्यिक भाई को उनकी अरसिकता पर कोसते हुए चेतन ने हुनर साहब से स्वयं अपनी आरम्भिक कोशिशों का ज़िक्र किया और सकुचाते हुए अपने दो-एक शेर भी सुनाये और कहा कि कहानी लिखने में उसकी रुचि अधिक है।

"तुम कहीं लाहौर होते"—हुनर साहब ने चेतन का उत्साह बढ़ाते हुए कहा, "ऐसी प्रतिभा है तुममें कि कुछ ही दिनों में चमक उठते।"

भाई साहब की जम्हाइयाँ उत्तरोत्तर बढ़ रही थीं। इसलिए चेतन ने छुट्टी ली और मन-ही-मन हुनर साहब को अपना गुरु मान लिया और निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो वह लाहौर जा कर दम लेगा। जालन्धर में तो उसकी प्रतिभा का अंकुर सूख कर रह जायगा, लाहौर में यदि अनुकूल जलवायु मिल गया तो न जाने वह महान विटप बन जाय।

घर आ कर उसने सबसे पहले उन पं० दीनबन्धु को चिट्ठी लिखी कि वह लाहौर अवश्य जायगा। विवाह का जुआ वह अपने गले में नहीं डालना चाहता। उसने लिखा कि वह उन्हें धोखा नहीं देना चाहता। उसकी आकांक्षाएँ बड़ी हैं। उसके रोज़गार का भी कोई भरोसा नहीं। उनको या उनकी लड़की को व्यर्थ का कष्ट होगा। और उसने यह भी लिख दिया कि वे अब उसके पिता के पास जेजों जाने का कष्ट न करें। मन-ही-मन उसने यह फ़ैसला भी कर लिया कि दूसरे दिन सुबह ही वह चिट्ठी डाल देगा।

●

९

दूसरे दिन चेतन अपने बड़े भाई को बताये बिना हुनर साहब को स्टेशन पर छोड़ आया और उस प्रोत्साहन के बदले में, जो उसके इस नये गुरु ने उसे दिया था, पाँच रुपये का एक अकिंचन-सा नोट भी उन्हें

भेंट कर आया।

बात यह थी कि स्टेशन पर जा कर हुनर साहब को अचानक मालूम हुआ कि उनका बटुआ घर ही पर रह गया है। वे वापस चलने को तैयार हो गये थे। पर चेतन की श्रद्धा को गवारा न हुआ कि वे पाँच रुपये के लिए वह गाड़ी छोड़ दें, जिस पर जाना उनके कथनानुसार उनके लिए अत्यन्त आवश्यक था।

जब वह स्टेशन से घर वापस आया तो घर के बाहर मुहल्ले ही में उस 'लेक्चर' को सुन कर जो उसके भाई को ऊपर पिलाया जा रहा था, और उन 'मृदु वचनों' से जो एक पुंसत्व-भरी आवाज़ में उन पर निरन्तर बरसाये जा रहे थे, चेतन ने जान लिया कि उसके पिता आ गये हैं।

अपने पिता के प्रति चेतन के मन में सदैव एक भय-सा वर्तमान रहता था। जब वे अपने जाने धीमे स्वर में बात कर रहे होते तो दूर से ऐसा लगता जैसे लड़ रहे हैं—'माँ पेउ दिया गालां, दुद्ध घेउ दिया नालां*— पंजाबी भाषा की इस कहावत को वे सर्वथा सत्य मानते थे। इसलिए पुत्रों से बातें करते समय वे उन्हें निरन्तर दूध-घी के ये घूँट पिलाते रहते थे।

हुनर साहब को गाड़ी पर सवार कराने में चेतन को देर हो गयी थी। पिता की आवाज़ सुन कर चेतन का माथा ठनका। उसने कोशिश की कि चुपचाप नीचे अपने कमरे में जा कर कपड़े बदल ले और स्कूल चला जाय। स्नान वह सुबह ही कर गया था। उसने सोचा कि खाना स्कूल जा कर खा लेगा और चुपचाप आँगन से हो कर वह अपने कमरे में चला गया। शलवार कमीज़ और कोट पहन वह पगड़ी बाँधने ही लगा था कि जल्दी में शीशा उसके हाथ से गिर पड़ा और उसे आया जान कर उसके पिता ने आवाज़ दे दी।

उनकी आवाज़ सुन कर चेतन बिना पगड़ी बाँधे ऊपर चला गया। आँगन में दीवार के साथ लगी चारपाई पर चेतन के पिता बैठे थे। पीठ

माँ-बाप की गालियाँ दूध-घी के घूँट!

उनकी दीवार से लगी थी, पगड़ी उनकी बगल में थी और कमीज़ के बटन खुले होने के कारण उनके विशाल सीने के कुछ सफ़ेद बाल दिखायी देते थे। चेतन ने देखा उनके सिर और मूँछों के सब बाल सफ़ेद हो गये हैं, किन्तु इससे उनके चेहरे का रोब और उन छोटी आँखों की कठोरता कुछ भी कम नहीं हुई और न उनकी आवाज़ के तीखेपन में ही कमी आयी है।

"कहाँ गये हुए थे ?"

उसके पिता ने इस प्रकार चेतन की ओर देखा जैसे वह पाँच-छः वर्ष का बच्चा हो जिसे झिड़कना और डाँटना अत्यन्त आवश्यक हो।

चेतन के कानों में अपने पिता का यह प्रश्न गूँज गया। उससे उत्तर तुरन्त न बन पड़ा। बात यह है कि छात्र से अध्यापक हो जाने में चेतन अपने बड़प्पन का जो गर्व अनुभव करता था, वह दो अवसरों पर उसका साथ छोड़ देता था—एक तो जब वह अपने किसी लाहौर से डिग्री पाये हुए मित्र से मिलता और दूसरे जब वह अपने आप को अपने पिता के सामने पाता।

उसका गला सूखने-सा लगा। अपने उन मित्रों के प्रचुर ज्ञान के रोब को वह अपने कवि और कहानीकार होने के रोब से परास्त कर देता था। क्या हुआ यदि उसने लाहौर नहीं देखा ? क्या हुआ यदि उसे बहुत-सी बातों का ज्ञान नहीं, पर सृजन की जो शक्ति उसमें है, उसके मित्रों में कहाँ ? साहित्य के निर्माण का जो सलीका उसे है, वह उन्हें कहाँ ?—और जब उसकी कविताओं और कहानियों को सुन कर उसके मित्र मान लेते थे कि उसका भविष्य उज्वल है तो अपने अभाव को वह भूल जाता था। किन्तु उसका यह अस्त्र अपने पिता के सामने न चलता। वह तो उनके सम्मुख अपनी इस कवित्व-शक्ति की बात तक प्रकट करने का साहस न कर सकता था। उसे यह भी डर था कि यदि उसने उन्हें यह बात बतायी भी तो सम्भव है कि उसके पिता उसे समझ ही न पायें। मुलतान डिवीज़न के सुदूर स्टेशनों पर दिन-रात टिकटों, मुसाफ़िरों और गाड़ियों से वास्ता रखने वाले, पुराने ज़माने के मैट्रिक उसके पिता, अपने इस पुत्र की महत्वाकांक्षा को समझ

सकेंगे, उसे इसमें संदेह था। उनसे यदि वह कहता—मैं लाहौर जा रहा हूँ, एम० ए० करने के बाद फ़ाइनान्स की परीक्षा में बैठूँगा और ए० टी० एस० बनूँगा तो वे समझ जाते, क्योंकि ए० टी० एस० उनके टी० आई० का भी अफ़सर था। किन्तु चेतन एक महान् साहित्यिक बनने जा रहा है, यह बात शायद उनकी समझ से दूर थी।

इसलिए उसने थूक निगल कर सिर्फ़ इतना ही कहा, "अपने एक मित्र को गाड़ी पर चढ़ाने गया था।"

तब चेतन के बड़े भाई ने कुछ कहने के लिए कंधे हिलाये। दर-असल वे हुनर साहब के बारे में कुछ कहना चाहते थे, पर चेतन की आँखों में अनुनय का जो भाव था, उसका और उन झिड़कियों का ख़याल करके जो उन्हें अभी-अभी मिल रही थीं, वे कंधे हिला कर ही चुप हो रहे।

वास्तव में चेतन और उसके बड़े भाई में एक तरह का मौन समझौता था। वे दोनों भाई होने की अपेक्षा एक-दूसरे के मित्र अधिक थे। मानो अज्ञात रूप से दोनों ने एक-दूसरे के दोषों पर पर्दा डालना सीख लिया था। यह और बात है कि इस समझौते में अधिक भाग चेतन ही को अदा करना पड़ा था। बचपन ही से नित्य अपने बड़े भाई के लिए उसे झूठ बोलना पड़ा था। माता-पिता और यहाँ तक कि दादा की गालियाँ सुननी पड़ी थीं। इसी स्वाभाव के फलस्वरूप (जब एक बार चेतन के बड़े भाई उसके सिर पर ही बिस्तर उठवा कर स्टेशन पर पहुँच, किसी अज्ञात स्थान को भाग गये थे और कम-से-कम उसे रोज़ एक पत्र लिखने का वादा करके भी महीने भर में उन्होंने एक पत्र न लिखा था) उसे कई बार चुपचाप एकान्त में रोना भी पड़ा था। अपने इस बड़े भाई से उसे छोटे भाई जैसा स्नेह था। शायद चेतन के बड़े भाई भी इसे महसूस करते थे और इसीलिए वे चुप भी हो रहे थे।

"किस मित्र को छोड़ने गये थे?"

"लाहौर के एक मित्र को।" फ़र्श में आँखें गाड़े चेतन ने उत्तर दिया।

पर इससे पहले कि अपने कड़कते स्वर में (जो साधारणतः मुहल्ले के

सिरे पर पंसारी की दुकान तक जा पहुँचता था) चेतन के पिता उससे पूछते, 'किस मित्र को ? मैं उसका नाम पूछता हूँ ?' कि बाहर मुहल्ले में जैसे एकदम कोलाहल-सा उठ खड़ा हुआ और एक स्त्री के रोने की आवाज़ उच्च से उच्चतर होने लगी।

जालन्धर के उस कल्लोवानी मुहल्ले में ऐसा कोलाहल और ऐसा क्रन्दन रोज़ की बात थी। कुएँ की चर्खियों से पानी भरने पर; एक ओर लगी हुई टोंटियों से नहाने या दूसरी ओर लगी पत्थर की सिल पर कपड़े धोने या फिर मुहल्ले के चौक में खूँटों से बँधी हुई गायों, भैंसों या उन्हें छेड़ने वाले या उनके द्वारा उठा कर फेंक दिये जाने वाले बच्चों पर; दीवारों पर उपले पाथने या उन उपलों को चुरा कर ले जाने वालों पर; किवाड़ों के आगे घर का कूड़ा-करकट फेंकने या उस कूड़े-करकट के फैलाये जाने पर; और यदि कुछ नहीं तो योंही बे-बात की बात पर प्रायः लड़ाई-झगड़ा हुआ करता था।

मुहल्ले में सदियों से क्षत्रिय ब्राह्मण बसते आये थे और जब से ब्राह्मणों को अपने आत्म-सम्मान का आभास होने लगा था (दूसरे शब्दों में जब से कुछ ब्राह्मण युवक पढ़-लिख कर अच्छे पदों पर नियुक्त हो गये थे और ब्राह्मण-वृत्ति को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे) इन दोनों जातियों के मध्य एक प्रकार का वैमनस्य भी आरम्भ हो गया था। इसके अतिरिक्त मुहल्ले में कुछ सुनार कुटुम्ब भी आ कर बस गये थे। उनकी स्त्रियाँ लड़ाई की कला में विशेषतया निपुण थीं और 'कला कला के लिए है' इस सिद्धान्त में पूरा विश्वास रखती हुई, कला की साधना मात्र के लिए लड़ा करती थीं।

मुहल्ले में जो घराना अधिक सम्पन्न हो जाता, वह लाहौर, अमृतसर अथवा किसी दूसरे बड़े शहर या जालन्धर ही के बाहर कोठियों में चला जाता और शेष मुहल्ला अपने उसी लड़ाई-झगड़े, उसी संकुचित वातावरण को लिये हुए पड़ा रहता।

किन्तु रोज़ की बात होने पर भी लड़ाई में कुछ ऐसा आकर्षण है कि आदमी अनायास ही अपना काम छोड़ कर उसे देखने लगता है। इस

कोलाहल को सुन कर चेतन के पिता और उसके बड़े भाई अचानक उठ कर बैठक में चले गये और माँ रसोई-घर की खिड़की में जा खड़ी हुई।

चेतन ने अवसर उपयुक्त समझा। स्कूल जाने में पहले ही देर हो गयी थी और हेडमास्टर की झिड़कियों का भी उसे डर था, इसलिए वह नीचे को भागा। पगड़ी बाँधना भी उसने उचित न समझा। खूँटी से टोपी उतार कर सिर पर रखी और चल पड़ा।

बाहर मुहल्ले में खूब लड़ाई हो रही थी। एक ओर अपने मकान की ऊँची खिड़की में बैठी, तीन सम्पन्न पति-विहीना बेटियों वाली धनी विधवा चौधरायन माथे से पसीने को पोंछती हुई नयी-नयी गालियों से मुहल्ले की स्त्रियों के कोश भर रही थी। दूसरी ओर ब्राह्मणी जीवीं पल्ला पसार कर परमात्मा से, न जाने कैसे शब्दों में, उसके कुटुम्ब की शेष सधवाओं के भी विधवा होने की भयंकर प्रार्थनाएँ कर रही थी। लोग पानी भरना भूल कर उन्हें देखने में व्यस्त थे।

तभी ज्वाली महरी ने अपनी लड़की को कोसते हुए कहा कि वह उधर क्या तकने लगी है, "इनका तो काम ही दिन-रात लड़ना है।" वह बोली, "घर में पुरुषों से लड़ती हैं, बाहर पड़ोसियों से!" और उसे डाँटा कि उसके साथ घड़ा जल्दी खिंचवाये।

ज्वाली का यह कहना था कि ब्राह्मणी जीवी ने अपनी प्रार्थना के क्षेत्र को विस्तार देने की ठान ली और उस महरी और उसके कुटुम्ब को भी दिल खोल कर 'मधुर वचन' सुनाने में संकोच नहीं किया। इस पर ज्वाली ने घड़े को वहीं छोड़, कृतज्ञता के रूप में उसे कुछ नयी तरह के 'मीठे शब्द' सुनाना अपना कर्तव्य समझा। उसकी लड़की ने सुख की साँस ली और न केवल यह चाहा कि उसकी माँ ही इस वाक-युद्ध में सफल हो, बल्कि उसने कई बार स्वयं भी इसमें पूरा योग देने की कोशिश की। पर हर बार उसकी माँ ने दायें हाथ से उसे अलग हटा दिया।

चेतन उपेक्षा की एक दृष्टि उन पशुओं की भाँति लड़ने वालियों पर डाल कर चुपचाप खिसकने लगा कि ऊपर बैठक के बरामदे से उसके पिता

की कड़कती आवाज़ आयी—

"स्कूल से सीधे घर आना !"

चेतन ने पीछे मुड़ कर "अच्छा जी" कहा और भाग चला।

रास्ते भर वह कभी अपने पिता की क्रूरता, कभी मुहल्ले वालों की अपढ़ता, कभी हुनर साहब के विशाल अनुभव और कभी अपने सीमित घेरे की बात सोचता रहा। जब उसे ख़याल आया कि उसे तो बस्ती के पं० दीनबन्धु को चिट्ठी डालनी थी तो वह स्कूल के फाटक पर पहुँच चुका था। उसे देर हो गयी थी और उसे विश्वास था कि हेडमास्टर ज़रूर गुस्सा होंगे और वह घबरा कर मन-ही-मन हेडमास्टर के प्रश्नों का उत्तर सोचने लगा।

●

१० चेतन के पिता पं० शादीराम गठे हुए शरीर के पाँच फ़ुट तीन इंच लम्बे रोबीले आदमी थे—गोल मुख, घुटा हुआ सिर और बड़ी-बड़ी ऐसी मूँछें जिनकी नोकें कानों तक पहुँचती थीं। आँखों में नशे के कारण लाल-लाल डोरे और कड़कती हुई कर्कश आवाज़—लड़कपन ही से न केवल परले दर्जे के उद्दण्ड थे, वरन् पक्के शराबी भी।

चेतन के दादा पं० रूपलाल पटवारी थे। चेतन की दादी उसी समय परलोक सिधार गयी थी जब चेतन के पिता केवल तीन वर्ष के थे। तब चेतन के पिता की देख-भाल का सब बोझ चेतन की परदादी गंगादेई के सिर आ पड़ा था।

परदादी गंगादेई अत्यन्त पुराने और संकुचित विचारों की, सहस्रों देवी-देवताओं, पीरों-फ़कीरों में विश्वास रखने वाली और पुरोहिताई को प्रत्येक ब्राह्मण का धर्म समझने वाली, उद्दण्ड और कर्कशा ब्राह्मणी थीं। उनके समय का अधिक भाग अपनी पुरोहिताई और धर्म को बनाये रखने में लग जाता था, जो बचता था उसमें कुछ लड़ाई-झगड़े और पीरों-फ़कीरों की भेंट हो जाता।

कोई त्योहार हो, परदादी गंगादेई के लिए उसमें योग देना अनिवार्य था। ठंडड़ी, बाजड़े, बाबा सोडल, दीवाली, विजय दशमी, ईद, मुहर्रम,

बैसाखी, गुरुपर्व, टोला-मोहल्ला—हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, किसी भी जाति का कोई त्योहार हो—वे उसमें अवश्य योग देतीं। मुहर्रम के दिनों में ताजियों के नीचे से गुज़र कर उन पर कौड़ियाँ चढ़ातीं, मेंहदी और घोड़ी पर शक्कर के शर्बत की सबील लगातीं और गुरुपर्व पर गुरुद्वारा में जा कर प्रसाद लेना अपना परम कर्त्तव्य समझतीं। असाढ़ के एक बृहस्पतिवार को मीरासियों को बुला कर दलिया खिलातीं, भादों में गुग्गे नवमी के दिन कथा सुनतीं। वर्ष में एक बार पंडोरी जा कर बाबा मल्ल को नज़र-न्याज़ देतीं, एक बार 'पट्टी पोसी' के झंडों वाले पीर के झडा और 'घोबड़ी' के घड़े वाले पीर के घड़े चढ़ातीं। इसके अतिरिक्त नित्य चली आने वाली पूर्णिमाएँ, अमावस्याएँ, एकादशियाँ, द्वादशियाँ, तीजें, चौथें, सप्तमियाँ, अष्टमियाँ साल के सब दिन कोई-न-कोई त्योहार लगा ही रहता। और फिर चिन्तपुरनी, ज्वाला जी, चंडिका देवी, और न जाने किस-किस देवी-देवता, पीर-फ़क़ीर के दर्शन करने जातीं। इन सब झमेलों में अपने पोते की देख-भाल के लिए उन्हें जितना समय मिलता होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है।

रहे चेतन के दादा पंडित रूपलाल, सो वे भला अपने लड़के की ख़बरगीरी करते या पटवारीगीरी? अपने हलके के अतिरिक्त रियासत की लम्बाई-चौड़ाई में उन्हें घूमना पड़ता था। फिर वे अपनी इन रस्मों, रिवाज़ों, प्रथाओं और परम्पराओं की बेड़ियों में जकड़ी, धर्मपरायण माँ के अन्ध-भक्त थे। जो त्योहार वह मनाती, वे भी मनाते। वह जिन पीरों-फ़क़ीरों की सेवा करती, वे भी करते। जब असाढ़ महीने के एक बृहस्पतिवार को मीरासियों का न्योता होता और अपने ढोल लिये हुए 'दानी जट्टी पीर मनाया' का गीत गाते, लोरियाँ देते-दिलाते और कपड़े तथा अनाज बटोरते वे साँझ को परदादी गंगादेई की ड्योढ़ी में पैर रखते तो पंडित रूपलाल भी चौदह कोस की मंज़िल मार कर, पीठ पर माता दुर्गा के स्तोत्र, नये वर्ष का पत्रा और अन्य आवश्यक कागज़-पत्रों की गाँठ के अतिरिक्त कभी गेहूँ और कभी पुरानी मकई की गठरी लादे आ पहुँचते। यदि उनके आगमन से पहले ही कभी मीरासियों को दलिये की थाली परोस दी जाती तो उनके

क्रोध का वारपार न रहता। कंधे की गठड़ी धरती पर रखते ही वे आसमान सिर पर उठा लेते और उनकी क्रोध-भरी आवाज़ दूसरे मुहल्ले तक सुनायी देती। वे चण्डी के उपासक थे और (उनके अपने कथनानुसार) इसी के फल-स्वरूप उनके स्वर में कर्कशता और स्वभाव में क्रोध की मात्रा कुछ अधिक थी, जो उनसे पं० शादीराम और फिर चेतन और उसके भाइयों को पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिली थी। किन्तु इस समस्त कर्त्तव्यपरायणता, धर्मनिष्ठा और कर्कशता के होते हुए भी उनके वक्ष में ऐसा भोला-भाला दिल था जिसे संसार के तीन-पाँच की कुछ ख़बर न थी। उनकी माँ जो कुछ कह देती, उसे ही वेद-वाक्य समझ कर वे मन में रख लेते। इसलिए जब पाँचवें दर्जे ही में पोते को बोर्डिङ्ग-हाऊस में दाख़िल कराने के लिए परदादी गंगादेई ने अपने इस आज्ञाकारी पुत्र को आदेश दिया तो किसी प्रकार की आनाकानी किये बिना, पंडित रूपलाल ने उसे मान लिया।

यों इस हालत में इसके सिवा चारा भी न था। कई बार पिता ने शादीराम को अपने साथ कपूरथला ले जा कर रखा। पर 'हुक्मे हाकिम मर्गे मफ़ाजात*।' तहसीलदार, कानूनगो तथा माल अफ़सर जब दौरे पर होते तो उन्हें भी अपने हाकिमों की सुविधा के विचार से उनके साथ-साथ भागना पड़ता। नहा कर वे साफ़ा निचोड़ रहे होते कि हुक्म आ जाता और बालक शादीराम को मुहर्रिर के सुपुर्द कर वे सारा दिन भागते फिरते। पाठ-पूजा करने का उन्हें अवसर न मिलता इसलिए सारा दिन उपवास ही में गुज़र जाता। ऐसा भी कई बार हुआ कि नहा कर पाठ भी उन्होंने कर लिया, लेकिन खाना पकाने बैठे कि हुक्म आ गया। चकले की रोटी चकले पर और तवे की तवे पर रह गयी। इसलिए जब-जब अपने पुत्र को वे ले गये, एक महीना भी न गुज़रा कि वापस ले आये।

परदादी ने भी बालक शादीराम को अपने साथ यजमानों के यहाँ ले जाना शुरू किया था। किन्तु इतने यजमान थे और उनके यहाँ इतने दिन

---

*हाकिम की आज्ञा आकस्मिक मृत्यु के समान है।

रहना पड़ता था कि उनके इस तजरुबे के फलस्वरूप पं० शादीराम दो-तीन वर्ष एक ही श्रेणी में रहे।

एक तीसरी बात भी थी जिसने परदादी गंगादेई को यह प्रस्ताव करने पर विवश कर दिया और वह थी शादीराम की उच्छृंखलता। प्रायः जब परदादी बाहर जातीं, अपने पोते को किसी पड़ोसिन के घर छोड़ जातीं। माता-पिता तथा दादी के डर से मुक्त हो कर बालक मनमाना उत्पात मचाता। इस नन्हीं-सी आयु ही में वह अखाड़े जाता, लड़ाइयाँ करता और सिर फोड़ता-फोड़वाता। कभी जब इस बीच में अचानक परदादी आ जातीं और अपने पोते की दशा देखतीं तो फिर जब तक रहतीं, अपने इस उद्दण्ड पोते के संगी-साथियों और उनके घर वालों को गालियाँ देतीं। यदि किसी लड़ाई में वह सिर फोड़वा आता तो मुहल्ले वालों का दिन का चैन और रात की नींद ये हराम कर देतीं। और यदि उनका पोता किसी दूसरे का सिर फोड़ आता तो वे लोग उन्हें चैन न लेने देते।

होस्टल में आ कर शादीराम और भी उद्दण्ड हो गये। परदादी जब भी यजमानों के यहाँ से आतीं, होस्टल में पहुँच कर अपने पोते को कुछ दिनों के लिए घर ले आतीं। शादीराम उनसे यह कह कर कि होस्टल जा रहे हैं और होस्टल में यह बहाना बना कर कि घर जा रहा हूँ, जहाँ जी चाहता चले जाते। कई-कई दिन मित्रों के घर रहते। परदादी को तभी पता चलता जब वे फिर होस्टल पहुँचतीं और वहाँ शादीराम को न पातीं। तब वह अपने इस पोते के मित्रों को गालियाँ देतीं, घर-घर छान डालतीं और उसे बिगाड़ने वालों के पुरखों की सात-सात पीढ़ियों को घोर नरक में भेजने तक की सिफ़ारिश भी अपने समस्त देवी-देवताओं से करतीं।

लेकिन परदादी के कठिन शासन के बावजूद शादीराम दूसरे ही दिन भाग जाते। वास्तव में उन्हें इस लुका-छिपी में विशेष आनन्द आने लगा था। जितना ही वे उनके पीछे भागतीं, उतना ही वे उनके हाथ न आने की कोशिश करते। इसका एक कारण शायद यह भी था कि परदादी जब भी अपने इस पोते को पकड़ पातीं, उसे कुछ कहने के बदले उसके मित्रों

और मित्रों के घर वालों ही को गालियाँ देतीं।

हार कर परदादी ने आठवें दर्जे ही में पंडित शादीराम का विवाह कर दिया। इससे उनकी सरगर्मियों में कमी तो क्या आती, हाँ, इस विवाह की खुशी में उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्र देसराज के घर पहली बार मदिरा का भी रसास्वादन किया।

बात यह है कि पहले-पहल उन्होंने इसे 'दवा' समझा था। देसराज के पिता रिटायर्ड सब-जज थे। खाने-पीने वाले आदमी थे। और खाने-पीने वाले पिताओं के पुत्र (यदि उनकी माताएँ उन्हें शिक्षा न दें) सहज ही उनके अनुकरण में खाने-पीने लगते हैं।

देसराज के पिता बाज़ार शेखाँ में जाने के बदले घर में मँगा कर पीते थे। दोनों लड़के उन्हें रोज़ बोतल से शीशे के नन्हें-से गिलास में उँड़ेल कर कुछ पीते और फिर सरूर में आ कर कुछ मुखर होते देखते। देसराज के पिता हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ आदमी थे। उनके बीमार होने की कल्पना भी न की जा सकती थी। तब लड़कों ने समझा कि यह कोई स्वादिष्ट शक्ति-वर्द्धक औषधि है। उनकी उत्सुकता दिन-प्रति-दिन बढ़ती गयी। आखिर शादीराम के विवाह की खुशी में उन्होंने इस शक्ति-वर्द्धक औषधि का रसास्वादन करने की ठान ली। देसराज बोतल ले आये। दोनों ने एक-एक घूँट पिया। अत्यन्त कड़वी लगी। उन्होंने समझा कि दवा मज़ेदार नहीं है, शक्ति-वर्द्धक चाहे कितनी भी क्यों न हो। यह भी निश्चय उन्होंने कर लिया कि फिर इसे न पियेंगे। देसराज उसे वहीं-की-वहीं रख भी आया था। पर दूसरे ही दिन जैसे किसी पूर्व-निश्चित निर्णय के अनुसार दोनों मित्र आधी छुट्टी के समय घर आये और फिर वहीं एक-एक घूँट!

उनकी उद्दण्डता, उच्छृंखलता, निर्भीकता और उदारता ने मिल कर चेतन के पिता को अपने जीवन में उतनी हानि न पहुँचायी थी जितनी इस तरल आग के रसास्वादन ने पहुँचा दी। क्योंकि तीन वर्ष मैट्रिक ही में रह कर जब चौथे वर्ष पं० शादीराम ने परीक्षा पास की तो देसराज के उन सब-जज पिता की कृपा से वे पक्के शराबी बन चुके थे।

११ रही चेतन की माँ, सो वह उन पतिव्रता स्त्रियों में से थी, जिनके मस्तिष्क धर्मशास्त्रों, पंडितों और पुरोहितों ने बुरी तरह जकड़ रखे हैं। स्वर्ग पाने के लिए ही वे पति को परमेश्वर समझती हों, यह बात नहीं। बचपन ही से उन्हें बताया जाता है कि पति अंधा, काना, लूला, लँगड़ा, निर्धन, शराबी, जुआरी, कैसा भी क्यों न हो, पत्नी के लिए परमेश्वर है; उसकी अवज्ञा करना महापाप है। इसलिए पतिव्रत-धर्म उनके स्वभाव का एक अंग बन जाता है।

उसके पिता पं० शिवराम मिश्र होशियारपुर में पंडिताई करते थे। उनकी पहली पत्नी चेतन की माँ को छोड़ कर तब ही मर गयी थी जब वह केवल तीन वर्ष की थी। उसके पिता घर से अत्यन्त विपन्न थे। यजमान भी उनके इतने अधिक न थे। इसलिए दूसरी जगह उनका विवाह शीघ्र न हो सका था। बात तो कई जगह लगी, लेकिन हमारे इन प्राचीन मुहल्लों में जहाँ जोड़ने वाले दो हैं, वहाँ तोड़ने वाले चार। इसलिए बात लगने को हो कर भी कई बार टूट गयी। अन्त में उसकी माँ की मृत्यु के पूरे सात वर्ष बाद, जब उसके पिता एक दिन प्रगट किसी दूसरे की बरात में शामिल होने के लिए गये थे और उसके ताऊ ने उसके लिए कई तरह की चीज़ें ला देने का वादा भी किया था तो आश्चर्य-चकित बालिका ने देखा था कि विवाह से मिलने वाली मिठाई आदि की गठरी के स्थान पर वे स्वयं बहू को ही ले आये थे।

उस समय हर्ष-उल्लास और कई हैरान कर देने वाली रस्मों और बधाइयों के मध्य उसकी बुआ ने उसके बार-बार पूछने पर कहा था—'यह तेरी नयी माँ है।'

अपनी सगी माँ के सम्बन्ध में लाजवती को (यही चेतन की माँ का नाम था) कुछ अधिक ज्ञान न था। बहुत हल्का-सा, जैसे युगों पहले देखे स्वप्न का-सा अपनी माँ का चित्र उसकी आँखों के सामने आया करता था। शायद पिता के रूखे व्यवहार के कारण स्नेह-विहीना लड़की की कल्पना ने उसकी माता का चित्र उसके मानस-पट पर बना दिया था। उसे कुछ ऐसा

आभास था, जैसे उनके अँधेरे आँगन में, जहाँ सील का सदैव राज्य रहता था और ऊपर से खुला रहने पर भी जहाँ प्रकाश की किरणें बड़ी डरी-सहमी प्रवेश करती थीं, एक खाट पर मैली-सी, कहीं धर्मशांति अथवा शुद्धि में आयी हुई, रज़ाई में लिपटी उसकी माँ पड़ी है—पीला ज़र्द चेहरा, पिचके कल्ले, बन्द होती-सी आकांक्षा और खुमार से भरी आँखें और काँपता-सा हाथ जो उसने उसके सिर पर रखा था। ओठों पर पपड़ियाँ जमी हुई थीं। उसके सिर पर प्यार का हाथ रखते हुए उन्हीं सूखे ओठों से उसने कुछ कहा भी था। पर वह सब उसे याद नहीं। यह चित्र कई बार चेतन की माँ ने देखा था। उसने यह भी देखा था कि जब उसकी माँ ऐसे पड़ी थी और उसके सिर पर हाथ रखे अस्फुट स्वर में कुछ कह रही थी तो उस अँधेरे आँगन के साथ लगी, धुएँ-भरी कोठरी में उसके ताऊ चाय आदि पी कर बैठे हुए अपनी कभी न दम लेने वाली गुड़गुड़ी से मन बहला रहे थे।

जब-जब कष्ट, उपेक्षा, निरादर स्नेहाभाव के कारण चेतन की माँ विह्वल हुई, अपनी माँ की यही मूर्ति उसके सामने आती रही और उसके हृदय को शांति मिलती रही।

लेकिन उसकी यह नयी माँ तो उसकी समवयस्क ही थी, बहुत होगा तो दो-एक वर्ष बड़ी होगी। देहात की होने के कारण कुछ बड़ी-बड़ी लगती थी। चौड़े-चौड़े हाथ-पाँव, खुले-खुले बेडौल अंग, लम्बी-मोटी नाक, स्वस्थ शरीर और साँवला रंग! एकदम असभ्य और गँवार थी। न उसे बाल बाँधने का सहूर था, न कपड़ा पहनने की तमीज़! नाम था मालां (मालिन का संक्षिप्त) और वह प्रयत्न करने पर भी इस नाम के अतिरिक्त 'माँ' या 'भाभी' या 'बीबी' कह कर उसे न बुला सकी थी।

दबे-दबे, घुटे-घुटे, माँ-बाप के स्नेह से वंचित, बच्चों की बुद्धि या तो बिलकुल जड़ हो जाती है या फिर उसमें एक असाधारण प्रखरता आ जाती है। बचपन में चेतन की माँ की बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, अल्प वयस ही में वह बहुत कुछ समझने-सोचने लगी थी। उसकी सहेलियाँ पास के मुहल्ले की पाठशाला में जातीं, पर उसे स्कूल जाने की मनाही थी। आजकल की

तरह शिक्षा व्यापक न हुई थी और पुराने विचारों के उसके पिता और ताऊ इतनी बड़ी लड़की का घर से बाहर निकलना अच्छा न समझते थे। लेकिन चेतन की माँ ने अपनी सहेलियों की पुस्तकों ही से उनका पढ़ा हुआ पाठ पूछ-पूछ कर बहुत कुछ सीख लिया था, यहाँ तक कि एक दिन उसने जगदीश के सारे किस्से ले कर पढ़ डाले थे।

जगदीश उसके फूफा का लड़का था। वहीं रहा करता था। पढ़ता-पढ़ाता तो कुछ न था, पर किस्सा जो भी नया छपता, खरीद कर घर ले आता। एक दिन उन्हीं किस्सों में से एक को पं० शिवराम ने अपनी लड़की के हाथ में देख लिया। तब ढूँढ़-ढूँढ़ कर सब किस्सों को तो उन्होंने आग लगा दी और साथ ही लड़के को भी पिता के घर भेज दिया, और चेतन की माँ को इतना फटकारा कि वह रो दी। उन किस्सों में क्या बुराई है, यह तब उस सरल, निरीह, भोली-भाली बालिका को मालूम न था।

अपने लड़के का यह अपमान देख कर बुआ ने पहले तो ताने दिये कि अब जब नयी बहू आ गयी है तो उसकी क्या आवश्यकता है, फिर अभिशाप दिया कि इस गँवार बहू के हाथों उसका घर चौपट हो जायगा, फिर रोयी और अपने घर चली गयी।

तब पढ़ाई छोड़ कर चेतन की माँ ने अपना ध्यान सीने-पिरोने और कशीदे की ओर लगाया था। अपनी सहेलियों ही से पूछ-पूछ कर उसने बहुत कुछ सीख लिया था। तब यह बुद्धि और यह सुघड़ता वह अपनी इस समवयस्क विमाता को सुसंस्कृत बनाने में लगाने लगी थी। उसके बाल वही गूँथती, उसे कपड़े वही पहनाती, उसे सीना-पिरोना वही सिखाती और इस तरह अपनी 'माँ' को योग्य बनाने का प्रयास करती। लेकिन न पिता ने इस काम के लिए उसकी प्रशंसा की और न माता बन कर आने वाली इस समवस्यक लड़की ने। पिता कठोर थे और माता को प्रशंसा करने का सहूर ही न था।

लेकिन चेतन की माँ इतने ही से प्रसन्न थी कि एक दिन पंडित शादीराम से उसका विवाह हो गया।

यह ठीक है कि ब्याह के बाद तत्काल वह ससुराल न गयी और पुरानी प्रथा के अनुसार तीन बरस और अपने मायके में रही। किन्तु इन तीन वर्षों में लड़की से वधू बन जाने पर भी उसके दैनिक जीवन में कोई अंतर नहीं आया। हुआ केवल इतना कि घर में उसका जो थोड़ा-बहुत मान था, वह भी कम हो गया।

बात यह हुई कि उसके चाचा का विवाह भी इस बीच में अमृतसर में हो गया और उसकी चतुर चची ने आते ही उसकी विमाता को अपने वश में कर लिया। इसलिए जब तीन वर्ष बाद एक दिन अचानक पं० शादीराम उसे लेने पहुँचे तो उसे दुःख नहीं हुआ। उसकी आँखें भर आयी थीं, और चलते समय वह रोयी भी खूब थी। पर यह रोना उस खुशी के लिए न था जो मायके में लड़कियों को प्राप्त होती है, बल्कि उस खुशी के अभाव के लिए था।

तभी जब वह ताँगे में बैठी थी और पिता ने ठण्डे प्यार का हाथ उसके सिर पर फेरा था तो चेतन की माँ के सामने सीलदार आँगन के अँधेरे में पड़ी अपनी उस रोगिनी माँ का चित्र घूम गया था और उसने दुपट्टे से मुँह ढाँप लिया था।

जिस मकान में ला कर पं० शादीराम ने उसे ठहराया था, वह उनका अपना मकान न था। सहज ज्ञान ही से चेतन की माँ ने यह जान लिया था। क्योंकि मायके में अपनी ससुराल के पुराने जीर्ण-शीर्ण घर के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ भनक उसके कान में पड़ चुकी थी और मन-ही-मन उसने निश्चय भी कर लिया था कि बुरा तो, भला तो, जो भी हो, वह उसे ही स्वर्ग समझेगी। इसलिए उसने अपने पति से इच्छा प्रकट की थी कि जैसा भी हो, वह अपने ही घर जायगी। जब सदा दूसरे के घर नहीं रहा जा सकता और एक दिन अपने घर जाना ही है तो क्यों न अभी से वहाँ रहने का स्वभाव डाला जाय।

और जब जीर्ण-शीर्ण ड्योढ़ी से गुज़र कर (पैरों की आहट ही से जिसकी छत और दीवारों की मिट्टी गिरती थी) वह आँगन में गयी तो कुछ क्षण मूक-मर्माहत-सी खड़ी रह गयी थी। मायके में उसके पिता का घर भी पुराना ही था, अँधेरा भी था और सील-भरा भी। सुन्दर वह कभी भी न था। लेकिन वह घर तो था। यह—यह तो खँडहर था!

आँगन कूड़े-करकट से अटा पड़ा था। कहीं कोयले बिखरे थे और कहीं-कहीं कौवों तथा चीलों द्वारा आकाश से फेंकी हुई हड्डियाँ। सामने के दालान की दीवार में छोटी ईंटें साफ़ दिखायी दे रही थीं, मिट्टी शायद वर्षा से धुल गयी थी। रसोई घर के किवाड़ जर्जर थे और कुंडी लगी रहने पर भी दोनों किवाड़ों के बीच इतनी जगह बन जाती थी कि पूरी-की-पूरी बाँह अन्दर बड़ी सुगमता से जा सकती थी। चूहे तो क्या बिल्ली भी चाहे तो तनिक सिकुड़ कर घुस सकती थी। इसी दरवाज़े से निकल कर धुएँ ने रसोई घर के बाहर की दीवार को बिलकुल काला कर दिया था। बायीं ओर का दालान जला पड़ा था और गिरी हुई छत का मलबा और कोयले दरवाज़े से बाहर तक आ गये थे। इसके साथ ही ड्योढ़ी की ओर को एक बिना किवाड़ों का खुला रसोई घर और था। आँगन की मुँडेर निरंतर वर्षा और लिपाई-पुताई के अभाव के कारण नंगी हो गयी थी और सामने दालान की मुँडेर पर एक बिलकुल नंग-धड़ङ्ग व्यक्ति एक टाँग इधर और एक टाँग उधर किये बैठा शून्य ही से बातें कर रहा था। हाथों को एक-दूसरे के पास ला कर उनसे हवा में आदमी बनाता हुआ दाँत किटकिटा कर 'लोहे का आदमी, लकड़ी का आदमी, जा!' कहता हुआ वह शून्य में बने हुए उन आदमियों को न जाने किधर उड़ा रहा था।

क्षण भर के लिए चेतन की माँ उस मिट्टी-सने, जैसे वर्षों से स्नान-वंचित उस व्यक्ति को देखती रहीं। उसने पति के यह शब्द, 'चुन्नी है पागल' नहीं सुने। तभी उस पागल ने उनकी ओर देखा और दाँत किटकिटा कर लोहे तथा लकड़ी के दो आदमी बना कर उनकी ओर छोड़ दिये। चौड़ा मस्तक, चपटी मोटी नाक, ओठ कटे होने के कारण बाहर दिखायी देते दाँत, खड़े-

खड़े रूखे बाल, काली नंगी स्वस्थ देह !—डर कर चेतन की माँ दो कदम पीछे हट गयी थी।

तब उसके पति ने छत पर जा कर उस पागल को भगा दिया और आ कर तनिक उल्लास से बताया कि वह उनका पागल चचा है और यह जला दालान और खुला रसोई घर भी उसी का है, और उसी ने पागलपन की झोंक में इस दालान को आग लगा दी थी। फिर कुछ गर्व के साथ उसके पति ने कहा था—"बस डरता है तो मुझी से। यह नाक इसकी मैंने ही तोड़ी है। एक दिन यह घर से जाता न था, दादी को तंग करता था। मैंने जाने को कहा तो मुझ पर भी झपटा। पटक कर मैंने इसे उस किवाड़ की चौखट पर दे मारा। मेरा बाँया हाथ इसके हाथ में आ गया। किचकिचा कर दाँतों में इसने पकड़ लिया। मैंने कहा—'छोड़!' इसने और भी दाँत गड़ा दिये। तब पूरे ज़ोर से तान कर दो घूँसे मैंने इसके रसीद किये। नाक की कोठी टूट गयी और ओठ फट गये। दादी को सबसे अधिक इसी पागल से प्यार है। वह बहुत रोयी-पीटी, किन्तु जो भी हो, फिर यह कभी मेरे सामने नहीं हुआ।"

और यह कह कर प्रशंसा पाने की इच्छा से पंडित शादीराम ने अपनी इस नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा। लेकिन चेतन की माँ का मुख पीला पड़ गया और वह सहमी हुई-सी अपने इस क्रूर पति को देखती रह गयी।

तब कुछ अप्रतिभ-से हो कर पंडित शादीराम ने कन्धे झाड़े थे और चारों ओर निगाह दौड़ा कर कहा था, "मैंने तुम्हें बताया था न कि घर तो बस खँडहर ही है।"

और वे खिसियानी-सी हँसी हँसे थे।

चेतन की माँ के चेहरे का रंग लौट आया। अपना निश्चय भी उसे स्मरण हो आया।

"मेरे लिए यही स्वर्ग है।" यह कह कर वह आगे बढ़ी।

और फिर कपड़े बदल कर आँगन को झाड़-बुहार, कोयलों, हड्डियों और कूड़े-करकट का अम्बार उसने एक कोने में लगा दिया था, और दालान में भी सफ़ाई करके एक चारपाई के लिए थोड़ी-सी जगह बना ली थी।

यहीं उसकी सुहागरात बीती थी ।

इसके बाद अब तक उसके दिन कैसे गुज़रे थे ? इस प्रश्न के उत्तर में केवल इतना कहना पर्याप्त है कि पहले दिनों से वे कुछ भिन्न न थे। और पहले दिनों का विवरण कुछ यों है :

आठवीं श्रेणी ही में शराब पीना शुरू करके उसके पति ने अपने विवाह तक, सब तरह के कर्म कर देखे थे। और उन लोगों में, जो स्वयं उतने शुद्ध-चरित्र नहीं होते, दूसरों के चरित्र के प्रति जो एक तरह का सन्देह-सा होता है, वह पंडित शादीराम के मन में भी था। दसवीं श्रेणी तक वे पढ़े थे। वास्तव में उन दिनों बी० ए० तक कोई बिरला ही जाता था। साहित्य के नाम पर भी (अपने समय के अधिकांश युवकों की भाँति) उन्होंने 'अलिफ़ लैला,' 'किस्सा तोता मैना,' 'इसरारे दरबारे हरामपुर' के ढङ्ग के उपन्यास पढ़े थे, जिनमें तिरिया चरित्र के विशद-वर्णन और काम को उद्दीप्त करने वाले किस्सों के सिवा कुछ न था। इसलिए नारी के प्रति उनका सन्देह और भी गहरा था। चेतन की परदादी उन दिनों यजमानों के यहाँ दौरे पर गयी हुई थी और स्वयं उन्हें स्कूल जाना होता था, जहाँ मैट्रिक की परीक्षा पास करते ही वे अध्यापक हो गये थे। इसलिए वे उसे उस खँडहर में बन्द करके बाहर से ताला लगा जाया करते थे।

उस खँडहर-से मकान में उसका दिन कैसे कटता था। इसके सम्बन्ध में जिज्ञासु को इतना बता देना ही यथेष्ट है कि वह किसी भारी बेचैनी अथवा उद्विग्नता से न गुज़रता था। अपने पति के इस क्रूर व्यवहार के प्रति भी उस के मन में किसी प्रकार का असन्तोष न था। अपने कर्म-फल को (क्योंकि वह इस जन्म के दुःखों तथा कष्टों को पूर्व जन्म के कर्मों का फल ही समझती थी।) उसने सन्तोष के साथ भोगना बहुत पहले सीख लिया था। अपनी ददिया सास (परदादी गंगादेई) के हाथों दालान के एक कोने में जमाई हुई चक्की को उसने अपने इस एकान्त की संगिनी बना लिया था। सुबह खाना बना कर अपने पति को खिला-पिला कर, उन्हें काम पर भेज कर, (बाहर से उनके ताला लगा देने पर भी) अन्दर से कुण्डी लगा कर,

वह चक्की के पास आ बैठती और दूसरे दिन के लिए आटा पीसती। कभी दायें, कभी बायें और कभी दोनों से चक्की के दस्ते को घुमाते हुए बस मीठे, तरल, लगभग आर्द्र स्वर से गाया भी करती थी। मायके में अपने उसी फूफा के लड़के से उसने एक बार ब्रह्मानन्द के विसुनपदों की पुस्तक मँगायी थी। बार-बार उसे पढ़ने से बहुत-से भजन उसे कंठस्थ हो गये थे। उन्हें गाते-गाते वह भक्ति-रस में विभोर हो जाती और भूल जाती कि वह एकाकिनी है, उसके पति बाहर से ताला लगा गये हैं, उसका घर खँडहर है, उसका वर्तमान दुखद है और भविष्य भी उज्वल नहीं। एक अनिर्वचनीय सन्तोष से उसके मन-प्राण प्लावित हो जाते थे। ब्रह्मानन्द के भजनों के अतिरिक्त वह दूसरे भी भजन गाया करती थी। जैसे :

कहो जी कैसे तारोंगे ?
रंका तारी बंका तारी तार्यो सदन कसाई।
सुआ पढ़ावत गनिका तारी, तारी मीराबाई !
प्रभु जी कैसे तारोंगे ?

भजन गाते-गाते वह तन्मय हो जाती और प्रायः उसका स्वर भी सानुनासिक हो जाता (जैसे तारोगे को तारोंगे) किन्तु यह उस आदर का सूचक होता जिससे वह सर्वशक्तिमान को सम्बोधित करती।

कर्म गति टारे नाहिं टरे।

दूसरा गीत था जो वह चक्की पर गाया करती थी।

चक्की के बाद प्रायः वह चर्खा ले बैठती और अपने समस्त एकांत को, अभाव को, दुःख को कात-कात कर टोकरी में बन्द कर देती। 'हीर रांझा' या 'माही' अथवा 'ढोल' का कोई गीत गाने के बदले चर्खा कातते समय भी वह ऐसे ही गीत गाती जैसे :

हरी जी जो गुजरे सहिए।
छोड़ खुदी की राह राजा जी
जो गुजरे सहिए !

अपनी सहेलियों से पूछ-पूछ कर उसने थोड़ा-बहुत पढ़ना सीख लिया

था, इस एकांत में वह भी उसके कम काम नहीं आया। कभी जब घर में रुई अथवा लोगड़* कुछ भी न होता, वह भगवद्गीता ले बैठती। उसके दर्शन को वह ठीक तरह समझ पाती हो, यह बात नहीं, उन श्लोकों को वह ठीक तरह पढ़ पाती हो, यह भी नहीं, वह तो पाठ के तौर पर उसे पढ़ा करती। इस पुस्तक के श्लोक तोते के मुँह से सुनने पर जब गणिका तर गयी तो वह पापिन क्यों न तर जायगी। उसने वास्तव में कोई पाप किया हो, यह बात न थी। किन्तु उसने सीखा था कि न जाने दिन में मनुष्य से कितने पाप बन आते हैं, इसलिए जहाँ तक हो डर कर करना चाहिए।

इसी तरह उसका दिन बीत जाता था और कभी वह खाना पका रही होती और कभी खाना पक चुका होता, जब पंडित शादीराम आते। उनका समय पर आ जाना कुछ निश्चित न था। उसके इस आरम्भिक जीवन में (और बदली हुई पार्श्व भूमि के साथ बाद में भी) ऐसे बहुत-से दिन आये जब वह खाना पका कर अपने पति की प्रतीक्षा में भूखी-प्यासी बैठी रही और वे रात-रात भर नहीं आये।

अभी उसे इस कैदखाने में बन्दी हुए अधिक दिन नहीं बीते थे कि संकट चौथ का व्रत आ गया। चेतन की माँ के लिए यह बड़ा महत्वपूर्ण व्रत था। जब संध्या को आ कर पं० शादीराम ने किवाड़ खोले तो दिन भर की भूखी-प्यासी लाजवती ने अपने पति से कहा कि वह व्रत से है और वे तिल और गुड़ ला दें ताकि वह भुग्गा (गज़क) बना कर गणेश की पूजा करके व्रत उपार ले और फिर उसने यह भी प्रार्थना की कि संध्या को कम-से-कम आज वे कहीं न जायँ।

पं० शादीराम ने उसे विश्वास दिलाया कि वे ऐसा ही करेंगे और जल्दी ही आने का वादा करके प्रकट उसके लिए तिल लेने चले गये। लाजवती ने उनके लिए खाना आदि पका लिया और फिर वह वहीं रसोई घर के बाहर आँगन में बैठी, उनकी प्रतीक्षा करने लगी। धीरे-धीरे संध्या का अँधेरा आँगन में छा गया। सामने के मकान की ऊँची और निरन्तर

लोगड़ = रूहड़ = लिहाफ़ की पुरानी रुई।

वर्षा के कारण काली पड़ जाने वाली दीवार साँझ के अँधेरे में और भी काली दिखायी देने लगी और उस दीवार की छत पर लगी हुई कौवों की सभा भी विसर्जित हो गयी। ऊपर निर्मल आकाश पर एक-दो तारे निकल आये। लाजवती ने उठ कर सरसों के तेल का दिया जलाया और उसे रसोई घर में रख कर नमस्कार किया। फिर वह प्रतीक्षा में मोढ़े पर बैठ गयी।

वहीं बैठे-बैठे तब उसने संकटमोचन दुःखहरण श्री गणेश की अराधना प्रारम्भ कर दी और अगणित बार :

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

का पाठ भी कर लिया। जब फिर भी पंडित जी न आये तो वह मन-ही-मन उस कहानी* को दुहराने लगी जो संकट चौथ के दिन ब्राह्मणी सुनाया करती थी। वहाँ ब्राह्मणी तो क्या आती, मन-ही-मन स्वयं उसने वह कहानी दुहरायी।

---

*एक बार भगवती पार्वती नहाने गयीं। भगवान शंकर कहीं बाहर गये थे। देवी पार्वती ने अपने पुत्र को स्नानगृह के दरवाज़े पर खड़ा किया और कहा कि किसी को आने न देना। तब ऐसा हुआ कि भगवान शिव बाहर से आये। पुत्र ने पिता को रोक दिया। भगवान ने समझाया कि बेटा मैं तेरा पिता हूँ, तेरी माता का पति हूँ, मेरे जाने से कुछ हानि नहीं, पति-पत्नी में कोई पर्दा नहीं होता, आदि-आदि, पर पुत्र न माना। इस पर भगवान शिव ने क्रोध में आ कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। जब देवी पार्वती बाहर आयीं तो अपने प्रिय पुत्र को मृत देख कर विलाप करने लगीं। तब उन्हें इस तरह कातर होते देख कर भगवान शिव को उन पर दया हो आयी और उन्होंने वचन दिया कि अच्छा हम इसे जीवित कर देंगे। पार्वती को यों ढाढ़स बँधा, भगवान ने अनुचरों को आज्ञा दी कि रात के समय जिस पुत्र की ओर माता पीठ करके सोयी हुई हो, उसका सिर काट लें। अनुचर समस्त मर्त्यलोक में घूमे, पर कोई भी ऐसी माता न मिली जो अपने पुत्र की ओर पीठ करके लेटी हो। अन्त में उन्हें एक ऐसी हथिनी मिल गयी, जिसकी पीठ अपने शिशु की ओर थी। अनुचर उसके बच्चे का सिर काट लाये। भगवान शिव ने अपने मृत पुत्र के धड़ पर वह सिर लगा कर मन्त्र पढ़ा और उसमें जान पड़ गयी।

पार्वती जी ने इस लम्बी सूँड वाले गजानन को देखा तो वे और भी दुखी हुईं। तब फिर भगवान शिव ने उन्हें सान्त्वना दी और वर दिया कि जो इस दिन गणेश-पूजा करेगा उसके सब संकट दूर हो जायेंगे।

चुपचाप दिल में इस कहानी को दुहराते हुए, अन्त पर पहुँच कर चेतन की माँ ने श्रद्धा से गणेश भगवान का ध्यान कर सिर झुकाया और एक चित हो कर प्रार्थना की कि उसके समस्त संकट दूर हो जायँ।

वहीं बैठे-बैठे उसने व्रत के महात्म्य के सम्बन्ध में भी सब कहानियाँ मन में दुहरा डालीं। किन्तु पं० शादीराम न आये। उधर अर्घ्य का समय हो गया। अब घर में स्वच्छ पवित्र जल न था, जिससे चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाय। डरते-डरते वह ड्योढ़ी में गयी कि दरवाज़े में खड़ी हो कर सामने के मकान में रहने वाली ब्राह्मणी मलावी को आवाज़ दे। अन्दर से कुण्डी खोल कर दरवाज़े से सिर लगाये कितनी देर तक खड़ी रही, किन्तु उसे आवाज़ देने का साहस न हुआ। आखिर उसने सिर हटाया, किवाड़ अन्दर को खुल गया, क्योंकि पंडित जी का ख़याल था कि वे शीघ्र आ जायेंगे, इसलिए वे ताला लगा कर न गये थे।

सामने के मकान का दरवाज़ा बन्द था। मुहल्ले के सिरे पर म्यूनिसिपेलिटी का जो लैम्प जलता था, उसका प्रकाश उनके दरवाजे तक न पहुँचता था। उस अँधेरे में खड़े-खड़े उसने कई स्त्रियों को आते-जाते देखा, पर जान-पहचान न होने के कारण वह किसी को बुलाने का साहस न कर सकी— सूखे ओठ, सूखे कंठ और शिथिल शरीर लिये हुए वह वहीं खड़ी रही। तभी मलावी अपने घर आयी, किवाड़ खोल कर उसने दिया जलाया और बहू को अपने घर की चौखट से लगी खड़ी देखा। पास आ कर उसने कहा—

"शादी की बहू है, क्या बात है बच्ची, तू ऐसे क्यों खड़ी है?"

चेतन की माँ पहले कुछ न कह सकी थी। पुनः पूछने पर रुँधे गले से उसने कहा कि उसे कुछ जल चाहिए ताकि वह व्रत उपार सके।

मलावी ने उसे सहर्ष पानी ला दिया था और यह भी बता दिया था कि वह (पं० शादीराम) तो देसराज के यहाँ बेहोश पड़ा है। उसके आने की बाट वह कब तक जोहेगी? अपनी ओर से उसने यह प्रस्ताव भी किया था कि यदि भुग्गा न बना हो तो वह बाज़ार से उसे दूध ही ला देती है।

पर चेतन की माँ का मन ऐसा खिन्न था कि चन्द्रमा को अर्घ्य दे, पानी के दो घूँट पी कर ही उसने व्रत उपार लिया, मलावी को विदा दी और ड्योढ़ी का दरवाज़ा लगा कर रसोई घर में आ बैठी। समय काटने के लिए उस ने संकटमोचन दुःखहरन कुम्भोदर भगवान गजानन का जाप आरम्भ कर दिया था।

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

न जाने कब वहीं बैठे-बैठे, जाप करते-करते वह ऊँघ गयी थी। आधी रात के लगभग पं० शादीराम ने नशे में चूर थरथराती आवाज़ में पुकारा था—'दरवाज़ा खोलो!'

चौंक कर चेतन की माँ ने लपक कर दरवाज़ा खोला था और उनके अन्दर आने पर बन्द कर दिया था। तब वे उसे बग़ल में लिए नशे से लड़खड़ाते, अन्दर अँधेरे दालान में आये थे। सरसों के तेल का एक दिया ताक़ में पड़ा टिमटिमा रहा था। कच्ची मिट्टी और सील की बू आ रही थी। उसी दिये के प्रकाश में जब उसने अपने पति की आँखों में वासना और मद की झलक देखी तो उपवास, भूख और उनीदे से थकी उसकी आत्मा काँप उठी थी।

लेकिन सुबह जब उसने शिकायत के स्वर में पंडित जी से कहा कि वे उसे अकेली छोड़ कर तिल लेने का बहाना करके चले गये और वह बैठी प्रतीक्षा करती रही और उसने बताया कि किस तरह उसे मलावी की सहायता लेनी पड़ी....तो वह बात पूरी भी न कर पायी थी कि उसके पति ने सहसा उसके मुँह पर एक थप्पड़ जमा दिया था। ऐसी गालियाँ देते हुए, जो उसने पहली बार ही सुनी थीं, उसे डाँटा कि यदि वह एक दिन भूखी रह लेती तो मर न जाती, उनके आने की प्रतीक्षा उसने क्यों न की? और क्यों उसने मलावी को बुलाया? तब चेतन की माँ ने अपने पति के पाँवों पर झुक कर क्षमा माँग ली थी।

लेकिन उसके इस अपराध का दंड यहीं समाप्त न हो गया था। परदादी गंगादेई जब आयी और उसे मालूम हुआ कि उसकी अनुपस्थिति में मलावी

उसके घर आयी थी तो बहू को दिन भर डाँटने-डपटने के बाद उसने मलावी और उसके घर वालों की सात पुश्तों का नाम ले कर अत्यन्त 'मीठे वचनों' की वर्षा की थी—और सहमी हुई बहू ने देखा था कि उसकी ददिया सास जब नहाने लगती है तो मलावी और उसके मृत पति का नाम ले कर दुराशीशें देती है—चेतन की परदादी गंगादेई का विश्वास था कि नहाते समय की दुराशीश ऐन निशाने पर बैठती है।

अपनी ददिया सास से लाजवती की यह पहली भेंट थी।

बाद के इन लम्बे तीस वर्षों में परदादी गंगादेई और फिर चेतन के पिता के हाथों चेतन की माँ ने अगणित ऐसी ही यातनाएँ सहीं। इच्छा न होने पर भी वह अपनी ददिया सास के समस्त पूजा-पाठ, व्रत-नियम, पीर-फ़कीर, रस्म-रिवाज़ मानती रही, उनकी डाँट-फटकार सुनती रही, मानसिक और शारीरिक यातनाएँ सहती रही, और यह क्रम तब तक जारी रहा जब तक इस क्रूर ददिया सास की मृत्यु ने चेतन की माँ को इन सब यातनाओं से मुक्त न कर दिया।

रहे उसके पति तो बचपन में अपनी माँ की मृत्यु पर उन्होंने अपनी इसी दादी का दूध पिया था (कम-से-कम परदादी गंगादेई यही कहा करती थी कि उनके स्तनों में तब दूध उतर आया था) फिर यह कब सम्भव था कि स्वभाव की क्रूरता उनमें न होती। इसके अतिरिक्त कोई ऐसा व्यसन न था जो उनमें न हो। शराब वे रोज़ पीते, दीवाली के दिनों में जुआ खेलते (और शराब पी कर खेलने के कारण सदैव हारते) सट्टा वे लगाते और दूसरे बीसियों तरीकों से रुपया लुटाते। फिर ऐसे अवसरों की कमी न थी जब वे दूसरी स्त्रियों को घर ले आये और उनके सामने (उनके कहने पर अथवा उन्हें प्रसन्न करने हेतु) उन्होंने चेतन की माँ को निर्दयता से पीटा। आयु भर (स्कूल की मास्टरी छोड़ रेलवे में तार बाबू, असिस्टेंट और फिर स्टेशन मास्टर होने पर भी) कभी उसे भड़कीला कपड़ा नहीं पहनने दिया। कभी भूल से वह छत पर चली गयी तो चरित्रहीनता के बीस ताने उसे दिये, कभी घूँघट ऊँचा किया तो बीस गालियाँ दीं और एक बार उसे गली में देख

लिया तो वहीं से घसीटते हुए अन्दर ले गये।

लेकिन इतने पर भी चेतन की माँ ने अपने इस क्रूर, निर्दय पति को अपना समस्त प्रेम, समस्त श्रद्धा और समस्त आदर-सत्कार दिया। स्वप्न में भी उनका बुरा न सोचा (यह अत्युक्ति नहीं, धर्म और कर्म की ज़ंजीरों में जकड़ी ऐसी अनेक स्त्रियाँ इस पुण्य भूमि भारत में मिल जायँगी।) सदैव उनकी समृद्धि और उन्नति के लिए अनुष्ठान कराये, प्रति वर्ष जालन्धर के प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित आत्माराम से वर्ष-फल बनवा कर जप करवाये; सत्य-नारायण की कथाएँ करायीं; पति की दीर्घायु की कामना से सब व्रत रखे; समय-कुसमय आत्माभिमान को तज उनकी सहायता की; उनके कारण चौदह वर्ष अपने पिता का मुँह न देखा (जिसने एक बार उनकी निन्दा की थी) और अन्य लोग तो दूर रहे, कभी अपने बच्चों से भी अपने पति की बुराई नहीं सुनी।

●

१२

स्कूल में उस दिन चेतन लड़कों को ठीक तरह पढ़ा न सका था। देर से पहुँचने के लिए हेडमास्टर ने उसे डाँटा न था। अँग्रेज़ी और इतिहास के अध्यापक आये न थे और उसके स्थान पर भी हेडमास्टर चेतन को भेजना चाहते थे, इसलिए उसे डाँटने के बदले उन्होंने केवल इतना कहा था कि इतनी देर उस जैसे ज़िम्मेदार व्यक्ति को न करनी चाहिए और जब दूसरी साँस में हेडमास्टर ने उसे अँग्रेज़ी और इतिहास की घंटियाँ भी लेने का आदेश दिया था तो वह आपत्ति न कर सका था।

एक प्रश्न लिखा कर लड़कों को चुपचाप उसे करने का आदेश दे अथवा मानीटर से लड़कों का पिछला पाठ सुनने को कह; या फिर लड़कों को चुपचाप अपना पाठ याद करने की आज्ञा दे कर स्वयं मौन रूप से अपनी कुर्सी पर बैठ, अपनी वैवाहिक समस्या को सुलझाने-उलझाने में चेतन ने अधिकांश समय काट दिया था।—एक लड़की थी कुन्ती! पं० शादीराम के एक परिचित की दौहित्री थी, इसका चेतन ने पता लगा लिया था। चेतन

ने एक बार उसे 'बाजड़े' के मेले में देखा था और अपने अन्तर की गहराई में कहीं वह उसे चाहने लगा था। उसी प्रकार जैसे निम्न-मध्यवर्ग के सहस्त्रों युवक चुपचाप सिनेमा की अभिनेत्रियों को चाहने लगते हैं। उसने कुन्ती से कभी बात भी न की थी। अनन्त के अतिरिक्त अपने इस मूक प्रेम की भनक भी किसी के कान में न पड़ने दी थी। वह गत दो-तीन वर्ष से साँझ को भी सैर के लिए जाते समय चुपचाप पुरियाँ मुहल्ले से गुज़र जाता और बस। इससे अधिक अपनी प्रेमिका को पाने के लिए उसने कुछ न किया था। वह भी कदाचित उसके प्रेम की बात जानती थी। पर चेतन ने कभी यह जानने का प्रयास नहीं किया। दृष्टि-विनिमय ही से उसे इस बात का आभास मिलता—उस दिन स्कूल में इस या उस क्लास में लड़कों को पढ़ाते-पढ़ाते वह अपनी इस असमर्थता पर विचार करता रहा था और अन्त में उसने तय किया था कि यदि उसके पिता ने उस पर पं० दीनबन्धु की लड़की से विवाह करने के लिए ज़ोर दिया तो वह उन्हें कुन्ती के सम्बन्ध में अपनी चाहत की बात बता देगा। उसे पूरा विश्वास था कि उसके पिता कुन्ती के साथ उनकी सगाई कर देंगे। वह उनके मित्र की दौहित्री तो थी ही।

स्कूल से आते-आते मार्ग ही में अपने मित्र अनन्त को कुन्ती के सम्बन्ध में अपने निर्णय की बात बता कर, जब चेतन घर आया तो उसे पता चला कि उसके स्कूल जाने के कुछ ही देर बाद देसराज आया था और उसके पिता तभी से उसके साथ गये हुए हैं और माँ प्रतीक्षा में बैठी है कि वे आ जायें तो उन्हें खिला कर स्वयं भी दो कौर खाये।

'न जाने यह कमीना देसराज कब हमारा पीछा छोड़ेगा।' चेतन कहना चाहता था! पर शब्द उसके ओठों तक ही आ कर रुक गये क्योंकि जहाँ तक उसके पिता अथवा उनके मित्रों का सम्बन्ध था, उनके बारे में किसी प्रकार कटु बात सुनना चेतन की माँ पाप समझती थी।

तब दिल-ही-दिल में अपने पिता के उस मित्र को कोस कर चेतन साँझ को नाश्ता करने बैठ गया था। पर इस बात का ध्यान आते ही कि माँ ने अभी

सुबह का खाना भी नहीं खाया, वह पूरी तरह नाश्ता न कर सका था । किसी-न-किसी तरह चार कौर निगल कर वह नीचे अपने कमरे में चला गया था और अपने ध्यान को उसने साहित्य-सृजन में लगाने का प्रयास किया था ।

संध्या को मुहल्ले में अभी म्यूनिसिपेलिटी का आदमी लैम्प में तेल डाल कर गया ही था (सारे जालन्धर में बिजली का प्रकाश होने पर भी कल्लोवानी में १६४० तक मिट्टी के तेल का लैम्प ही धुँधला प्रकाश देता रहा है) कि चेतन ने थक कर कलम-दवात और कापी आलमारी में रख कर किवाड़ लगाये । घंटों से वह कविता लिखने का प्रयास करता रहा था और जब असफल रहा था तो उसने एक .कहानी भी लिखनी शुरू की थी, पर कभी बस्ती वाली उस चन्दा का और कभी पुरियाँ मुहल्ले वाली उस कुन्ती का, कभी अपने पिता की क्रूरता का और माँ की विवशता का ध्यान आ जाने से उसकी विचार-धारा टूट जाती थी । इसलिए कविता तथा कहानी लिखने में उसे जो सफलता मिली थी, उसकी गवाही कापी के कटे-फटे पृष्ठ देते थे ।

ज्योंही कापी, कलम और दावात आलमारी में बन्द करके वह ऊपर पहुँचा और उसने देखा कि सारा दिन प्रतीक्षा करके अब दो कौर खा कर माँ बर्तन मल रही है कि उसी समय बाहर से उसके पिता की कड़कती आवाज़ आयी, "चेतन !"

आँगन के एक ओर जो थोड़ी-सी जगह छुती हुई थी वहाँ चिड़ियों ने एक घोंसला बनाया था और अब उसमें बच्चे भी थे । उस कर्कश आवाज़ को सुन कर वे फ़ुर से उड़ गईं और घोंसले में बच्चे 'चीं चीं' करने लगे । माँ के हाथ से बर्तन छूट गया और उसने (हाथ राख से सने होने के कारण) अँगुलियों के जोड़ों से धोती घुटनों पर कर ली और चेतन ने समझ लिया कि आज बाजार शेखाँ के ठेकेदार की जेब खूब गर्म हुई है ।

तभी फिर आवाज़ आयी—"चेतन !"

नशे के कारण कुछ काँपती हुई, पर खूब ऊँची कड़ी घरघराती आवाज़ !

चेतन नीचे भागा और माँ जल्दी से उठ कर लैम्प जलाने लगी।

ऐसे अवसरों पर सदैव माँ के हाथ-पाँव फूल जाते थे और -पास पड़ी हुई चीज़ भी उसे दिखायी न देती थी। उस समय भी माँ को दियासलाई की डिबिया न मिल रही थी। आखिर जब वहीं ताक में पड़ी वह मिल गयी और उसने लैम्प जलाना आरम्भ किया तो सीढ़ियों पर भारी-भारी कदम रखते हुए पं० शादीराम ऊपर आ पहुँचे। शलवार जो सुबह ही पहनी थी, बेढङ्गी और मैली-कुचैली हो गयी थी। कमीज़ के बटन खुले थे। छाती के दो-चार श्वेत बाल दिखायी दे रहे थे और पगड़ी बग़ल में दबी थी।

मूछों को तनिक ऊपर चढ़ाते हुए उन्होंने स्निग्ध-कोमल दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखा।

"ऐ जी...!"

पत्नी वहीं लैम्प छोड़ कर उठ खड़ी हुई।

"ज़रा चारपाई बिछा दो!"

चेतन की माँ का दिल और भी धक-धक करने लगा। पंडित शादीराम जितने दिन घर आ कर बिताते थे, माँ का दिल धड़कता रहता था। नशे में उनके चित्त की अस्थिरता की हद न रहती—अभी हँस रहे होते कि अभी सिर फोड़ने-फोड़वाने पर तुल जाते। वह डर रही थी और मन-ही-मन में संकटमोचन, दुःखहरन भगवान गजानन से प्रार्थना कर रही थी कि रात कुशल पूर्वक बीत जाय। लेकिन जब उन्होंने अपेक्षाकृत कोमल स्वर में चारपाई बिछाने को कहा तब डर तथा आशंका से माँ का दिल धक-धक करने लगा।

कारण यह कि साधारणतया जब वे बाज़ार शेखाँ से हो कर घर आते तो सीढ़ियों ही से उनकी गालियों की बौछार शुरू हो जाती—यह दिया क्यों नहीं जलाया?....बीस बार कहा है सीढ़ियों में दिया जलाया करो?.... मेरी टाँग की हड्डी टूट गयी...चारपाई कहाँ है?....मैं क्या तुम्हारे सिर पर बैठूँ?—इन वाक्यों में अर्धविरामों के स्थान पर गालियाँ होती थीं। इस प्रकार धीरज से वे तभी बात करते थे, जब वे खुश होते या उन्हें जुए के

लिए, किसी को देने के लिए या किसी और काम के लिए रुपये की ज़रूरत होती।

जब चारपाई बिछा दी गयी और पगड़ी को दीवार के साथ सिर के नीचे रख कर वे लेट गये और माँ ने लैम्प जला कर खूँटी पर टाँग दी तो उन्होंने चेतन की माँ से कहा कि ज़रा उनकी बात सुने।

जब वह सहमी हुई-सी पायँते के पास आ कर धरती पर बैठ गयी तो उन्होंने कहा कि नीचे बस्ती से पंडित वेणीप्रसाद अपने भाई पंडित दीनबन्धु के साथ आये हुए हैं। मुझे सूदां के चौक में मिल गये थे, मैंने तो 'हाँ' कर दी है।

माँ के दिल की धड़कन कुछ कम हुई और उसने कुछ और आगे खिसक कर कहा, "ज्वाली महरी की लड़की तो कहती थी कि लड़की सुन्दर है, पर चेतन को पसन्द नहीं।"

तब पंडित जी ने पूरे ज़ोर से अपने लड़के को आवाज़ दी।

चेतन पं० दीनबन्धु और पक्षाघात के रोगी उनके भाई को नीचे बैठक में बैठा कर साहस बटोरता और मन-ही-मन बीसियों तरह के प्रश्नोत्तर दोहराता आ रहा था।

पंडित जी ने कहा, "इधर बैठो।"

सहमा हुआ वह पायँते पर बैठ गया।

"तुमने लड़की देखी है?"

"जी हाँ।"

"उसमें क्या दोष है?"

चेतन अब क्या उत्तर दे—पिता के सामने वह कभी न हुआ था। किसी लड़की के गुण-दोषों की विवेचना करना तो दूर रहा, उसने तो कभी उनके सामने खुल कर बात तक न की थी। उसके मुँह से केवल इतना निकला, "मोटी है।"

"तो क्या सब तुम्हारे जैसे पतले-दुबले हो जायँ?"

चेतन चुप।

"कल अपनी माँ के साथ जा कर लड़की को देख आओ !"

चेतन ने जैसे रोते हुए कहा, "देख कर मैं क्या करूँगा ?"

"मैं जो कहता हूँ देख आओ !" पंडित शादीराम गरजे ।

फिर कुछ क्षण ठहर कर उन्होंने तनिक गम्भीर हो कर कहा, "देखो मैं उन भले आदमियों को वचन दे आया हूँ, यदि लड़की में कोई दोष न हो तो साड़ी देते आना । सगुन का रुपया मैंने ले लिया है ।"

फिर अचानक अपने इस इक्कीस-बाइस वर्ष के 'बच्चे' को गोद में ले कर और उसका मुँह चूम कर पिता ने सहसा विनीत स्वर में कहा, "देखो बेटा, मैंने सदा तुम्हें आदेश दिया है, आज मैं तुमसे विनय करता हूँ, यदि उस लड़की में कोई दोष न हो तो तुम मान लेना ।"

इसके बाद उसे अपनी बाहों में कस कर और फिर एक बार चूम कर मुक्त करते हुए उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "मैं इसे डाँटता हूँ, लेकिन इसकी इज़्ज़त भी करता हूँ ।"

शराब की बदबूदार साँस को जैसे रूमाल से पोंछने का प्रयास करते हुए चेतन ने 'ज़िन्दा शहीदों' के-से भाव में कहा, "जब आपने सगुन ले लिया तो ठीक है । मैं देखने क्या जाऊँगा ?"

"मैं जो कहता हूँ मेरी खुशी है !" चेतन के पिता ने फिर कड़क कर कहा, "तुम कल देख आओ ।"

"अच्छा जी ।" भरे हुए गले से इतना कह कर चेतन नीचे उतर आया । ऐसे समय में तनिक-सा इनकार भी प्रलय मचा सकता था, इस बात को वह भली-भाँति जानता था ।

सीढ़ियाँ उतरते-उतरते एक दीर्घ-निश्वास उसके हृदय से निकल गया ! उसका वह निश्चय, बस्ती में विवाह न करने की उसकी प्रतिज्ञा, उसके बार-बार दोहराये हुए प्रश्नोतर....कुन्ती....



१३ इस घटना के तीन दिन बाद जब चेतन का अभिन्न-हृदय मित्र अनन्त सुबह आँखें मलता हुआ उठा (उठने का मतलब यह है कि बिस्तर से उठ कर चारपाई के नीचे पाँव रखने के बदले वह रज़ाई को अपने इर्द-गिर्द लपेट कर बिस्तर ही पर पाँव सिकोड़ कर बैठ गया, क्योंकि इसी को वह सुबह उठना कहा करता था और इसी प्रकार एक-दो घंटे बैठे रहना सभ्यता का प्रथम लक्षण मानता था) तो उसकी माँ ने आ कर उसके हाथ में एक चिट्ठी रखी और कहा, "साँझ को चेतन आ कर दे गया था। तुम तो आये रात के ग्यारह बजे, इस बीच में वह तीन बार आया, पहली दो बार केवल पूछ गया, तीसरी बार यह चिट्ठी दे गया।"

बड़ी मुश्किल से रज़ाई से पाँव निकाल उसे कन्धों पर ही लिये हुए अनन्त उठ कर दरवाज़े तक आया और पत्र खोल कर सुबह के शीतल निर्मल प्रकाश में पढ़ने लगा।

ऊपर आकाश में 'बाल कुटारे' उड़ानें भर रहे थे। एक गौरैया दायीं ओर की मुँडेरे पर बैठी 'चीं-चीं' करती फुदक रही थी और ऊषा की लाली का प्रतिबिम्ब सामने के मकान की छत को हलकी-सी ललाई प्रदान कर रहा था।

अनन्त ने देखा—जल्दी-जल्दी लिखे, टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से तीन-चार पृष्ठ रँगे हुए हैं—

"अनन्त मैं लाहौर जा रहा हूँ। मेरी सगाई आज हो गयी। उन्हीं दीनबन्धु की लड़की चन्दा से। उस पहले दिन, जब बस्ती से वापस आ कर मैंने 'ना' कर दी थी, माँ ने एक सपना देखा था। एक सुन्दर लक्ष्मी-सी लड़की वस्त्राभूषणों से सजी उसके चरण छूने आ रही थी कि रास्ते ही से मुड़ गयी। अब माँ के सपने वैसे नहीं होंगे, पर मेरे स्वप्न....! ... ..

रात भर मैं सो नहीं सका। यहाँ मेरी आत्मा घुटी जा रही है। कुन्ती के सम्बन्ध में मैंने जो प्रोग्राम बनाये थे, वे मेरे मन ही में रह गये। पिता जी जब बाज़ार शेखाँ से होते हुए घर आये तो

फिर उनके सामने बैठ कर ऐसी बात करना मेरे बस में नहीं। उसी शाम जब मैं तुमसे मिल कर घर पहुँचा तो दुर्भाग्य से पिता जी भी आ गये थे। उनके साथ पं० दीनबन्धु और लकवे की बीमारी में ग्रसित उनके बड़े भाई भी थे। उनको पिता जी ने वचन दे दिया और उनसे शगुन का एक रुपया भी ले लिया। फिर पिता जी का वचन, विशेष कर बाहर वालों को दिया हुआ, कभी किसी ने टूटते नहीं देखा। बहरहाल सगाई तो हो गयी। बिडम्बना देखो कि उसी एक बार देखी हुई लड़की को फिर देखने गया। वहाँ क्या हुआ, यह सब तुम्हें बाद में मालूम होता रहेगा।....

वहाँ जो कुछ हुआ, उसका विवरण यद्यपि चेतन ने उस पत्र में नहीं दिया पर वह कुछ यों है :

उस रात जब चेतन के पिता ने उसे डाँट कर कहा था कि सुबह वह माँ को ले कर लड़की देखने जाय, उसने सोचा था कि सुबह उसके पिता शान्त होंगे और शराब का असर भी उन पर न होगा तो वह उन्हें समझा-बुझा कर सब बात कहेगा और यदि हो सका तो कुन्ती की चर्चा भी चलायेगा।

लेकिन दूसरे दिन उसके पिता रात को अधिक पी जाने के कारण नशे की खुमारी ही में पड़े रहे और उसकी माँ ने इस बीच में सेर-सेर गरी, छुहारे, बादाम, किशमिश, तालमखाने डाल कर दन्दासा (रँगली दातुन) मेंहदी और मंगल-सूत्र के साथ सवा छः सेर की गुथली तैयार कर ली। बनारसी साड़ी और जम्पर और उसी रंग की जुराबें और रूमाल उसने पहले से मँगा रखे थे। अपनी दो सुनहली अँगूठियाँ तुड़वा कर सिर की सुई भी तैयार करा रखी थी। गुथली सी-सिला कर वह हर तरह से तैयार हो गयी। फल और मिठाई भी उसने मँगा ली। जब चेतन के पिता दोपहर के लगभग उठे तो उन का मुँह-हाथ धुलवाते समय उसने उन्हें अपनी सब कारगुज़ारी सुना दी। तब चेतन के पिता ने आवाज़ दे कर चेतन को आदेश

दिया कि वह खाना खा कर अपनी माँ के साथ बस्ती जाय, अपने स्कूल के अध्यापक नन्दलाल से मिले और जा कर लड़की देख आये (वे शगुन वहीं दे देंगे) और इधर से साड़ी और गुथली दे कर सगाई पक्की कर आये। विवाह के बारे में पूछें तो कह दे कि दो वर्ष बाद होगा। यह कह कर वे पगड़ी बगल में दबाये हुए सीढ़ियाँ उतर गये थे। चेतन की माँ से उन्होंने इतना कहा कि खाना वे देसराज के यहाँ खायेंगे।

ये अध्यापक नन्दलाल चेतन के स्कूल ही में छठी श्रेणी को पढ़ाते थे। विचारों से आर्य समाजी थे। उनके घर ही चेतन की भावी पत्नी को देखने का प्रबन्ध किया गया था।

बस्ती पहुँच कर चेतन ने अपनी माँ और अध्यापक नन्दलाल दोनों से फिर एक बार कहा कि मैं लड़की देख चुका हूँ, आप गुथली दे दीजिए, मैं अब फिर देख कर क्या करूँगा ? लेकिन एक तो माँ अपनी इस लक्ष्मी बहू का मुँह देखने को आतुर थीं, दूसरे वे आर्य-समाजी अध्यापक लगे हाथों सुधार का यह शुभ काम करके बस्ती भर में अपने सुधार-कार्य का डंका बजा देना चाहते थे। लड़की को भली-भाँति देखने के गुण उन्होंने बड़े उत्साह के साथ चेतन को समझाये ! बताया कि समस्त रिश्तेदारों के विरोध के होते भी उन्होंने लड़की को देख कर विवाह किया था। इसके बाद उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि अब जब वह आ ही गया है तो संकोच छोड़ कर एक बार फिर अच्छी तरह लड़की को देख ले।

अब चेतन के लिए कोई चारा न रहा। विवश हो कर उसने इस प्रहसन में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

उन्हें बस्ती में उन अध्यापक महोदय के मकान के समीप ही एक जगह ठहराया गया। चेतन की माँ अध्यापक महोदय की लड़की के साथ उनके घर चली गयीं। चेतन इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब उसे बुलाया जाता है और कब उसके सिर से यह विपत्ति टलती है। उसका हृदय प्रति-क्षण तीव्रतर गति से धड़क रहा था और उसके चेहरे का रंग भी कुछ फीका-

सा पड़ता जा रहा था। तभी अध्यापक महोदय उसे लेने आ गए।

एक तंग-सी ड्योढ़ी से गुज़र कर आँगन तक जाते-जाते चेतन का गला सूख गया। रंग शायद और भी फीका पड़ गया। आँगन में पहुँच कर उसने देखा कि सामने (उन अध्यापक की उपस्थिति के कारण) डेढ़ बालिश्त का घूँघट निकाले उसकी माँ बैठी है। पास ही तन कर (सुधारक की पत्नी होने के गर्व से या इसलिए कि पर्दे की रस्म उसने छोड़ रखी थी और बस्ती में शायद वही पहली स्त्री थी जिसने इतना साहस किया था) उन अध्यापक महोदय की पत्नी बैठी थी। तब चेतन को कुछ ऐसा आभास हुआ कि दायीं ओर एक चटाई पर वही मोटी-मुटल्ली लड़की बैठी है। अपनी झुकी हुई निगाहें उठा कर उसने अपने इस भावी मँगेतर को देखने का प्रयास भी किया पर चेतन उसे आँख भर कर न देख सका। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा-सा छा गया। उसकी दृष्टि इस बरबस गले मढ़ी जाने वाली मँगेतर पर से फिसलती हुई उसके बराबर ही बैठी हुई एक दूसरी लड़की पर आ गयी। क्षण भर के लिए जैसे वह अँधेरा मिट गया। उसका हृदय और ज़ोर से धड़क उठा। उसे लगा जैसे इस लड़की को उसने पहले भी कभी देखा है। उसे याद आ गया कि जब वह बस्ती के अड्डे पर अपनी इस भावी पत्नी को देखने आया था तो माप-माप कर पग रखने वाली जिस सुन्दर लड़की को देख कर वह चौंका था, वह यही तो थी। उस निमिष मात्र की झलक में चेतन को उस किशोरी के मुख का एक भाग, उस भाग को जगमगाता-सा मोतियों का कर्णफूल और उसकी चञ्चल आँखों की एक रसीली चितवन ही दिखायी दी। इसके बाद जैसे अँधेरा फिर छा गया और उसकी घबराहट बौखलाहट की हद को पहुँच गयी।

यह सब कुछ पलक झपकते हो गया था। अध्यापक महोदय ने अपनी पत्नी से कहा कि चेतन जी आये हैं और चेतन ने शायद यह कहा था कि उसे प्यास लगी है और फिर शायद पानी पी कर या बिना पानी पिये ही वह वहाँ से चला आया था।

यही वह भेंट थी जिसकी ओर अपने उस पत्र में चेतन ने संकेत किया

था। आगे उसने लिखा था—

"अभी तो मैं जा रहा हूँ—लाहौर ! फिर कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। 'देश सेवक' लाहौर के सम्पादक पंडित दीनानाथ स्थानीय हिन्दू सभा के दफ़्तर में आये थे। मैंने उनसे अपनी साहित्यिक आकांक्षाओं का ज़िक्र किया और बताया कि मैं अपनी वर्तमान नौकरी से ऊब गया हूँ ! बस, उन्होंने वादा किया और कहा कि मेरे साथ लाहौर चलो और कोई-न-कोई प्रबन्ध कर दिया जायगा।

दैनिक पत्र में अनुवाद का काम अधिक होता है, मुझे वह आता नहीं। लेकिन उन्होंने साहस दिलाया है कि ज़रा-सा परिश्रम करने से मैं शीघ्र ही अच्छा अनुवादक बन सकता हूँ। जब तक मैं काम न सीख जाऊँ, समाचार पत्र के साप्ताहिक संस्करण के लिए हर सप्ताह एक कहानी लिख दिया करूँ। उस समय तक मेरे खाने-पहनने का प्रबन्ध वे कर देंगे। यदि भली-भाँति काम सीख गया तो कुछ वेतन भी मिलने लगेगा। और फिर हुनर साहब तो वहाँ हैं ही····

तुम्हारा
चेतन

और 'पुनश्च' लिख कर नीचे एक पंक्ति उसने लिखी थी कि लाहौर जा कर वह अपनी सरगर्मियों से अनन्त को अवश्य परिचित रखेगा।

पत्र को पढ़ कर कुछ क्षण के लिए अनन्त चुपचाप खड़ा रह गया। उसकी समझ में कुछ भी न आया। पहले उसके मन में आया कि उसी समय चेतन के घर जा कर उसकी माँ से सब कुछ पूछे। फिर उसने चुपचाप चारपाई पर जा कर उसी तरह रज़ाई ओढ़ कर बैठ जाना ही श्रेयस्कर समझा।

तब अनन्त की माँ ने (जो कमर पर दोनों हाथ रखे इस प्रतीक्षा में खड़ी थी कि अनन्त पत्र समाप्त कर ले तो पूछे कि चेतन ने क्या लिखा है)

अपना मन्तव्य प्रगट किया।

उत्तर में अपने इर्द-गिर्द अच्छी तरह रज़ाई लपेटते हुए अनन्त ने कहा, "चेतन कल रात लाहौर चला गया है।"

"किस काम के लिए?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं, लेकिन वहाँ नौकरी करेगा।"

"लेकिन यहाँ जो नौकर था?"

"था तो!"

"फिर क्या बात हुई?"

"यह तो मुझे मालूम नहीं।"

और उसी प्रकार कमर पर हाथ रखे, मुँह फुलाये, माँ रसोई घर की ओर चल दी और अनन्त ने रज़ाई को अच्छी तरह अपने इर्द-गिर्द लपेट लिया।

इसके चार महीने बाद एक दिन अनन्त जालन्धर के प्लेटफ़ार्म पर कपूर्थला जाने वाली ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहा था कि उसे ऐसा आभास हुआ जैसे उसने चेतन को देखा है।

भागता-भागता और पुल की दो-तीन सीढ़ियाँ एक ही बार चढ़ता हुआ, वह नम्बर एक प्लेटफ़ार्म पर पहुँचा और इससे पहले कि चेतन गेट पर टिकट दे कर बाहर निकल जाता, उसने उसे पा लिया।

"चेतन!" पीछे से उसके कंधे पर उसने थपकी दी।

चेतन मुड़ा—"ओह अनन्त!" और दोनों मित्र एक-दूसरे से लिपट गये। अनन्त उसे गेट में से वापस खींच लाया।

अभी कपूर्थला जाने वाली गाड़ी का इंजन भी नहीं लगा था, इसलिए दोनों मित्र उसी प्लेटफ़ार्म पर घूमने लगे।

"तुमने तो यार एक पंक्ति तक नहीं लिखी, ऐसे लाहौर गये तुम!" अनन्त ने बात शुरू करते हुए कहा, "कौन-सी गुफ़ा में समा गये वहाँ?"

चेतन ने बताया कि वे सम्पादक महोदय जिनके साथ वह लाहौर गया था, अजीब शिकारी आदमी थे। सब्ज़ी मण्डी के पास एक सस्ते-से होटल

में उन्होंने उसके भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दिया; दूध वाले से कह दिया कि वह डेढ़ पाव दूध उसे रोज़ दे दिया करे; नाई को हजामत के लिए कह दिया और धोबी को कपड़ों के लिए। चेतन को आश्वासन दिलाया कि वे स्वयं इन सबका बिल दे देंगे और इस प्रकार कुल मिला कर बाईस रुपये पर उन्होंने उसे अपने समाचार पत्र में अनुवादक रख लिया।

इस विचित्र व्यवस्था पर अनन्त ज़ोर से हँसा और उसने पूछा, "वे बिल उन्होंने चुकाये भी ?"

"अरे, राम का नाम लो !" चेतन ने कहा, "यह सोच कर कि समाचार पत्र में नौकरी मिल गयी और उन्नति का भी अवसर है, मैंने अपनी साइकिल और कुछ सामान लाहौर मँगा लिया। लेकिन दो महीने के बाद जब उन सम्पादक महोदय के चंगुल से मैंने मुक्ति पायी तो बिल न चुका सकने के कारण होटल के मैनेजर ने मेरी साइकिल ही रख ली। बाद में दूसरी जगह नौकरी करके पहले महीने का वेतन उन मैनेजर साहब की भेंट चढ़ा कर बड़ी कठिनाई से मैं उसे लाया।"

अनन्त फिर ज़ोर से हँसा। तब चेतन ने अपने उन अनुभवों की बात की जो उसे पहले-पहल समाचार पत्र के दफ़्तर में प्राप्त हुए थे।

वे सम्पादक महोदय जो उसे ले गये थे, सारा दिन हुक्के की नली मुँह से लगाये रखते थे। कुछ नवयुवक उन्होंने अपने समाचार पत्र में भरती कर रखे थे, जिन्हें ज़रा-सी भी ग़लती हो जाने पर अपने कमरे में बुला कर वे 'क्यों बे गूँगे' कहते हुए उनके हल्की चपतें लगाया करते थे।

उन्हीं में से एक जो कुछ अधिक वयस्क था, 'महात्मा' कहलाता था। वह समाचार पत्र का सम्पादक था।

"आजकल," चेतन ने कहा, "जब लाहौर में कड़ी गर्मी पड़ती है, ये महात्मा रात के समय कमीज़ और बनियाइन आदि उतार कर पंखे नीचे बैठ जाते हैं और सम्पादकी करते हैं और कभी अपने कमरे से वे सम्पादक महोदय (जो समाचार पत्र के मालिक भी हैं) उधर आ निकलते हैं और 'क्यों बेमहात्मा' कहते हुए उसकी पीठ को चपतिया देते हैं।"

"गूँगे और महात्मा," अनन्त फिर ठहाका मार कर हँसा और उसने पूछा, "लेकिन उन दोनों में सम्पादक कौन है ?"

"नाम उनका जाता है और काम 'महात्मा' करते हैं।" चेतन ने उत्तर दिया।

फिर उसने बताया कि वहीं पहले-पहल उसे इस बात का पता चला कि जिस सम्पादकी के स्वप्न वह देखा करता था, वह वास्तव में कितनी नारकीय है। दिन को बारह से छः बजे तक और रात को नौ बजे से दो बजे तक दैनिक पत्रों के सम्पादक कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहते हैं। जब थक जाते हैं तो आपस में अश्लील और गन्दे मज़ाक करते हैं। चरित्रहीन, विवर्ण मुख, उनींदी खुमार-भरी आँखें, अत्यधिक मोटे या बिलकुल मरियल और हर तरह से भूखे—लाहौर के देशी भाषीय पत्रों में काम करने वालों में से अधिकांश को उसने ऐसा ही पाया।

उस दैनिक में वह अनुवाद के साथ-साथ उस पत्र का 'अपना कहानी लेखक' भी था। बात यह थी कि अनुवाद करना उसे आता न था, इसलिए वह पत्र के साप्ताहिक संस्करण में एक कहानी दिया करता था। इन्हीं कहानियों के बल पर उसे एक दूसरे दैनिक पत्र में जगह मिल गयी। एक की देखादेखी लाहौर के सभी दैनिकों ने साप्ताहिक-संस्करण निकालने आरम्भ कर दिये थे। इस दूसरे पत्र में एक अनुवादक का स्थान खाली था। वहाँ वह ले लिया गया, इस शर्त पर कि वह प्रति सप्ताह पत्र में एक कहानी लिखेगा और अनुवाद शीघ्रातिशीघ्र सीख लेगा।

और चेतन ने बताया कि अब वह पत्र में सहकारी सम्पादक है, चालीस रुपये पाता है और चंगड़ मुहल्ले में रहता है।

"वे हुनर साहब कभी मिले ?" अनन्त ने पूछा।

चेतन ने ज़ोरदार ठहाका मारा। लेकिन इससे पहले कि वह कुछ बताता अनन्त को भाग कर पुल पर से जाने की अपेक्षा लाइनें पार करके अपने डिब्बे में सवार होना पड़ा, क्योंकि इस बीच में इंजन भी आ लगा था, लाइन क्लियर भी मिल चुका था, गार्ड ने सीटी भी दे दी थी और

गाड़ी चलने भी लगी थी।

इसके बाद कई महीने अनन्त को चेतन की कोई ख़बर नहीं मिली। फिर सहसा एक पत्र आया। इधर-उधर की बातों का उल्लेख कर चेतन ने लिखा था :

"....यह भी कोई जीवन है ? मैं सोचता हूँ, क्या मैं इसीलिए घर से भागा था ? मैंने अनुवाद सीख लिया है और आठ घंटे बिना सिर उठाये अंग्रेज़ी तारों का अनुवाद करता हूँ, प्रूफ़ पढ़ता हूँ और फिर जुल्म यह है कि इतने काम के बावजूद सम्पादक साहब चाहते हैं कि मैं अब भी प्रति-सप्ताह एक कहानी साप्ताहिक अंक के लिए लिखा करूँ। असहयोग आन्दोलन के दिनों में स्वर्गीय लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित नेशलन कॉलेज जब टूटा तो कुछ लड़के एफ० ए० ही में पढ़ते थे। कॉलेज टूटने के बाद, पूछने वाला तो कोई था ही नहीं, इसलिए वे भी बी० ए० (नेशनल) बन गये। हमारे सम्पादक भी वैसे ही बी० ए० (नेशनल) हैं। आर्डिनेन्सों का ज़ोर है, सम्पादक बनने के लिए कोई तैयार नहीं होता, वर्तमान सम्पादकों को बदलने में ज़मानत के माँगे जाने का डर है, इसी परिस्थिति की बदौलत ये साहब १०० रुपया महीना वेतन पा रहे हैं। स्वयं कुछ करते-धरते नहीं, व्यर्थ का रोब गाँठा करते हैं। जानते हैं कैद के भय से कोई दूसरा व्यक्ति नाम देने को तैयार न होगा, और हुआ भी तो सरकार ज़मानत माँग लेगी।

"जब से मैंने कहानी लिखने से इनकार किया है, इनका पारा और भी चढ़ा रहता है। कहानी लिखना न हुआ घास छीलना हुआ। पहले तो मेरे पास कुछ लिखा मसाला पड़ा था, अब प्रति-सप्ताह नयी कहानी कहाँ से लाऊँ ?

"दिन भर बक-बक झख-झख रहती है। अख़बार में जो ग़लती होती है, वह चाहे उनकी अपनी हो या किसी दूसरे की, ये हज़रत मेरे नाम मढ़ देते हैं।

"और मैं सोचता हूँ क्या जीवन में मेरा यही उद्देश्य था ?...."



१४ चेतन को लाहौर गये साल भर हो चुका था जब एक दिन उसके भाई रामानन्द (जो इस बीच में आवारा और निकम्मा रामानन्द के बदले डॉ० रामानन्द कहलाने या कम-से-कम अपने आप को कहने लगे थे) उसका पता पूछते-पूछते पीपल वेहड़ा चंगड़ मुहल्ला जा पहुँचे।

सुबह का समय था, और चाहे म्यूनिसिपल कमेटी के भंगी और भिश्ती अपना काम पूरा कर गये थे, लेकिन गन्दगी की गाड़ियाँ भी अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं। वास्तव में घोड़ों के अस्तबलों, गन्दी गाड़ियों के अहातों और गूजरों, चंगड़ों, भंगी और चमारों के घरों का सामीप्य होने के कारण भिश्ती चाहे लाख छिड़काव कर जायँ और भंगी चाहे लाख सफ़ाई कर जायँ, चंगड़ मुहल्ले की दशा में कभी कोई अंतर नहीं आता। अनारकली के समीप ही इतना बेरौनक, गन्दा और ग़रीब इलाक़ा हो सकता है, चेतन के भाई को इसकी कल्पना भी न थी। इधर चंगड़ मुहल्ले में कुछ नया दुकानें बन गयी हैं। पर तब तो सारे बाज़ार में दो-तीन लाँडरियों, एक मैले-कुचैले बनिये और दो-एक हलवाइयों की दुकानों के अतिरिक्त कुछ भी न था। मोहनलाल रोड की ओर से प्रवेश करके किसी-न-किसी तरह नाक पर रूमाल रखे रामानन्द 'पीपल वेहड़ा' को जाने वाली गली के सिरे तक पहुँचे। पक्की ईंटों की दो सीढ़ियों के साथ बाज़ार से तनिक ऊँची, पक्की ईंटों ही की गली बनी थी। सामने एक ऊँचा पक्का मकान था, जिसकी खिड़कियों पर गहरे सरदई रंग का वार्निश भी था। रामानन्द ने सुख की साँस ली कि आख़िर वे साफ़ स्वच्छ जगह पहुँच गये। किन्तु जब लाला भगवानदास का मकान पूछते हुए, वे कुछेक पग चल कर, उस नये मकान

के पास से दायीं ओर की गली में मुड़े तो सहसा उन्हें नाक पर रूमाल रखना पड़ा—गोबर की एक तीखी बू उनकी नाक में घुस गयी और इसके साथ ही किसी नारी का कर्कश स्वर उनके कान में पड़ा जिसके एक वाक्य में लगभग सब-की-सब गालियाँ थीं। (कदाचित पहले कभी वे यह सावधानी न बर्तते, पर अब तो वे डॉक्टर हो गये थे और दुर्गन्ध से उन्हें नयी-नयी उपेक्षा हो गयी थी) एक-दो पक्के मकानों के अतिरिक्त इस गली में सब कच्चे मकान थे। इनमें चंगड़ रहते थे। इसी गली का नाम वास्तव में 'पीपल वेहड़ा' था। लाला भगवानदास ने अपनी वैश्यवृत्ति के कारण असल और सूद मिला कर इन्हीं चंगड़ों में से कुछ की झोपड़ियाँ हथिया ली थीं और पक्के मकान खड़े कर लिये थे।

गली के सिरे पर ही अपने कच्चे मकान की देहरी पर एक काला-भुजंग चंगड़, नंगे बदन, तहमद लगाये मज़े से बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसी से चेतन के भाई ने लाला भगवानदास का पता पूछा और जब उसने पास ही पक्के तीन मंजिले मकान की ओर संकेत कर दिया तो मकान के पास जा कर रामानन्द ने चेतन का नाम ले कर आवाज़ दी।

किसी ज़माने में शायद यहाँ खुली जगह होगी और यह स्थान वेहड़ा अर्थात् आँगन कहलाता होगा। हो सकता है पीपल का कोई पेड़ भी यहाँ कहीं हो, किन्तु उस समय तो दोनों में से एक चीज़ भी वहाँ न थी। मकान के साथ छः-सात फ़ुट जगह खाली थी जिसे पक्की, कंधों तक ऊँची दीवार गली से अलग कर रही थी। यह जगह पक्की बनी हुई थी। इसके बीचोबीच एक बड़ी नाली थी, जो सारे मकान का गन्दा पानी ला कर गली की नाली में मिला देती थी। नाली की जो दशा थी उसे देख कर चेतन के भाई ने मकान के निवासियों के रहन-सहन का अनुमान लगा लिया।

रहा मकान, सो वह उन सहस्रों मकानों में से एक था जो लाहौर में सिर्फ़ किरायेदारों के लिए बनवाये जाते हैं।

आवाज़ सुन कर ड्योढ़ी के दायें ओर के निचले कमरे से (जिसके दोनों किवाड़ों पर नीली नयी चिकें लटक रही थीं) चेतन निकला। कमर तक

बदन नंगा था और कमर के नीचे तहमद लटक रहा था। अपने बड़े भाई को देख कर खुशी की एक 'ओह' चेतन के मुँह से निकल गयी और वह एकदम उनके चरणों पर झुक गया। फिर वह उन्हें अन्दर ले गया।

अँधेरा, सील-भरा कमरा, दीवारों पर पलस्तर, ऐसा मालूम होता था कि गिरा ही चाहता है। खिड़की अथवा रोशनदान एक भी न था। बस एक दरवाज़ा एक अँधेरे-से आँगन में खुलता था। इस दरवाज़े को चेतन प्रायः बन्द ही रखता था और बन्द सील भरे कमरों से जैसी बू-सी आने लगती है वैसी ही दम घोटने वाली बू कमरे से आ रही थी। कमरे में आलमारी भी कोई न थी। योंही दीवार में दो जगह ताक़ बना कर तख्ते लगा दिये गये थे। छत काली स्याह थी, जिससे मालूम होता था कि पहला किरायेदार वहाँ अवश्य ही रसोई भी बनाता रहा होगा। नीचे सीमेंट का फ़र्श था जिसमें पैबन्द लगे थे। लेकिन कमरा साफ़ था और चेतन के शरीर की धूल बता रही थी कि उसने अभी-अभी उसे साफ़ किया है। फ़र्नीचर के नाम एक कोने में स्याह मेज़ पड़ी थी। उसके पास बिना बाजुओं की एक काली गद्देदार कुर्सी थी। रोशनी के लिए दीवार में कील गाड़ कर एक बिजली का बल्ब लटकाया गया था।

"यह मेज़ कहाँ से लाये हो?" चेतन के भाई ने कहा, "बना तो खूब है और है भी आबनूस की लकड़ी का, लेकिन लगता तो सेकेंड हैंड* है।"

"शायद थर्ड हैंड," † हँसते हुए चेतन ने कहा, "मैं तो एक कबाड़ी की दुकान से दोनों चीज़ें खरीद लाया हूँ।" फिर तनिक गम्भीर हो कर वह बोला, "हम सब एक-दूसरे पर निर्भर हैं। हमारा उतरन ग़रीब बड़े हर्ष से स्वीकार करते हैं और अमीरों का उतरन हम—" और वह एक खोखली-सी हँसी हँसा।

चेतन के भाई ने तनिक और समीप हो कर देखा तो गाढ़े काले रोग़न और पोटीन की सहायता से कई जोड़ ढके हुए दिखायी दिये। न जाने यह

---

*पुराना † तीसरे के पास से हो कर आया हुआ।

मेज़ कितनी बार मरम्मत होने के बाद इस महत्वाकांक्षी लेखक के यहाँ आया था।

"अन्दर ही आ जाइए।"

चेतन के भाई ने ध्यान ही न दिया था कि अन्दर भी कोई कमरा है। अनगढ़-से किवाड़ों को खोल कर चेतन अन्दर गया। उसने बिजली का बटन दबाया। तब चेतन के भाई ने देखा कि एक अँधेरी कोठरी है, जिसकी दीवारों में बाहर के कमरे जैसे ही ताक़ हैं। एक सस्ती-सी चारपाई बिछी है। सील की बू यहाँ पहले कमरे से भी तेज़ है। रोशनदान तो दूर, एक झरोखा तक भी कहीं नहीं है और दीवारों पर पलस्तर बहुत जगहों से गिर चुका है! हाँ, ठंडक इस कोठरी में बाहर से अधिक है। वे चुपचाप चारपाई पर लेट गये।

लेकिन वे अधिक देर तक वहाँ लेट न सके। कमरा दोपहर को ठंडा हो जाता होगा, पर सुबह उसमें उमस की मात्रा अधिक थी। वे उठ कर बाहर आये। दीवार के साथ लगी एक ईज़ी-चेयर चेतन ने बिछा दी और कुर्सी स्वयं खिसका कर उनके पास बैठ गया।

"अजीब जगह लिया है तुमने मकान!" उसके भाई ने पाँव फैला कर उसकी कुर्सी पर रखते हुए कहा, "मैं तो थक भी गया।"

चेतन हँसा और नहाने की सुधि भूल, वैसे ही तहमद लगाये नंगे बदन बैठे उसने अपने भाई को अपने मकान और उसके किरायेदारों का परिचय दिया।

पाँच-छः भागों में बने हुए उस तिमंज़िले मकान में बीच को एक ड्योढ़ी थी जिसके दोनों ओर सीढ़ियाँ जाती थीं। आँगन साझा था और दस किरायेदार उस मकान में रहते थे। आँगन में एक हैंड-पम्प था। नल या कोई स्नान-घर उस मकान में न था। इसलिए वह हैंड-पम्प ही स्नान-घर का काम भी देता था (यद्यपि चेतन वहाँ से बाल्टी भर कर अपने इस रसोई-घर नुमा ड्राइंग-रूम में ही नहाता था) इस हैंड-पम्प के दायीं ओर दो कोठरियों में रँगसाज़ लड़के रहते थे, जो दिन भर काम करते और सोने के लिए वहाँ आ जाते

थे। नल के दूसरी ओर चेतन के कमरे के सामने एक हलवाई रहता था, जिसकी पत्नी ने अपने इस कमरे को छोटा-मोटा मन्दिर बना रखा था। ग़रीब चंगड़ों के गाढ़े पसीने की कमाई सूद-दर-सूद के रूप में उनके घर आ रही थी, फिर चंगड़ों की दो झोपड़ियों के स्थान पर उनका जो मकान बन गया था, उसमें संदिग्ध किस्म के लोग रहते थे। इसके अतिरिक्त उस हलवाई के घर इस बढ़ती हुई जायदाद को सम्हालने वाला कोई पैदा न हुआ था। इन्हीं सब कारणों से सुबह-शाम वहाँ भगवान की आराधना में घंटे-घड़ियाल बजा करते थे।

दूसरी मंज़िल में चेतन के ऊपर वाले दो कमरे इन्श्योरेंस में काम करने वाले एक क्लर्क और उसके साथी ने ले रखे थे। साथी की माँ भी वहीं रहती थी। रसोई-घर कोई था नहीं, इसीलिए वे ऊपर के कमरे ही में रोटी पकाते थे। जिस दिन कभी बादल होते और हवा तेज़ चलती तो उनके रसोई घर नुमा कमरे का धुआँ चेतन के इस स्नान-घर-रूपी ड्राइंग-रूम में आ जाया करता। ड्योढ़ी के ऊपर अधछते आँगन और पिछली दो कोठरियों में एक कम्पोज़ीटर और उसकी विधवा भावज तथा उसके दो बच्चे (दस-बारह वर्ष की एक लड़की और सात-आठ साल का एक काना लड़का) किसी-न-किसी तरह जीवन के दिन व्यतीत कर रहे थे।

हलवाई के ऊपर प्रायमरी स्कूल का एक अध्यापक रहता था।

तीसरी मंज़िल के तीनों हिस्सों पर तीन बरसातियाँ थीं, जिनमें क्रमशः एक खोंचेवाला, एक डाकिया और एक पनवाड़ी सपरिवार रहते थे। जलती धूप हो अथवा चुभती सर्दी, खाना उन्हें बरसाती के आगे, खुली छत पर पर्दा-सा लगा कर पकाना पड़ता था।

इन सब नौ-दस किरायेदारों के लिए तीन शौचालय थे और शेष 'बैठकें,' 'स्नान-गृह,' 'शयन-गृह,' और 'रसोई-घर' आदि का काम वे सब अपने उन्हीं दो कमरों से लेते थे।

गर्मियों में सोने का प्रबन्ध यों होता—निचली मंज़िल वाले नीचे मकान के बाहर नाली पर चारपाइयाँ बिछा कर सोते। बीच की मंज़िल में रहने

वाले बरसातियों के ऊपर सोते, बरसातियों वाले अपनी बरसातियों के सामने ।

इस मकान और उसके किरायेदारों का परिचय दे कर चेतन ने कहा, "आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि ऐसे घटिया मकान के ये दो कमरे भी मुझे बड़ी दिक्कत से मिले । लाहौर के गली-मुहल्लों में किसी अविवाहित युवक के लिए किसी कमरे का ले लेना आसान बात नहीं । साथ में कोई स्त्री होनी चाहिए, चाहे वह माँ, बहन, चाची, ताई, भावज, बुआ यहाँ तक कि कहीं से भगाई हुई ही क्यों न हो ।"

यहाँ चेतन ने ठहाका लगाया और फिर बोला, "लेकिन मैंने भी इन लोगों को खूब बनाया । हुआ यों कि यहाँ सब्ज़ी-मण्डी के उस होटल को छोड़ने के बाद मैं हुनर साहब से मिला । उनका घर मज़ंग में है । बड़े तपाक से मिले । बोले, 'तुम यहीं रहो । रात को दफ़्तर का काम खत्म कर के इकट्ठे आ जाया करेंगे ।' जालन्धर में दुनिया भर के कवियों की रचनाएँ अपने नाम से सुना कर वे मुझ पर बड़ा रोब जमा आये थे । मन-ही-मन में मैंने उन्हें अपना गुरु भी मान लिया था । उनके इस प्रस्ताव पर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ । लेकिन अभी महीना खत्म भी न हुआ था कि उन्होंने, यह बता कर कि सोलह रुपया मकान का किराया उन्हें देना पड़ता है, आठ मुझ से माँग लिये ।"

रामानन्द चुपचाप सुनते रहे ।

"उन्होंने यह प्रस्ताव भी किया," चेतन ने बात को जारी रखते हुए कहा, "कि मैं रोटी भी वहीं से खाऊँ और वे इस सब के बीस रुपये मुझसे ले लिया करेंगे । कहने लगे, 'अपना आदमी साथ हो तो बीमारी-उमारी में सौ मदद मिल जाती है ।' और तनिक हँसते हुए चेतन बोला, "बस उसी दिन शाम को मैं मकान की खोज में निकल पड़ा । यह भी इच्छा थी कि दफ़्तर के पास कहीं मिल जाय तो रात को उनींदी आँखें लिये मील-डेढ़ मील चल कर मज़ंग पहुँचने की मुसीबत से छुट्टी मिले । लेकिन पाँच-छः जगह पूछने पर ही पता चल गया कि कुँवारे के लिए किसी सभ्य इलाके में कोई कमरा

किराये पर ले लेना कुछ आसान बात नहीं। इस चंगड़ मुहल्ले में भी," चेतन ने हँस कर कहा, "ड्योढ़ी के ऊपर दरम्याने में रहने वाली विधवा ने पूछा कि मैं अकेला ही आऊँगा या सपत्नीक! तब मैंने कह दिया कि पत्नी तो मेरे है, पर अभी उसे परीक्षा देनी है, इसलिए वह साथ न आयेगी।"

चेतन के भाई ने हँस कर कहा, "लेकिन परीक्षायें तो हो चुकीं!"

चेतन बोला, "पूछती थी, पर मैंने कह दिया कि मेरी पत्नी प्रान्त भर में सर्व-प्रथम रही है इसलिए वहीं स्कूल में उसे अध्यापिका की जगह मिल गयी है, अब मैं प्रयास करूँगा कि उसकी बदली यहाँ लाहौर हो जाय।"

इस पर दोनों भाई खूब हँसे। जब चेतन अपने सम्बन्ध में सब कुछ बता चुका तो उसने अपने भाई से उनका हाल-चाल पूछा और उसे मालूम हुआ कि उसके भाई ने इस एक वर्ष में दाँतों की डाक्टरी पूरी तरह सीख ली है। न केवल यह, बल्कि कराची से डिप्लोमा मँगा कर पूरे डाक्टर बन गये हैं।

यह सुन चेतन ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि यह उन्होंने बहुत अच्छा किया, तब वह स्वयं नहाने और अपने भाई के नहाने-खाने की व्यवस्था करने लगा।



१५

पंडित बनारसीदास की दुकान पर सारा दिन ताश खेलने वाले, माँ के द्वारा 'बुढ़ऊ' पुकारे जाने वाले, सदैव मैले तहमद और कुर्ते में मस्त चेतन के भाई रामानन्द और उस सुबह साफ़ यद्यपि पुराने सूट में आवृत, सिर पर मोतिया रङ्ग की पगड़ी सजाये, सस्ती लेकिन सुन्दर टाई बाँधे अपने इस छोटे भाई के घर अचानक आ धमकने वाले इन डाँक्टर रामानन्द में आकाश-पाताल का अन्तर था।

इस डेढ़ वर्ष के अर्से में वह आवारा, निकम्मा और नालायक युवक किस प्रकार डॉक्टर कहलाने योग्य हो गया, यह एक लम्बी कहानी है। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त है कि कराची से एल० डी० एस-सी० डिग्री ले कर

आने वाले एक दाँतसाज़ डाक्टर से चेतन की मित्रता थी। जब चेतन के इन भाई साहब की बेकारी और उस पर उनकी पत्नी की कर्कशता ने माँ का जीवन दूभर कर दिया और लाँडरी के ऋण के अतिरिक्त और भी तीन-चार सौ रुपया अपने इसी सुयोग्य पुत्र की बदौलत माँ के सिर चढ़ गया तो चेतन की माँ ने, जब चेतन एक बार जालन्धर गया था, उस पर ज़ोर दिया कि वह अपने भाई को भी किसी-न-किसी तरह कहीं काम पर लगाये। उसी दिन हँसी-हँसी में चेतन ने अपने उस डाक्टर मित्र से पूछा कि वह उसके भाई को अपना शिष्य क्यों नहीं बना लेता। उसने हाँ कर दी। चेतन ने भाई के सामने प्रस्ताव रखा और डाक्टर बनने के लाभ पर एक छोटा-मोटा लेक्चर भी दिया। चेतन के बड़े भाई स्वयं घर में प्रति क्षण होने वाली उस कलह से ऊब चुके थे, उससे पिंड छुड़ाना चाहते थे और घर के बाहर नरक तक में भी जाने को तैयार थे। इसलिए उन्होंने झट चेतन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर इस काम में उनका मन इतना लगा कि उन्होंने परिश्रम करके उसे सीख लिया और उन्हीं डाक्टर साहब की सहायता से कराची के डेंटल कॉलेज से एल० डी० एस-सी० का डिप्लोमा भी ले लिया।

माँ हैरान थी कि उसका यह पुत्र जो कभी किसी काम में जी न लगाता था, जिसे ताश और शतरंज से दिन भर काम रहता था, किस तरह इतना परिश्रमी हो गया। चेतन के भाई उन डाक्टर साहब के यहाँ सुबह जाते और साँझ को सूरज छिपे वापस आते। उनकी वे आवारों की आदतें भी जाती रहीं। तहमद छोड़ सूट पहनना और चीखने के स्थान पर धीरे बोलना भी उन्होंने सीख लिया था। यद्यपि नये सूट के पैसों को ले कर घर में काफ़ी चख़-चख़ हुई थी और आखिर चेतन के भाई ने अपने पिता की मोटी ज़ीन की पुरानी वर्दी को ठीक कराके सूट की शक्ल दे दी थी और इस तरह रेलवे गार्ड-से लगने लगे थे, लेकिन डाक्टर बनने की कल्पना ही से उनके रहन-सहन में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया था।

वास्तव में पं० शादीराम ने अपने बच्चों की प्रवृत्तियों की ओर कभी ध्यान न दिया था। यों तो वे चाहते थे कि उनके लड़के ई० ए० सी० और

आई० सी० एस० से कम न बनें, पर इन शब्दों के अर्थ तक अपने बच्चों को समझाने की कोशिश उन्होंने कभी न की थी। कभी-कभी 'रिलीविंग' के अपने दौरों से अथवा किसी दूरस्थ स्टेशन से आना और मार-पीट, झिड़क, कोस जाना—बस इस पर ही उनका यह जोश समाप्त हो जाता था।

चेतन के इस बड़े भाई की रुचि बचपन ही से ऐसे कामों की ओर थी, जिनमें दिमाग़ से अधिक हाथों का दखल हो। बचपन में वे खिलौना बनाया करते थे। स्कूल में शेष सब विषयों में चाहे फेल हो जायँ पर ड्राइंग में बड़े अच्छे नम्बर पाते थे। स्वयं ही कई चित्र भी उन्होंने बनाये थे। फिर जब कॉलेज के दिनों में चेतन के सिर पर बिस्तर उठवा कर घर से भागे थे तो दिल्ली जा कर एक आर्टिस्ट के शागिर्द हो गये थे।

वहाँ से सौभाग्यवश पं० शादीराम के एक मित्र उन्हें ले आये। तब पंडित जी ने वापसी पर अपने इस सुपुत्र की खूब गत बनायी थी। जो भी मित्र आता उसके सामने वे उसे कान पकड़ कर ले आते और—"यही मेरा सुपुत्र है जो दिल्ली भाग गया था"—इन शब्दों में उनका परिचय कराते और दो-चार मधुर वचनों के चाँटे लगा कर वापस भेज देते।

इस पर तुर्रा यह कि उन्हें फिर कॉलेज में दाखिल कर दिया गया। वे माँ के सामने कितना ही रोये, किन्तु न माँ को अपने पति और न पुत्र को अपने पिता के सामने इनकार करने का साहस हुआ। लेकिन जब परीक्षा के लिए फ़ार्म भेजे जाने लगे तो प्रिन्सिपल ने उनका फ़ार्म रोक लिया, क्योंकि उनके लेक्चर बहुत कम थे। तब मन-ही-मन चेतन के भाई ने सन्तोष की साँस ली थी।

पिता तो चाहते थे कि उनका पुत्र फिर से कॉलेज में प्रविष्ट हो, पर पुत्र ने इस बीच में कुछ साहस बटोर लिया था, इसलिए बात जब चली तो उसने आगे पढ़ने से साफ़ इन्कार कर दिया।

पिता ने समझा लड़का जवान हो गया है, कहीं बिगड़ न जाय इसलिए उसकी शादी कर दी। लड़का तो क्या सुधरता, हाँ एक लड़ाकी बहू और दो बच्चों का बोझ उनके सिर पर लद गया।

अपनी इसी दशा की आलोचना करते हुए चेतन के भाई ने एक दिन उससे कहा था :

"अब तुम ही बताओ यदि मैं नालायक और अयोग्य रहा तो इसमें मेरा क्या दोष है ? गूदड़ की तरह पीटने से लड़का गूदड़ ही तो बनेगा। जितना उन्होंने मुझे पीटा है, उतना कभी किसी पिता ने अपने पुत्र को न पीटा होगा ?" और उनका गला भर आया था।

संयत हो कर उन्होंने फिर कहा था।

"और फिर व्यक्तिगत रुचि-अभिरुचि का भी तो कुछ प्रश्न है। मुझे पुस्तकें कभी अपनी ओर नहीं खींच सकीं। यदि मैं किसी कला-कौशल की ओर ध्यान देता तो अब तक कुछ-का-कुछ बन जाता।

"फिर पिता जी कहते हैं कि मैं कॉलेज से इसलिए भागा था कि मैं शादी करना चाहता था, (यहाँ वे तनिक हँसे थे।) पर वास्तव में बात यह थी कि संस्कृत के प्रोफ़ेसर ने पाँच रुपये जुर्माना कर दिया था और मैं किसी तरह भी फीस से अधिक रुपये न पा सका था।"

और फिर चेतन के भाई ने कुछ ज़ोर दे कर कहा था, "मुझे यदि मेरी दशा पर छोड़ दिया जाता तो मैं बेकार न फिरता। दिल्ली में अब तक मैं बहुत बड़ा आर्टिस्ट बन चुका होता।"

चेतन के बड़े भाई आर्टिस्ट अथवा पेण्टर तो न बन सके थे, हाँ डेंटिस्ट ज़रूर बन गये थे।

चेतन उन दिनों मोहनलाल रोड के एक तंदूर से रोटी खाता था। पर भविष्य में डाक्टर कहलाने वाले उसके ये बड़े भाई वहाँ कैसे खाना खाते और चेतन ही उन्हें तंदूर पर कैसे ले जाता ? इसलिए जब वह स्नानादि से निपट, उन्हें गणपत रोड के होटलनुमा तंदूर से खाना खिला लाया और चारपाइयों को बाहर नाली के ऊपर बिछा कर दोनों भाई बैठ गये तो डाक्टर रामानन्द ने अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया—

"निरे इस डिप्लोमे को ले कर मैं क्या करूँ ?" उन्होंने कहा, "डिप्लोमा पा लेना ही तो सफल हो जाना नहीं। सफलता की होड़ तो डिग्री लेने के

बाद आरम्भ होती है। अच्छी जगह दुकान चाहिए, दुकान में अपटूडेट सामान चाहिए और फिर नये ढंग से विज्ञापन हो, तब कहीं अपना कौशल दिखाने का अवसर डेंटिस्ट को मिलता है। इस सब के बाद यदि उसके हाथों में सिद्धि है तो वह चल निकलेगा, नहीं तो..."

यहाँ डाक्टर साहब ने अँग्रेजी की एक लोकोक्ति का उल्लेख किया, जिसका मतलब यह था कि 'डॉक्टर की ग़लती धरती में गाड़ दी जाती है, डेंटिस्ट की मुँह बाये उसके सामने आ खड़ी होती है।'

उस आर्थिक समस्या की गम्भीरता के बावजूद, जिसे ले कर वे उसके पास आये थे, चेतन यह सुन कर हँस पड़ा।

"जहाँ तक ग़लती करने का सम्बन्ध है," डाक्टर साहब ने कहा, "उस ओर से मुझे कोई डर नहीं। जालन्धर में डॉक्टर चोपड़ा का सब काम मैं ही कर रहा हूँ। लेकिन प्रश्न तो यह है कि यह सब निपुणता दिखाने का अवसर मुझे कैसे मिलेगा?"

और उन्होंने बताया कि माँ ने किसी तरह की भी सहायता देने से साफ़ इन्कार कर दिया है। "जब मैंने कहीं दुकान खोलने का प्रस्ताव किया और दबी ज़बान से उसके लिए कुछ रुपये की माँग की तो माँ ने लाँडरी के दिनों के गड़े मुर्दे उखाड़े कि मुझे वहाँ से भागते ही बना।"

तब, आश्चर्य है कि उनकी उसी लड़ाकी, कर्कशा पत्नी ने (जिसने एक बार घर में आटा ख़त्म होने पर दो रुपये देने से इन्कार कर दिया था) अपने दो गहने ला कर उन्हें बेचने को दे दिये थे और न जाने किस तरह पैसा-पैसा जोड़ कर इकट्ठे किये हुए नब्बे रुपये भी उनके सामने ला रखे थे।

चेतन के भाई ने बताया कि इनसे वे किसी-न-किसी तरह सस्ता सामान ख़रीद कर फ़िरोज़पुर में दुकान खोल लेंगे। वहाँ कम्पीटीशन* कम है इसलिए चेतन से वे इतना कहने आये थे कि कम-से-कम एक वर्ष के लिए वह कुछ

कम्पीटीशन = Competition = प्रतियोगिता।

रुपये मासिक से उनकी सहायता करे, क्योंकि खोलते ही तो दुकान चल न निकलेगी।

इस पर चेतन ने वहीं लेटे-लेटे जो कहा उससे क्षण भर के लिए भाई साहब का मुँह उतर गया। उसने सामने के मकान की किसी लड़की प्रकाशो का ज़िक्र किया जो कि उसके घर आते ही सामने झरोखे में आ बैठती थी और इतवार के दिन जब वह घर होता तो दिन भर धूप के होते भी वहीं बनी रहती थी और सारे संयम के बावजूद उसका मन भटक जाता था।

"इस तरह भटकने से मैंने सोचा है," चेतन ने कहा, "मुझे ब्याह कर लेना चाहिए। सगाई अब छोड़ी नहीं जा सकती और लड़की जैसी भी है, काफ़ी बड़ी है और आजकल बड़ी लड़कियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। बस्ती के लड़के भी (उसने हँसते हुए कहा) आखिर हम जैसे ही हैं। मैं सबको जानता हूँ और मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि शादी वहीं करनी है तो दो साल तक रुकने की कोई ज़रूरत नहीं।"

और फिर उसने उन्हीं से पूछा था कि पत्नी के साथ लाहौर में रहता हुआ वह किस तरह चालीस रुपयों में से उनको कुछ भेज सकेगा ?

चेतन के भाई कुछ क्षण के लिए निराश हो गये। वे कहना चाहते थे कि विवाह के सम्बन्ध में उसे कम-से-कम एक वर्ष के लिए रुक जाना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी भावनाओं को संयत नहीं रख सकता, वह संसार में कर ही क्या सकता है ? उसका वेतन कुछ बढ़ जाय, तब शादी करे। विवाह भारी उत्तरदायित्व का काम है और इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए सब से ज़रूरी वस्तु है—रुपया, जो अभी उसके पास नहीं।

किन्तु उन्होंने यह सब कुछ नहीं कहा। वे स्वयं कुछ रुपयों की माँग कर चुके थे और इस सब भाषण में उनकी स्वार्थपरता प्रकट दिखायी देती, यह बात वे अच्छी तरह जानते थे।

तब चेतन ने धीरे से, स्वयं ही जैसे उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा था कि यदि वे लाहौर में प्रैक्टिस करें तो जो भी उससे हो सकेगा वह अवश्य देगा।

"आपने स्वयं कहा है कि आजकल प्रैक्टिस प्रचार के बिना नहीं चलती," वह बोला था, "फ़िरोजपुर में आप प्रचार करेंगे या प्रैक्टिस? लाहौर में यदि आप रहेंगे तो निकट रहने के कारण, मैं अवश्य ही आप की कुछ-न-कुछ सहायता कर सकूँगा। कुछ और नहीं तो रोटी की चिंता आप को न रहेगी। फिर जब भी बन पड़ा, धन से भी सहायता करने का प्रयास करूँगा। इन सब बातों के अतिरिक्त मैं कई तरह से प्रचार कर सकता हूँ और प्रचार की सहायता धन की सहायता से कम नहीं।"

वहीं लेटे-लेटे उसने प्रचार के कई ढंग गिना दिये।

—वह समाचार पत्रों में उनके प्रैक्टिस आरम्भ करने की सूचना छपवा देगा।

—स्वयं कॉलेजों, होस्टलों, दफ़्तरों और सिनेमा घरों में उसके कार्ड विज्ञापन के रूप में बाँट आयेगा।

—अपने मित्रों में प्रचार करेगा और यद्यपि उसके मित्र इतने धनी-मानी नहीं, किन्तु उनका सम्पर्क और मेल-जोल धनी-मानी व्यक्तियों से है।

चेतन ने ये सब बातें कुछ इस ढंग से सुनायीं कि मन-ही-मन भाई साहब ने फ़िरोजपुर में प्रैक्टिस करने का विचार तत्काल छोड़ दिया, पर प्रकट उन्होंने इतना ही कहा, "तुम्हें मदद करना हो तो वहाँ भी कर सकते हो। वहाँ दाँतों के डाक्टर कम हैं, प्रैक्टिस का क्षेत्र बहुत है। यहाँ ईंट उठाओ तो डेंटिस्ट निकल आता है और मुक़ाबला बेहद ज़्यादा है।"

चेतन ने तनिक जोश से कहा, "मुक़ाबले से डरना, भाई साहब कायरों का काम है। प्रतिद्वन्द्विता ही वह कसौटी है जिस पर मनुष्य की प्रतिभा खरी-खोटी उतरती है। अव्वल तो फ़िरोजपुर में आप चार दिन में तंग आ जायेंगे, (मन-ही-मन उसने कहा—मैं आप के स्वभाव को जानता हूँ, माफ़ कीजिएगा, लाँडरी की बात अभी पुरानी नहीं हुई—किन्तु प्रकट बोला) फिर चल भी निकली तो आप अधिक-से-अधिक सौ-डेढ़ सौ रुपया महीना कमा सकेंगे। लाहौर में यदि प्रैक्टिस चल जाय तो हज़ार रुपया मासिक भी आ जाना बड़ी बात नहीं।"

"हज़ार !" और उस तंग, सीलभरी, दुर्गन्ध युक्त गर्म जगह में भैंसों और बैलों के समीप ही बैठे हुए डॉ० रामानन्द के सामने माल रोड की विशालता और उस विशालता का दिग्दर्शन कराती हुई एक सर्जरी घूम गयी और जैसे चेतन पर एहसान का बोझ लादते हुए वे मान गये।

लाहौर जैसे बड़े नगर में थोड़ी-सी पूँजी के साथ कैसे काम चलेगा, चेतन के भाई साहब ने इस बात की चिन्ता नहीं की। ये सब बातें उन्होंने अपने छोटे भाई की कार्यपटुता पर छोड़ दीं। हाँ, उसका ब्याह जल्दी-से-जल्दी करा देने का बोझ उन्होंने अपने कन्धों पर ले लिया और यद्यपि ब्याह की बात चलने पर चेतन की दिलचस्पी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी और वह बड़े ज़ोरों से अपने सिद्धान्तों की व्याख्या कर रहा था, पर उसके इस उत्साह की तनिक भी परवाह न करके चेतन के भाई वहीं चारपाई पर लेट, बड़े मज़े से ख़र्राटे लेने लगे।

●

१६

दूसरे ही दिन से चेतन ने अपने भाई साहब को लाहौर में जमाने का प्रयत्न शुरू कर दिया।

"इससे पहले कि आपके लिए कहीं दुकान ढूँढ़ी जाय," चेतन ने दूसरे दिन उनसे कहा, "आपको व्यवहार-कुशल होना चाहिए।"

भाई साहब कुछ कहना चाहते थे, पर अपनी धुन में उन्हें कुछ कहने का अवसर दिये बिना, चेतन ने अपनी बात जारी रखी, "आपकी दुकान चेम्बरलेन रोड, निस्बत रोड, बीडन रोड, माल रोड या अनारकली में होनी चाहिए। माल या अनारकली में दुकान जमाना हमारे बूते से बाहर है। इतना किराया हम नहीं दे सकते। और फिर वहाँ दुकान जमायें तो उतनी ही तड़क-भड़क और उतने ही खर्च का भी प्रबन्ध करें। यह सब इस समय दुष्कर ही नहीं असम्भव है। रहीं शेष जगहें तो वहाँ उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने में कुछ समय लग जायगा। इस बीच में आप अपने रोगियों से बातचीत करने का कुछ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लें।"

भाई साहब नहीं समझे। "क्या मतलब है तुम्हारा ?" उन्होंने कहा, "क्या मैं रोगियों से बातचीत करना भी नहीं जानता। जालन्धर में...."

"जालन्धर और लाहौर के रोगियों में अंतर है," चेतन ने उनकी बात काट कर कहा, "और फिर जालन्धर में आपको स्वतंत्र रूप से प्रैक्टिस करने का अवसर ही कब मिला ? मैं जानता हूँ कि जहाँ तक काम का सम्बन्ध है, आपका हाथ खुल गया है। लेकिन शुरू-शुरू में हाथ का खुलना उतना लाभदायक सिद्ध नहीं होता, जितना ज़बान का खुलना। रोगी आपके पास फँसेगा तो आपको अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलेगा, पर यदि रोगी पर आपका प्रभाव ही न पड़ा तो...."

चेतन के भाई समझ गये और उसी दिन चेतन ने कोशिश करके उन्हें रेलवे रोड के एक सफल और पुराने डेंटिस्ट के यहाँ कुछ दिन अवैतनिक सहायक के रूप में काम करने का अवसर जुटा दिया।

लेकिन भाई साहब वहाँ अधिक दिन नहीं रह सके और शीघ्र ही उन्हें अपनी व्यवहार-कुशल बनने की ट्रेनिंग समाप्त कर देनी पड़ी, क्योंकि चेतन एक और उलझन में फँस गया।

आँगन की पिछली दो कोठरियों में जो पहाड़ी युवक रहते थे उन्हीं दिनों उनके यहाँ एक लड़की (केसर) कहीं से आ गयी। कहने को तो उन युवकों में से एक उसका चचा कहलाता था और दूसरा भाई, पर पूछने पर चेतन को मालूम हुआ कि वास्तव में वह उनके गाँव ही की है। उसकी माँ सौतेली है, पिता ग़रीब है और वे दोनों स्वयं आ कर इस इच्छा से लड़की को उसके चाचा और भाई के पास छोड़ गये हैं कि कहीं किसी ज़रूरतमंद के हाथ पाँच-सात सौ रुपया ले कर उसे बेच दिया जाय।

केसर सुन्दर न थी, रंग उसका साँवला था (जो अब कुछ निखर रहा था) उभरे गालों में धँसी छोटी-छोटी आँखें थीं और चाल बेढङ्गी थी। किन्तु वह तरुणी थी और तरुणाई ने उसके अंगों में सुन्दरता भर दी थी।

इस केसर में विचित्र उद्दण्डता थी। उसकी आँखों में संकोच था न लज्जा। जब चेतन पम्प पर पानी लेने जाता और वह अपने दालान की चौखट पर बैठी उसकी ओर देखती तो चेतन बुरी तरह घबरा जाता। वह उससे दृष्टि न मिला पाता और आँखें नीची किये अपने कमरे में चला आता, पर उसकी उपस्थिति और अपना अनुसरण करती हुई उसकी दृष्टि का आभास उसे सदैव रहता।

सोमवार के दिन दफ़्तर में उसकी छुट्टी होने के कारण प्रायः वह अपने दोनों कमरे साफ़ करता, फ़र्श धोता और शरीर पर तेल की मालिश करके नहाता। उस समय केसर प्रायः आँगन में रहती। चेतन लाख चाहता कि उसका ख़याल न करे, पर वह जहाँ भी जाता, वह किसी-न-किसी तरह उसके सामने चली आती। वह आँगन में होता तो वह अपनी कोठरी की चौखट पर आ बैठती, कमरे में होता तो बाहर उसके चिकों वाले दरवाज़े के सामने किसी-न-किसी चंगड़ानी से बातें करने लगती, दोपहर को जब वह आराम करके ऊपर छत पर जाता कि वहाँ जा कर कुछ पढ़े तो वह ऊपर बरसाती में रहने वाली डाकिए की पत्नी से मिलने के बहाने वहाँ चली जाती।

यद्यपि चेतन ने उसकी ओर आँख भर कर भी न देखा था तो भी उस घर में उसे और केसर को ले कर बातें होने लगीं। वहाँ रहने वाली स्त्रियों को निन्दा-चुगली के अतिरिक्त कुछ काम तो था नहीं। वे बैठे-बैठे थक जातीं तो गली-मुहल्ले की कलंक-कहानियों में रस पाने लगतीं। उससे मन ऊब जाता तो लड़ने लगतीं। ऊपर दरम्याने में रहने वाली विधवा के मुँह से उसने एक-आध बात सुनी। एक-दो बार उसने उससे मज़ाक भी किया कि वह अपनी बहू को बुलायेगा या इधर-उधर मन लगायेगा। एक दिन उसने उससे यह भी पूछा कि उसका ब्याह भी हुआ है या उसने झूठ ही बोल दिया था।

चेतन ने उससे तो कह दिया कि मुझ पर विश्वास न हो तो मेरे बड़े भाई से पूछ लो। पर उस दिन जब उसके भाई घर आये तो उसने उनसे कहा कि इन मुहल्लों में किसी कुँवारे का रहना बड़ा कठिन है और यदि उसे

यहाँ रहना है तो उसे शीघ्रातिशीघ्र ब्याह कर लेना चाहिए।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि भाई साहब को व्यवहार-कुशलता की अपनी ट्रेनिंग बीच में ही छोड़ देनी पड़ी और दूसरे ही दिन उसकी शादी के सम्बन्ध में अपना प्रण शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने के लिए जालन्धर जाना पड़ा। चेतन ने उनको विश्वास दिला दिया कि इस बीच में वह उनके काम की ओर पूरा-पूरा ध्यान देगा।



१७ चेतन के भाई ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी, ब्याह की तिथि वे अत्यन्त निकट ले आये।

इस सम्बन्ध में माँ को मनाने की तो कोई वैसे आवश्यकता न थी। वे तो इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा ही कर रही थीं और कई बार इस कर्कशा बड़ी बहू से अपनी भावी छोटी बहू के शील-स्वभाव की तुलना करके कल्पना-ही-कल्पना में सुख का आभास भी पा चुकी थीं। आशाओं के सहारे मनुष्य जीता चला जाता है। एक टूटती है दूसरी का सहारा लेता है, दूसरी टूटती है तीसरी को पकड़ता है, फिर चौथी और फिर पाँचवीं को....किन्तु पिता अपने इस पुत्र को विवाहित देखने के लिए कुछ उतने उत्सुक न थे। वे तो उसे पूरा ब्रह्मचारी बना कर ब्याहना चाहते थे। "पुराने आदर्शों और पुराने सिद्धान्तों को छोड़ने ही से देश और जाति की यह दुर्गति हो रही है," वे मूँछों पर ताव देते हुए कहते, "चारों ओर साहसहीन, बलहीन, पीत-वर्ण युवक युवतियाँ दिखायी देते हैं जो न ठीक तरह हँस सकते हैं न खेल सकते हैं और न जीवन के दूसरे आनन्द लूट सकते हैं।" और फिर वे ठहाका मार कर हँसते और कुश्ती लड़ने और कबड्डी तथा गदका खेलने और राष्ट्र के निर्माण में इन खेलों के महत्व पर ऊँचे स्वर से उपदेश देने लगते।

किन्तु इस सब आदर्शवाद की तह में जो बात थी, उसे चेतन के बड़े भाई भली-भाँति समझते थे। जी भर पीने और जी भर उड़ाने और उस पीने और उड़ाने के लिए जी भर क़र्ज़ लेने के कारण पंडित शादीराम ने

कभी इतना धन-संचय न किया था कि वे विवाह ऐसी 'व्यर्थ की रस्मों' पर खर्च कर सकते—विशेषतया उस समय जब लड़का ब्रह्मचर्य-आश्रम को भी न पार कर पाया हो। इसलिए आदर्श की बात छोड़ कर चेतन के भाई ने इसी आर्थिक कठिनाई का हल उन्हें सुझाया था।

"विवाह तो बस्ती ही में होने वाला है," उन्होंने कहा था, "खर्च अधिक न होगा। फिर इतनी रस्मों की भी क्या आवश्यकता है? बस आर्य समाजी रीति से विवाह हो जाय। गहने-कपड़े कुछ माँ ने बनवा ही रखे हैं, अपने लिए कपड़ों की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं, यही पहन कर चले जायँगे। फिर छुट्टी भी आपको अधिक न लेनी पड़ेगी।" और उन्होंने सुझाया था—"आखिर जब शादी करनी ही है तो समय पर क्यों न कर दी जाय?"

और चेतन के पिता मान गये थे। तय यह हुआ कि प्रावीडेण्ट फंड से साढ़े पाँच सौ रुपया निकाल लिया जाय (पिछला ऋण उसी महीने पूरा जो हो रहा था) गहने कुछ-न-कुछ बने हुए हैं और सुधार की शादियों में दिखावे की भी कोई वैसी आवश्यकता नहीं।

पंडित शादीराम ने अपनी ओर से स्वीकृति देते हुए इतना और कहा था कि देसराज के होते हुए किस बात की चिन्ता है। वह सब प्रबन्ध बड़ी आसानी से कर देगा।

देसराज जिस तरह का प्रबन्ध कर सकता था, इसका पता बारात जाने के दो दिन पहले भली-भाँति चल गया।

थका-हारा चेतन लाहौर से आया था। आँगन में कड़ाही रख दी गयी थी और शीरीनी आदि तैयार की जा रही थी। माँ ऊपर व्यस्त थी। बड़े भाई दर्ज़ी से अपना सूट सिलवाने बाज़ार गये हुए थे। छोटे भाई नित्यानन्द को नया-नया अखाड़े जाने का शौक लगा था। आखिर पंडित शादीराम के उपदेश व्यर्थ न गये थे और वह देश के पुनर्निर्माण में पूरी तरह संलग्न था। विवाह हो अथवा मृत्यु, उसके लिए अखाड़े जाने के नियम को तोड़ना कठिन था। छुट्टियों के दिन थे। चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र, शादी का अर्थ वह अधिक न समझता था और प्रातः का गया हुआ दस बजे से पहले अखाड़े

से कभी न लौटता था। चेतन ने नीचे ही से माँ को प्रणाम किया और पूछा पिता जी किधर हैं?

पता चला कि देसराज के यहाँ गये हुए हैं।

पूछा, "वहाँ क्यों गये?"

पता चला, "साड़ी पर कुछ सलमे का काम कराना था, इसलिए वहाँ गये हैं।"

देसराज का घर क़िले मुहल्ले में था और क़िले मुहल्ले से तनिक दूर पुरियाँ मुहल्ला है....और वहीं कुन्ती का घर है....और अपने इस विवाह से पहले, वय-सन्धि के अपने उस शर्मीले प्यार की मूर्ति को एक नज़र देखने की आकांक्षा चेतन के मन में प्रबल हो उठी।

नीचे आँगन ही से उसने आवाज़ दी, "मैं पिता जी को देसराज के यहाँ देखने जा रहा हूँ।"

माँ ने बहुतेरा कहा कि अभी तू आया है, कुछ पानी-वानी पी, ऊपर आ....पर चेतन नहीं रुका।

इस बीच में कुन्ती का विवाह हो गया था। अपने विवाह के बाद वह उससे मीलों दूर चली गयी थी; किन्तु चेतन की अपनी शादी के बाद तो शायद वह स्मृति से भी परे चली जायगी। जब उनके सम्बन्ध में सोचना भी दूसरे से धोखा करने के बराबर होगा, तो क्यों न सदैव के लिए बिछुड़ने से पूर्व उसे एक नज़र देख लिया जाय....यही सोच कर, माँ के अनुरोध की उपेक्षा करके, चेतन अपने पिता को देखने के बहाने उधर चल पड़ा था।

सुन्दर तीखा चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, अरुणिमा का जैसे उपहास-सा करते हुए मुस्कराते ओठ, लाल साड़ी, यौवनभार को सम्हाल सकने में जैसे असमर्थ शरीर, लाल चूड़ा जिसकी चूड़ियों की सुनायी न देने वाली झंकार ने उसके मन प्राण को झंकृत कर दिया था—विवाह के बाद यह था कुन्ती का चित्र! उसके मस्तक के घाव का निशान जो द्वितीया के चन्द्र की भाँति माथे पर सुशोभित था, और भी साफ़ हो आया था और वह सब उसके हृदय-

पट पर अमिट रूप से अंकित हो गया था।

उन दिनों वह लाहौर से एक दिन के लिए जालन्धर आया था और किसी अज्ञात प्रेरणा से अनन्त को साथ लिये, उधर जा निकला था। अनन्त ही ने उसे बताया था कि 'उसकी' कुन्ती का विवाह हो गया है—'भोगपुर सीरवाल' के एक मोटे-से पंडित के साथ, जिसने वहीं पुरियाँ मुहल्ले के पास ही, होशियारपुर के अड्डे पर एक प्रेस खोल लिया है।

लेकिन कुन्ती अपनी इस होशियारपुर के अड्डे वाली ससुराल में न थी। अपने मायके ही में कुएँ पर वह अपनी एक सहेली के साथ चर्खी पर पानी भर रही थी। उससे उसकी आँखें चार हुईं। कुन्ती के ओठों की मुस्कान और फैल गयी। चर्खी उसके हाथ से छूट गयी और घर्र-घर्र करती हुई बाल्टी धम से नीचे पानी में जा गिरी। वह स्वयं एक ओर कूद गयी और हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गये।

उस सुख भरे दिन की मधुर-स्मृति में खोया चेतन क़िले मुहल्ले के पास पहुँच गया। उसने देसराज के घर में अपने पिता के विषय में पूछा। मालूम हुआ कि आये थे, पर कर्तार सिंह थानेदार के साथ चले गये हैं और जाते-जाते देसराज को भी ले गये हैं।

यह कर्तार सिंह पं० शादीराम के लँगोटिया यारों में से थे और उनके आने का एक ही अभिप्राय हुआ करता था। बाज़ार शेखाँ और उसमें उस 'तरल आग' का व्यवसाय करने वाले अथवा करने वाली के यहाँ बैठक! तब चेतन ने निर्णय किया था कि वह अपने पिता से अवश्य पूछेगा कि उन्होंने उसे क्या वचन दिया था? उसने तीन पत्रों में लिखा था कि कम-से-कम ब्याह के चार दिन वे कृपा कर मदिरा से दूर रहें, फिर चाहे प्रलय पर्यन्त बाज़ार शेखाँ में पड़े रहें और उसके पिता ने विश्वास दिलाया था कि उन्हें स्वयं इस बात का ध्यान है, बस्ती में शादी है और उन्हें अपनी इज़्ज़त कम प्यारी नहीं। वे शराब को हाथ तक न लगायेंगे।

लेकिन वह पुरियाँ मुहल्ले की ओर बढ़ चला। इस दुखद प्रसंग को उसने अपने मन से हटा दिया और अनायास ही एक दूसरा चित्र वहाँ बनने लगा—वह एक बार फिर जालन्धर आया था। कुन्ती इस बीच में एक बच्चे की माँ बन चुकी थी। उसे खयाल तो न था कि वह उससे मिल सकेगा, किन्तु संयोग-वश उस दिन वह अपने पुरियाँ मुहल्ले वाले मकान की खिड़की ही में बैठी थी। सुबह का समय था। कदाचित स्नान करके सफ़ेद धोती उसने पहन रखी थी, जिसमें से उसके काले, खुले, लम्बे, सुकोमल केश साफ़ दिखायी दे रहे थे। उसकी गोद में उसका बच्चा था, चेतन को देख कर वह मुस्करा दी थी। धोती का छोर उसके सिर से खिसक गया था और चेतन का हृदय धक से रह गया था। वह पहले से कहीं अधिक सुन्दर दिखायी देती थी। उसकी आँखों में वही चमक थी, वही दमक और वही स्नेह....

और बच्चे से कुन्ती ने धीरे से कहा था—ऐसे कि गली से गुज़रता हुआ कि चेतन सुन ले—"गुड्डू जाओ अपने मामा के पास!" और वह हँस दी थी....और इस एक वाक्य से चेतन ने जान लिया कि उस स्नेह में कितनी पवित्रता आ गयी है।

चेतन पुरियाँ मुहल्ले के पास पहुँच गया। गली के मोड़ से उसने खिड़कियों की ओर देखा। बंद थीं। वह आगे बढ़ा। कुछ उदासी-सी चारों ओर छायी हुई दिखाई दी।

दो स्त्रियाँ जल्दी-जल्दी बातें करती हुई उसके पास से गुज़र गयीं।

"शामो बेचारी...."

"यह धन ही ऐसा है, यह सम्पत्ति किसी को न फलेगी।"

और आह भर कर पहली ने कहा, "लेकिन जवानी का रँडापा, इससे तो मौत अच्छी है।"

होशियारपुर के अड्डे की ओर जाने वाली ढालुवीं गली में वह उतर रहा था कि उसे दो और वृद्धाएँ मिलीं।

"अभी उमर ही क्या है ?" एक कह रही थी, "न कुछ खाया न पहना ।" और दूसरी ने दीर्घ-निश्वास छोड़ा ।

चेतन अपने विचारों में मग्न जा रहा था कि गली की नुक्कड़ के पास उसे उसका पुराना मित्र गच्चो* लकड़ी के टाल पर बैठा हुआ मिल गया ।

"बड़ा बुरा हुआ !" जैसे उसने चेतन से शोक प्रकट करते हुए कहा ।

चेतन ने प्रश्न-सूचक-दृष्टि से उसकी ओर देखा ।

"कुन्ती का पति मर गया ।"

"कुन्ती का पति !" चेतन अवाक खड़ा रह गया, "पर वह बीमार तो न था ।"

"नहीं कोई ज़्यादा बीमार नहीं हुआ," गुरबचन ने कहा, "टायफ़ाइड था । बस आठ दिन में ख़त्म हो गया ।"

चेतन वहीं उसके साथ तख़्त पर बैठ गया ।

"साथ तो चलोगे ।"

"हाँ चलूँगा ।"

और पहली बार चेतन को ऐसा लगा जैसे उसके किसी आत्मीय की मृत्यु हो गयी हो । उस मोटे थलथल पिलपिल पंडित के प्रति उसके हृदय में कुछ ऐसा स्नेह उमड़ आया, जैसे वह उसका ही कोई भाई था । मन-ही-मन उसने अपने आप को समझा लिया । कुन्ती पंडित पोल्हो राम की दौहित्री थी और पंडित पोल्हो राम उसके पिता के पुराने परिचित थे । तो फिर अर्थी के साथ उसे जाना ही चाहिए । किन्तु अपने पिता की ओर से मित्रता निभाने के विचार की तह में कहीं अज्ञात रूप से गुड्डू की माँ के दुख में अपनी समवेदना प्रकट करने की भावना भी छिपी हुई थी ।

चेतन एक डेढ़ घंटा वहीं तख़्त पर बैठा रहा । दोपहर होने को आ गयी थी । धूप तेज़ हो चली थी, लेकिन अर्थी का कहीं निशान तक न था । चेतन ने एक-दो बार सोचा भी कि चला जाय, पर इतना समय गँवा कर निराश लौट जाना उसे स्वीकार न हुआ । आख़िर जब दो बजे के लगभग

*गुरबचन

कहीं अर्थी निकली तो वह भी उसके साथ हो लिया।

श्मशान भूमि में उसने पहली बार कुन्ती को देखा। पुरुष वहाँ किसी दानी द्वारा बनवाये गये पक्के बरामदे में खड़े थे और स्त्रियाँ सामने श्मशान के ऊँचे दरवाज़े की छाया में खड़ी रो-पीट रही थीं कि आग देने से पहले शव को लकड़ियों पर रख कर एक वृद्ध ने कहा, "बेटी को ले आओ, मुँह देख जाय।"

तब उसने देखा कि तपती धूप में नंगे पाँव, सफ़ेद धोती पहने, मूक-मर्माहत-सी कुन्ती धीरे-धीरे आगे बढ़ी। इन सात-आठ दिनों ही में वह अत्यन्त दुबली हो गयी थी। हिम ऐसे श्वेत चेहरे पर सिर्फ़ लम्बी नाक ही दिखायी देती थी और आँखें जैसे शून्य में खोयी-खोयी भटक रही थीं। वह न रो रही थी, न अपनी बड़ी बहन शामो की भाँति छाती पीट रही थी। वह चुप थी जैसे उसकी चेतना को भी मृत्यु सूँघ गयी हो।

धीरे-धीरे वह चिता के पास आयी। वृद्ध सज्जन ने शव के मुँह से कपड़ा हटाया और उसके एक नज़र देख लेने के बाद फिर ढँक दिया। कुन्ती ने पीछे हट कर शव के चरणों को छुआ और जैसे आयी थी वैसे ही निस्पन्द और निष्प्राण-सी चली गयी।

चेतन की निगाहें उस समय तक जलती-तपती धरती पर लोटती रहीं जब तक कि वह जा कर श्मशान के दरवाज़े पर खड़ी स्त्रियों में शामिल न हो गयी।

वापसी पर चेतन का मन भारी रहा। कुन्ती की वही म्लान विवर्ण मूर्ति उसके सामने रही। ब्रह्मकुण्ड के रहँट पर आ कर उसने जल्दी-जल्दी स्नान किया और फिर वह उसके गेट पर आ कर इस प्रतीक्षा में खड़ा हो गया कि स्त्रियाँ गुफा से स्नान करके आयें तो वह उनमें उस म्लान मुख को एक नज़र और देख ले। कौन जाने फिर वह मुख उसे कभी देखना नसीब होगा या नहीं। कुन्ती की उस आकृति में कुछ ऐसी बात थी, कुछ ऐसी दबी-घुटी,

सहमी-डरी वेदना, कुछ ऐसी करुणा और अवसाद कि वह प्रयास करने पर भी उसे भूल न पा रहा था।

कुछ देर बाद गुफा की बावली से नहा कर आने वाली स्त्रियाँ ब्रह्मकुण्ड के सामने से गुज़रने लगीं। कुछ अपने जीवन में कई शादियाँ और मौतें देख कर अब स्वयं धीरे-धीरे मृत्यु की ओर सरकने वाली वृद्धाएँ थीं। झुकी कमरें, डोलता-हिलता लहँगा पहने, गीली धोतियाँ हाथों में लिए, गीला दुपट्टा नंगे बदन पर लपेटे, अपने बे-दाँत के पोपले मसूढ़ों को चबाती, मृत्यु के सबन्ध में अपनी अनुभूतियों का विनिमय करती चली आ रही थीं। कुछ अधेड़ स्त्रियाँ भी घाघरे अथवा धोतियाँ पहने, गले में गीली कमीज़ें और सिर पर गीले दुपट्टे ओढ़े इन सब मौतों के मध्य भविष्य की आशाओं के सहारे सीधी चलती, बातें करती, न जाने कौन सी बात पर नाक-भौं चढ़ाती चली आ रही थीं। बीच में दो स्त्रियों के सहारे जैसे हर कदम पर बेहोश होने को होती हुई शामो थी। उसके पीछे, चेतन ने देखा, कुन्ती चुपचाप, नंगे पावों वैसे ही खोयी-खोयी-सी चली आ रही है। गीली धोती उसके शरीर से चिपटी हुई थी और उसके मुख पर वही वेदना थी, आँखों में वही अवसाद !....

एक बार दरवाज़े पर खड़े चेतन की ओर उसने देखा। उसके मुख पर वही शून्यता, वही ठंडक, वही मृत्यु की-सी सफ़ेदी थी, और फिर निमिष मात्र में उसने वह अनुरागहीन, भावनाहीन, चेतनाहीन, दृष्टि भी फेर ली।

किन्तु चेतन के हृदय में दूर तक वह दृष्टि धँसती चली गयी और उसने जैसे सुना वह दृष्टि कह रही थी—बस अब विदा ! अब मैं तुम्हारी ओर देख भी न सकूँगी। अब मैं विधवा हूँ। विधवा, जिसके लिए हँसना दूर मुस्कराना भी पाप है। और उसने सोचा—कहीं वह स्वतंत्र होता और कहीं वह भी स्वतंत्र होती—और जैसे स्वतंत्र देशों के पुरुष स्त्रियाँ....लेकिन फिर उसे खयाल आया कि वह तो शादी करने आया है और उसने चाहा कि सब कुछ छोड़ कर कहीं भाग जाय—कहीं ऐसी दुनिया में जहाँ कोई न हो —न मनुष्य, न समाज और वह पंछी बन जाय—और स्वतंत्र, स्वच्छन्द

आकाश की गहराइयों में उड़ानें भरता फिरे !....

किन्तु न वह भागा, न पंछी बना। शाम होते-होते घर वापस आ गया। थका, ऊबा और चिढ़ा हुआ। उसकी रूह पर जैसे अगणित सदियों से होने वाली मौतों का भार था, अगणित युवतियों के मूक क्रन्दन जैसे उसके कानों में गूँज रहे थे और बेड़ियों में बँधे हुए युवा हृदय जैसे उसकी आँखों के सामने सिसक कर, घुट कर दम तोड़ रहे थे।

●

१८

माँ ने कहा, "बेटा बड़ी देर लगा दी, मिले नहीं ?"

"मिलते कहाँ ?" चेतन ने चिढ़ कर कहा, "देसराज और थानेदार कर्तार सिंह के साथ कहीं बाज़ार शेख़ाँ में बैठे होंगे।"—और वह चुपचाप नीचे बैठक के पास वाले कमरे में जा बैठा।

इस अपने चिर-परिचित कमरे में बैठे-बैठे कई घटनाएँ मूर्तिमान हो कर उसके सामने आयीं। वह कुन्ती से पहली भेंट, वय-सन्धि का वह लजाया-शर्माया प्यार, वह चुपचाप बिना उसकी ओर देखे उसकी खिड़की के नीचे से गुज़र जाना और वह उसका अनायास अपने नन्हें गुड्डू को बता कर उसके साथ भाई का नाता जोड़ लेना।

धीरे-धीरे बाहर सन्ध्या बढ़ आयी और अन्दर कमरे में अँधेरा छाने लगा। मुहल्ले में चिल्ल-पों शुरू हो गयी। कुएँ के गहरे पानी में गागरों, घड़ों और बाल्टियों के डूबने की आवाज़ें आने लगीं। चेतन मन-ही-मन पहचानता रहा—यह घड़ा डूबा है, गहर-गंभीर स्वर से यह गागर, यह बाल्टी। फिर उन आवाज़ों के साथ-साथ लोहे की चर्ख़ियों की चीं-चीं, पानी भरने वालों की 'तू-तू', 'मैं-मैं' और फिर साँझ के साथ ही मुहल्ले में जागने वाले उलाहने, कोसने और गाली-गलौज उसके कानों में गूँजने लगा—

"हाय-हाय मेरा घुटना टूट गया, कहाँ गाड़ा है खूँटा रास्ते में। ईश्वर करे सब कुछ ग़र्क़ हो जाय उनका जो हमें यों तंग करते हैं !"

"क्यों तेरे ग़र्क़ होने वाला कोई नहीं ?—बहू, पोते, पोतियाँ !"

"यह क्यों बाँधी भैंस मेरे दरवाज़े के आगे ? खोल दो लाली इसे !"

"अच्छा बड़ी आयी खोलने वाली, खोल तो....!"

"दीसो की माँ देख तेरे दीसो ने मेरे गुल्लू का कैसा बुरा हाल किया है ?"

"दीसो बेचारा तो आप सिर दर्द से पड़ा है, वह तो घर से निकला ही नहीं।"

"हाय रे लोगों दौड़ियो, मार डाला मुझे इस बहू डायन ने। नीचे कोठरी में रहती हूँ, वहाँ भी यह साँस नहीं लेने देती। मार डाला, मार डाला रे।"

किन्तु इस समस्त कोलाहल में चेतन मौन स्थिर, निस्पन्द दीवार के साथ पीठ लगाये बैठा रहा और फिर मुहल्ले वालों के चित्रों के ऊपर उसके सामने कई श्रान्त-क्लान्त युवतियाँ तपती रेत पर नंगे पाँव चलती रहीं, वह उनकी सहायता को उद्विग्न होता रहा और एक मोटी-मुटल्ली फूहड़-सी लड़की उसका दामन खींचती रही।

छोटा भाई कमरे में लैम्प रख गया। बड़ा भाई भी आ गया। छोटा भाई ताश ले आया। दो-चार बाज़ियाँ भी खेली गयीं और बे-मन सा वह खेल में योग भी देता रहा, उनसे बातें भी करता रहा और हँसता भी रहा।

तभी उसने सुना—हरलाल पंसारी की दुकान पर नशे में चूर उसके पिता ऊँचे स्वर में किसी को 'श्रेष्ठता' पर मुग्ध हो कर, उसे अपने कोश की श्रेष्ठतम गालियाँ प्रदान कर रहे हैं।

ताश का खेल बन्द हो गया।

छोटे भाई ने माँ से जा कर कहा कि पिता जी आ गये हैं। चेतन जैसे रूठ कर दीवार के साथ पीठ लगा कर बैठ गया और बड़े भाई लेट गये।

कोने में मकड़ी के एक नये-नये जाले में एक मक्खी कहीं से आ फँसी

और उस भिनभिनाती मक्खी पर मकड़ी तेज़ी से अपना फंदा कसने लगी।

दूसरे क्षण पंडित शादीराम मुहल्ले में खड़े अपने अभिन्न-हृदय-मित्र लाला रामध्यान पर 'मधुर वचनों' की वर्षा कर रहे थे। उधर से हट कर उन्होंने चेतन के भाई को आवाज़ दी—"रामानन्द !" और साथ ही पूछा कि चेतन आया है या नहीं।

जब चेतन के बड़े भाई ने बढ़ कर बैठक का दरवाज़ा खोला और कहा कि चेतन सुबह का आया हुआ है तो पगड़ी बगल में दबाये लड़खड़ाते हुए पंडित शादीराम अन्दर आये।

पुत्र ने पिता को प्रणाम जैसा कुछ किया और फिर ज़रा तेज़ी से कहा कि वह सुबह से उनकी खोज कर रहा है और उसने लिखा था कि तीन दिन....

पिता ने कड़क कर कहा, "तुम सुनो तो सही ! कर्तार सिंह थानेदार आ गया था, उसके साथ आवश्यक काम से...."

पुत्र ने कहा, "मैं सब जानता हूँ, मैं नहीं सुनता।" और उसने मुँह फेर लिया।

पिता की आँखों में अंगारे जल उठे। शराब के नशे में उन्हें लगा कि उस ज़रा से चिबिल्ले ने उनका अपमान कर दिया है—उनका, जिन्होंने अपने अँग्रेज़ ट्रैफ़िक इन्सपेक्टर तक के मुँह पर थप्पड़ जमा दिया था। और भी कड़क कर उन्होंने कहा, "नहीं सुनता, न सुन, ऐडिटर बना फिरता है....!" और गालियाँ....

"गालियाँ न दीजिए !" पुत्र चारपाई पर खड़ा हो गया।

पिता पगड़ी फेंक कर और भी मन-मन भर की गालियाँ देते हुए उसकी ओर लपके कि छोटे भाई ने उन्हें रोक दिया।

चेतन उछला—उसने केवल यही देखा कि—"आ पहले तेरी ही पहलवानी देखूँ—" यह कहते हुए एक बार चेतन के पिता ने छोटे भाई को चारपाई पर गिरा दिया और एक बार छोटे भाई ने पिता को।

सिर का पसीना गले से बहता हुआ पावों की ओर चला जा रहा था। स्टेशन पर खड़ी किसी गाड़ी के इंजन का धुआँ वातावरण को और भी गर्म, और भी 'गल-घोंटू'* बना रहा था। उनींदी आँखों को लिये, पसीने से तर, सफ़ेद ज़ीन के सूट पहने कुछ बाबू थकी हुई चाल से इधर-उधर घूमते दिखायी देते थे। बाहर अंधकार किसी भयानक प्रेतात्मा की भाँति नन्हीं-नन्हीं रोशनियों का गला दबा रहा था और दरम्याने दर्जे के मुसाफ़िर-खाने में अगणित परवाने, न जाने कब से, गैस के हंडे से टक्करें मार रहे थे और नीचे फ़र्श पर बेगिनती पंख टूटे पड़े थे।

चेतन लकड़ी के खंभे से पीठ लगाये, सूटकेस को पास रक्खे, छोटे-से बिस्तर पर बैठा था।

किसी भयानक स्वप्न की भाँति कुछ देर पहले की घटनाएँ उसके सामने घूम रही थीं—उसके भाइयों और उसके पिता में मल्लयुद्ध हुआ था। उसके छोटे भाई ने पिता पर आक्रमण किया हो, यह बात न थी। उसने तो उन्हें केवल चेतन को पीटने से रोका था और फिर वह किसी प्रकार का प्रहार किये बिना अपने आपको बचाता ही रहा था। लेकिन इतने में ऊपर से कहीं आ गयी माँ। बड़े भाई ने उसे दरवाज़े ही में रोका था। लेकिन पति और पुत्र में मल्लयुद्ध हो और वह खड़ी देखती रहे! डरती, काँपती वह आगे बढ़ी थी। तब—"तेरी ही कोख से ऐसे कपूत पैदा हुए हैं!"—यह कहते हुए और गालियाँ देते हुए एक लात पंडित जी ने अपनी पत्नी के जमा दी। दुर्बल क्षीण काया, हड्डियों का ढाँचा-सा शरीर, वह सीधी मेज़ के कोने में जा लगी और अचेत हो गयी।

उस समय भाई साहब ने नशे में मस्त, झूमते और अपनी छोटी-छोटी आँखों से इस दृश्य का रसास्वादन करते देसराज तथा इकट्ठे होते मुहल्ले वालों को आग्नेय नेत्रों से देखा, फिर अचेत होती माँ को सम्हाल, उसे

---

*गल-घोंटू = गला घोंटने वाला

ऊपर लिटा कर वे लाठी उठा लाये और सबसे पहले देसराज की ओर लपके और फिर तमाशाइयों की ओर। इधर से पलट कर उन्होंने छोटे भाई को पिता के निर्दयी पंजों से बचाया।

"तेरी यह हिम्मत!" पंडित शादीराम ने लाठी उठा ली।

तब चेतन फ़र्श पर अपने पिता के सामने बैठ गया कि जो कुछ कहना है उसे कह लिया जाय! किन्तु पाँव की ठोकर से उसे ठेल कर पंडित जी अपने उस बड़े पुत्र की ओर बढ़े। उनका वार बचा कर बड़े भाई ने उन्हें एक ही दाँव में नीचे रख लिया और छोटे-बड़े दोनों भाइयों ने उन्हें उनकी ही पगड़ी के साथ कस कर चारपाई से बाँध दिया।

कुछ क्षण के लिए स्तब्ध-सा बैठा चेतन यह सब दृश्य देखता रहा। फिर उसने अपना एक छोटा-सा बिस्तर—जो अभी तक बैठक के कोने में पड़ा था—उठाया, सूटकेस हाथ में लिया और स्टेशन की ओर चल दिया। किधर जायगा, कौन-सी गाड़ी पर जायगा, उसने कुछ भी तय नहीं किया। वह चाहता था कि बर्बरता के इस तांडव को और न देखे, उन कँपा देने वाली गालियों को और न सुने और मुहल्ले में घर-घर होने वाली चर्चा से दूर भाग जाय।

पास ही फ़र्श पर सोये हुए किसी व्यक्ति ने शायद किसी मच्छर के काट खाने से अपनी जाँघ पर एक थप्पड़ जमाया और करवट बदल ली।

फिर किसी गाड़ी के आने की घंटी बजी और अपनी उनींदी, अलसायी आँखों के साथ एक बाबू गेट पर आ खड़ा हुआ। प्लैटफ़ार्म के अन्दर से कोई यात्री हाथ में गिलास लिए हुए घबराया हुआ-सा बाहर निकला और कुएँ की ओर चला गया।

चेतन ने बटन खोल कर अपनी छाती का पसीना पोंछा। परसों उसका विवाह है। वह मन-ही-मन हँसा। किन्तु इस हँसी के बावजूद उसकी आँखें आर्द्र हो गयीं।

तभी उसकी कल्पना के सम्मुख दो और गीली आँखें फिर गयीं, जिन्हें उसने आज ही सुबह देखा था। क्या दोनों की गीली आँखें मिल कर सुख

का एक नया संसार न बना सकती थीं !

और उस सुख के संसार का एक दृश्य उसकी आँखों में बस गया— दो भूखी आत्माओं का मिलन, अभावों की पूर्ति, समाज से दूर, जाति-उपजाति के भेदों से दूर....लेकिन गड़गड़ करती हुई गाड़ी प्लैटफ़ार्म पर आ गयी और खोंचेवालों की तन्द्रिल भारी आवाज़ों, यात्रियों की निद्रालस चिल्ल-पों और ताँगेवालों के कर्कश स्वरों ने उसके उस संसार को छिन्न-भिन्न कर दिया। वह उठा, चुपचाप जँगले के पास जा खड़ा हुआ और टकटकी बाँध, सामने के डिब्बे में बैठे यात्रियों को देखने लगा। निमिष मात्र के लिए उसने सोचा—क्यों न वह इसी गाड़ी में चढ़ बैठे। लाहौर को जाने वाली गाड़ी—वह तो साढ़े पाँच बजे आयेगी और अभी सिर्फ़ एक बजा है।

"हलो, चेतन !"

हड़बड़ा कर वह मुड़ा और उसने हाथ भी बढ़ा दिया।

"किन्तु यह तुम किस शिष्टाचार में पड़ गये, गाड़ी पर मुझे लेने आ गये और फिर इस समय ! इस कष्ट की क्या ज़रूरत थी।"

मन से खिन्न होने पर भी चेतन ने अनन्त को देख कर एक ठहाका लगाया।

"कौन कम्बख्त तुम्हें लेने आया है ? मैं तो स्वयं लाहौर जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"लाहौर को जाने वाली गाड़ी की ? पागल हो गये हो, उसमें तो अभी साढ़े पाँच घंटे हैं और फिर विवाह....?"

अनन्त को उस दम घोंटने वाले वातावरण से निकाल कर चेतन सीढ़ियों पर ले आया और वहीं खड़े-खड़े शाम की सारी घटना उसने अपने इस मित्र को सुना दी। अंत में उसने कहा, "मैं पक्का निश्चय कर चुका हूँ कि अब मैं विवाह नहीं करूँगा, चाहे पिता जी आ कर मेरे पाँव भी क्यों न पड़ें।

"जैसे वे तुम्हारे पाँव पड़ने के लिए छटपटा रहे हैं !"

अब ठहाका लगाने की उसकी बारी थी।

कुछ खिन्न हो कर चेतन ने कहा, "मैंने निश्चय कर लिया है कि...."

बात काट कर अनन्त ने कहा, "तुम तो पागल हो !" और उसने ताँगे वाले को आवाज़ दी । ताँगा आ जाने पर चेतन के मना करने पर भी उसने उसका सूटकेस उठा कर उसमें रख दिया ।

"बाबू जी किधर जाना है आपको ?" ताँगे वाले ने पूछा ।

"चौरस्ती अटारी ।" चेतन को बरबस बैठाते हुए अनन्त ने कहा और ताँगा चल पड़ा ।

"लेकिन मैं घर नहीं जाऊँगा !" चेतन ने बैठे-बैठे रुँधे कंठ से कहा ।

"कौन कम्बख्त तुम्हें वहाँ जाने के लिए कह रहा है ।" अनन्त हँसते हुए बोला ।

"लेकिन...."

"लेकिन एक शराबी की बात पर गुस्सा हो कर तुम इतना बड़ा अन्याय करने जा रहे हो । तुम्हें शर्म आनी चाहिए ।"

"मैं यह विवाह बिलकुल नहीं चाहता, कभी नहीं चाहता !" चेतन ने बच्चों की भाँति कहा ।

"तुम्हारे भाई से भी मैंने बात की थी," अनन्त ने कहा, "और स्वयं तुमने मुझे क्या लिखा था ? कायर !"

परास्त हो कर भी चेतन ने कहा, 'वह तो क्षणिक आवेश था । चन्दा को पसन्द तो मैंने कभी नहीं किया ।"

"लेकिन अब इस बकवाद से लाभ ?" अनन्त कुछ क्रोध से बोला, "लड़की के मनोभावों का भी खयाल किया तुमने ? वह आत्महत्या कर सकती है । उसके माता-पिता हैं, नाते-रिश्तेदार हैं । तुम उन सबका इतना बड़ा अपमान कैसे कर सकते हो ?"

एक हाथ में बिस्तर और दूसरे में सूटकेस लिए जब दोनों हरलाल पंसारी की दूकान के सामने से हो कर अनन्त के घर की ओर को मुड़े तो पंडित शादीराम अपने घर में अब भी ऊँचे स्वर से गालियाँ दे रहे थे । उनका गला बैठ गया था, आवाज़ भारी हो गयी थी, किन्तु गालियों में वही तीखापन था और शायद वे अब भी चारपाई से बँधे थे ।

१९

यद्यपि चेतन के पिता ने पहाड़ जैसी कसमें खा कर इस बात की घोषणा की थी कि वे उस कपूत की बारात में शामिल न होंगे और यद्यपि सारी रात अनन्त के समझाते रहने पर भी चेतन यही कहता रहा कि वह शादी न करेगा, किन्तु इस बात का श्रेय अनन्त की कार्यपटुता और पंडित वेणीप्रसाद की विनयशीलता को है कि नियत समय पर चेतन की बारात कल्लोवानी से चल पड़ी। चेतन दूल्हा बना और पंडित शादीराम ने पिता के सारे कर्तव्य पूरे किये।

रात भर पंडित जी चारपाई से बँधे पड़े रहे थे। गालियों की अविरल धारा उनकी वाणी में बहती रही थी, यहाँ तक कि बोलते-बोलते उनका गला सूख गया और बँधे-बँधे उनके बाजू ऐंठ गये और उनका नशा भी लगभग सारा-का-सारा उतर गया था।

तब उन्होंने थक-हार कर, पर और भी भद्दी गालियाँ देते हुए कहा कि उन्हें खोल दिया जाय और वे कुछ न कहेंगे।

उन्हें खोल दिया गया था। वे सीधे देसराज के यहाँ गये। वहाँ से कुछ और पी आये। देसराज को भी उन्होंने साथ लाना चाहा, किन्तु उसने न आने ही में अपनी कुशल समझी।

घर आ कर पंडित जी ने थर्राती हुई आवाज़ में पूछा, "कहाँ है वह सुअर?"

मतलब चेतन से था। बड़े भाई ने दरवाज़े की चौखट पर बैठे-बैठे कहा, "वह चला गया है।"

पंडित जी तनिक चौंके, किन्तु पूर्ववत गालियाँ देते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें इसकी ज़रा भी परवाह नहीं, उनकी ओर से चाहे शादी हो या न हो और चाहे सब मर जायँ।

और फिर उलाहने के स्वर में लेकिन उसी कड़कड़ाती आवाज़ से उन्होंने कहा कि जिस पुत्र को अपने पिता का इतना भी खयाल नहीं और जो नशे

में कही गयी उसकी बात पर इतना गुस्सा हो सकता है, वे उसकी ज़रा भी परवाह नहीं करते। और उस अपने नालायक लड़के को गालियाँ देते हुए उन्होंने घोषित किया कि वे स्वयं सुबह चले जायँगे।

लेकिन जितनी अधिक वे गालियाँ देते थे, जितने अधिक वे कड़कते थे, इतना ही अधिक उनके हृदय की दुर्बलता का पता चलता था।

चेतन पर गालियों के द्वारा अपना-क्रोध उतार कर वे अपने दूसरे पुत्रों की ओर पलटे।

किन्तु भाई साहब शायद उनके हृदय की इस दुर्बलता को भाँप गये थे। घर वालों की परवाह पंडित जी ने कभी न की थी। दुनिया की भी उन्हें कुछ परवाह न थी। लेकिन उन्हें अपनी बात का सदैव ध्यान रहता था। और चेतन के चले जाने पर पंडित वेणीप्रसाद के सामने उन्हें लज्जित होना पड़ेगा, यही डर उनके मन में किसी अज्ञात स्तर के नीचे दबा बैठा था, यद्यपि गालियों के आधिक्य और आवाज़ की कड़क में वे उसे दबा लेना चाहते थे। अतः ज्योंही उन्होंने कहा, "आओ अब जिस-जिस में बल हो मुझसे कुश्ती लड़ देखे।" तो भाई साहब अवसर उपयुक्त जान कर उनके पाँव पड़ गये, माफ़ी माँग ली और कहा कि उन्होंने तो सिर्फ़ उन्हें चेतन को मारने से रोका था और भावावेश में वे रोने लगे।

अपने बड़े भाई का अनुसरण करते हुए छोटे भाई ने भी पहले पाँव पड़ कर माफ़ी माँग ली और फिर वह भी रोने लगा।

पंडित शादीराम स्वभाव से क्रूर थे, कठोर थे, तथा अत्याचारी भी उन्हें कहा जा सकता है, पर इसके साथ ही उनके हृदय में कहीं-न-कहीं उदारता और कोमलता भी यथेष्ट मात्रा में दबी पड़ी थी। इसी कोमलता के कारण वे अपने शत्रु को माफ़ कर देते थे और इसी कोमलता के कारण जब किसी मित्र अथवा निकट सम्बन्धी की बेवफ़ाई उनके मर्मस्थल पर चोट पहुँचाती थी तो वे बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो पड़ते थे।

पुत्रों के इस व्यवहार ने शायद उनके मर्मस्थल पर चोट की थी। उनका गला भर आया और वे भी रोने लगे। माँ तो पहले ही से रो रही थी।

मिट्टी के तेल का लैम्प, जिसने सन्ध्या के बाद बहुत कुछ देखा था, अब भी धीमे प्रकाश से जल रहा था। चिमनी कुछ काली हो गयी थी और उसके धीमे प्रकाश में ये चारों व्यक्ति चार पीड़ित आत्माओं की भाँति दिखायी पड़ते थे।

पिता ने पुत्रों को गले से लगाया। रोते-रोते चेतन को गालियाँ दीं और फिर भारी गले से पत्नी से कहा कि चारपाई बिछा दे।

एक घंटे के बाद सभी थके-हारे सो रहे थे। पंडित जी के ख़र्राटों की आवाज़ भी आने लगी थी। केवल माँ जागती थी और भगवान गजानन से प्रार्थना कर रही थी कि चेतन आ जाय और विवाह का काम कुशलता-पूर्वक समाप्त हो जाय!

सुबह जब अनन्त चेतन के घर गया तो उसने माँ को चुपचाप आँगन में सिर झुकाये माला फेरते पाया।

माँ पूजा कर चुकी तो उसके परामर्श से अनन्त बस्ती से पंडित वेणी-प्रसाद को बुला लाया। दोपहर के लगभग पंडित शादीराम जागे और भारी थके गले से उन्होंने पानी माँगा। माँ ने पानी का गिलास उन्हें देते हुए बताया कि बस्ती से पंडित वेणीप्रसाद आये हैं। तब करवट ले कर भरे गले से पंडित जी ने कह दिया कि रामानन्द उनसे बात कर ले, मैं किसी काम में दखल न दूँगा और कोई मुझे न बुलाये।

चेतन की माँ से उनका यह निश्चय सुन कर अनन्त ऊपर आया। हैट उतार कर उसने पंडित जी को साष्टांग प्रणाम किया और फिर पास बैठ कर उसने चेतन की मूर्खता पर खेद प्रकट किया :

"वह बिलकुल मूर्ख है। दुनिया का उसने अभी कुछ नहीं देखा, दुनियादारी उसे आती नहीं...." उसने कहना शुरू किया :

"वह कमबख्त समझता है कि वह अब स्वतन्त्र है, कमाता है और उसे किसी की परवाह नहीं," पंडित जी ने रात के थके हुए भारी गले से कहा, "लेकिन मैं ही उसकी क्या परवाह करता हूँ। मेरे नाम ही वह कौन-सी

जायदाद लिख देगा ?"

"नहीं-नहीं-नहीं," अनन्त ने कहा, "उसे ऐसा भ्रम नहीं। वह केवल भावुक, स्वाभिमानी, कवि-हृदय युवक है और बस! और कवि," उसने तनिक हँस कर कहा, "आधे पागल होते हैं। आप भला किस तरह बच्चे के साथ बच्चा बन सकते हैं ? उसका क्या है, वह तो मूर्ख है, लेकिन निन्दा तो आप ही की होगी।"

और एक ओर पंडित जी की उदार-हृदयता और दूसरी ओर चेतन और उसके भाइयों की वज्रमूर्खता का उल्लेख कर (जो शादी-ब्याह के अवसर पर अपने पिता के पीने-पिलाने पर आपत्ति करते थे) अनन्त ने बड़ी चतुराई से पंडित जी को राम कर लिया।

उधर पंडित वेणीप्रसाद ने चेतन को समझाया और वही चेतन जो अनन्त के सारी रात समझाते रहने पर भी तुला हुआ था कि विवाह न करेगा, इस बीमार और लगभग पंगु वृद्ध के सम्मुख एक शब्द भी न कह सका।

पंडित वेणीप्रसाद ने अपने हिलते हुए अंगों को कठिनाई से सम्हालते हुए कहा था, "बेटा, लड़कपन न करो! इस बूढ़ी देह का ख़याल करो, इस बूढ़े की इज़्ज़त का ख़याल करो और उस निरीह बालिका का ख़याल करो। पिता की बातों पर कैसा गुस्सा ? उनकी तो आदत ही ऐसी है। इस क्रोध से उनकी आदत तो हटेगी नहीं, दो-चार आदमियों की जान भले ही चली जाय।"

और चेतन ने कहा था कि वह स्वयं यही सब सोच रहा है और जैसा वे उससे कहेंगे, वह करेगा। उसकी केवल एक प्रार्थना है कि ब्याह की रस्म जितनी जल्दी भी हो पूरी कर दी जाय और शेष सब व्यर्थ के रिवाज जहाँ तक हो सके हटा दिये जायें और भोज भी दो-तीन ही दिये जायें।

पंडित वेणीप्रसाद ने कहा, "बेटा जैसा तू कहता है वैसा ही होगा। मैं तो स्वयं आर्य-समाजी प्रणाली का समर्थक हूँ। इन व्यर्थ की रस्मों में क्या रखा है ?"

इस प्रकार अपनी क़समों के बावजूद पुत्र और पिता दोनों बारात में शामिल हुए। हँसे भी, बधाइयाँ भी उन्होंने स्वीकार कीं और रस्में भी सब अदा कीं। फिर बाजे भी बजे, गाने भी गाये गये और शोर भी खूब हुआ। यह और बात है कि इस समस्त हर्षोल्लास, गाने-बजाने और शोर-शराबे के अन्तर में व्यथा भी कहीं दबी बैठी रही।

माफ़ कर देने पर भी पिता ने पुत्र को नहीं बुलाया और पुत्र ने एक रस्मी, ठंडे प्रणाम के अतिरिक्त और कोई बात नहीं की। पंडित जी ने पिता के अपने अधिकारों का प्रदर्शन करने के लिए और भी पी—देसराज और पंडित बनारसीदास को बैठा कर पी—और चलते समय अपनी पत्नी को एक-दो थप्पड़ भी रसीद किये। माँ की आँखें अन्त तक आँसुओं से भरी रहीं। चेतन का रक्त खौल-खौल उठता रहा और उसके जी में कई बार आया कि अनन्त के दबाव से छूट कर एकदम भाग जाय। जहाँ उसके पिता उसे चिढ़ा कर, उन्हीं कमीनों के साथ शराब पी कर अपने अधिकारों का डंका पीट रहे हैं, वहाँ दो बिरादरियों के बीच उनकी नाक काट कर वह पुत्र के अधिकारों को भली-भाँति जता दे।

लेकिन जब बारात बस्ती पहुँची और धर्मशाला में उतरने, सेहरा बाँधने और दूसरी रस्मों के बीच चेतन बराबर इन बातों पर विचार करता हुआ अन्त में साढ़े आठ बजे के लगभग विवाह-मंडप में आसन पर जा बैठा तो सहसा उसके मन से समस्त बातें, सारी चिन्ताएँ, सब क्लेश अनायास दूर हो गये। उसका मन हल्का हो गया। मंडप के तनिक परे, सामने बरामदे में बैठी हुई लड़कियों में, उसकी निगाहें एक किशोरी से चार हुईं जिसे वह पहचानता था।

यह किशोरी वही थी जिसे बस्ती के अड्डे पर देख कर वह चौंका था और फिर एक बार अपनी पत्नी के पास जिसे बैठे हुए देख कर वह कुछ बौखला-सा गया था।

चेतन को लगा जैसे वह एक महान सागर में हल्की-सी तंरग बन कर बहा जा रहा है। अभी कुछ देर पहले जब आँगन के दरवाज़े में प्रवेश करते समय उसकी पत्नी ने उसके गले में हार डाला था तो उसके मोटे से शरीर और सीधी-सादी-सी आकृति को देख कर वह अत्यन्त निराश हुआ था। फिर आँगन में आने पर जब उसे पता चला कि महा-विद्यालय से जो लड़कियाँ इस 'सामाजिक रीति' से होने वाले विवाह की शोभा को अपने कल-कंठों से बढ़ाने के लिए आने वाली थीं, वे नहीं आयीं तो उसकी निराशा पर विषाद की एक गहरी परत चढ़ गयी थी। लेकिन उस सुन्दर मनोमुग्धकारी छवि को देख कर उसकी वह निराशा, वह अवसाद पलक झपकते में उड़ गया। तभी पुरोहित ने मन्त्र पढ़ने आरम्भ किये और स्त्रियाँ गा उठीं :

'सजन घर आये री'



२० दूसरे दिन जब बारात खाना खाने में व्यस्त थी, चेतन की चंचल, उद्विग्न दृष्टि रह-रह कर छत पर जाती थी और कल्पना-ही-कल्पना में वह ब्याह के गाने सुनता था—मीठे मद-भरे गाने—जिनकी तानों में किसी परिचित कल-कंठ से निकली हुई तन और मन को गर्मा देने वाली मादक तान भी थी। पर छत की सूनी मुँडेरों पर गानेवालियाँ तो दूर, एक कौवा तक भी न था। हाँ, किसी पास के वृक्ष पर बैठी हुई एक चील अपनी कर्कश ध्वनि से बार-बार चिल्ला उठती थी। वहाँ से हट कर चेतन की दृष्टि सामने बरामदे में जाती, जहाँ रात को भाँवरों के समय स्त्रियों के गाने गूँजे थे। पर वहाँ भी उनकी रसीली तानों के स्थान पर बस्ती के एक-मात्र सुधारक मास्टर नन्दलाल का ग्रामोफ़ोन अपनी भोंडी आवाज़ में चिल्ला रहा था :

हे प्रभो, अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए !
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए !!

दूसरी कुप्रथाओं के साथ-साथ विवाह-शादी के अवसर पर स्त्रियों का छतों पर चढ़ कर गंदे गीत गाना भी सुधारक मास्टर नन्दलाल को नापसन्द था। उनके विचार में ऐसे अवसर सुधार-कार्य ही के लिए उपयुक्त थे।

'क्या सुन्दर रिकार्ड ब्याह के अवसर पर लगाया है!' चेतन ने रिकार्ड के समाप्त होने पर मन-ही-मन कहा।

पर इसमें दोष किसका था? उसी ने तो पंडित वेणीप्रसाद से कहा था कि कोई रस्म अदा न की जाय। सुधार सम्बन्धी अपनी स्कीम को इस घर में पूर्ण-रूप से फलीभूत होते देख, इधर-उधर बड़े चाव और व्यस्तता से फिरते हुए मास्टर नन्दलाल की ओर देख कर चेतन मन-ही-मन हँसा। फिर एक ठंडी साँस उसके हृदय की गहराइयों को चीर कर निकल गयी। बुभुक्षित, विपन्न और साधन-हीन हिन्दुस्तान के लिए शादी-विवाह तथा तीज-त्यौहार की चन्द घड़ियाँ ही तो थीं जिनमें लोग कुछ हँस-हँसा लेते थे। वर-वधू की अपेक्षा विवाह के उल्लास का अधिक भाग वर के मित्रों तथा वधू की सखियों के हिस्से में आता था। महीना-महीना पहले नये वस्त्र सिलवाये जाते, नये जूते बनवाये जाते और ब्याह वाले घरों में ढोलक रख दी जाती। बारातियों का स्वागत मीठे गानों से होता; वर-वधू को 'कंगना' मीठे गानों में खेलाया जाता; मादक मीठे गानों में भाँवरों की रस्म सम्पन्न होती और मीठे गानों का मधुर रस पीती हुई बारात खाना खाती। वधू की सहेलियाँ और बहनें सिठनियों में बड़ी भेद-भरी बातें कह जातीं। चेतन का हृदय उन मीठी सिठनियों को सुनने के लिए आतुर हो उठा, किन्तु उधर बरामदे में ग्रामोफ़ोन पूर्ववत् गा रहा था :

हे प्रभो अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए !

सुधार सम्बन्धी कोई दूसरा रिकार्ड न होने से मास्टर नन्दलाल ने पुनः उसी को लगा दिया था।

चेतन की आँखों के सामने आततायी सुधारक के हाथों विवाह की देवी का अलंकार-विहीन चित्र घूम गया। उसकी निरीह चमक-दमक इस कट्टर अत्याचारी ने छीन ली है; उसके कल-कंठ से निकलने वाली मादक तानों

का इसने गला घोंट दिया है और उसके समस्त अलंकारों से उसे वंचित कर दिया है ! चेतन की आँखें फिर उसी पुराने ज़माने की भरी-पूरी रमणी को देखने के लिए आतुर हो उठीं।

कम्पनी बाग में एक अत्यन्त पुराना कुंज था, जिस पर इश्कपेचा की बेलें चढ़ी हुई थीं। कुंज के बाहर एक बड़ा सीधा-सादा विश्राम-स्थल बना हुआ था। वास्तव में यह स्थल एक अत्यन्त पुरानी, सदैव हरी रहने वाली बेल के कारण बन गया था। यह बेल धीरे-धीरे बढ़ कर आस-पास के कई पेड़ों पर छा गयी थी। कहीं-कहीं यह इतनी मोटी थी कि बचपन में वह अपने संगियों के साथ उस पर बैठ कर झूला झूला करता था। इस स्थल के पास से गुज़रने पर ही मन की समस्त थकन दूर हो जाती थी। किन्तु सुधार....! उस बेल के नीचे इकट्ठी होने वाली गंदगी को, सूखे सड़े पत्तों के ढेरों को, कूड़े-कचरे को साफ़ करके उस स्थान को और भी स्वच्छ, सुरम्य, शीतल और मन का ताप हरनेवाला बनाने की अपेक्षा उस बेल ही को काट दिया गया। अब वहाँ घास के एक-दो प्लाट हैं जिनमें छोटे-छोटे पौधे लगे रहते हैं, जो तीन-चार महीनों से अधिक जीवित नहीं रहते और ऐसे फूल लाते हैं जिनमें न रंग होता है, न रस, न गंध !

वह सारे का सारा दृश्य चेतन के सामने घूम गया।

"जीजा जी खाना खाइए !" एक पतले-दुबले-से लम्बी नाक वाले लड़के ने उससे कहा। चेतन ने सहसा चौंक कर थाली की ओर हाथ बढ़ाया।

बारात तब तक खाना खा चुकी थी। पुराने ढंग की शादी होती तो कोई चंचल चपल बालक अथवा बालिका उसका कोट दरी से सी देती अथवा उसका जूता छिपा देती और इस सरल-से मज़ाक और वर की कृत्रिम परेशानी पर खूब ठहाके लगते, खूब फबतियाँ उड़तीं। चेतन की बड़ी इच्छा थी कि कोई बालक अथवा बालिका उसका भी कोट सी दे, उसका भी जूता छिपा दे, पर उसने खाना खा लिया, हाथ पोंछ लिये।

बारात के आधे लोग आँगन के बाहर चले गये किन्तु उसके साथ किसी ने मज़ाक नहीं किया। वह अन्यमनस्कता से उठा और जीवन में पहली बार खरीदा हुआ पेटेंट लेदर. का शू पहनने लगा। उसी समय अपनी लाठियाँ लिये हुए काँपते-झूलते पंडित वेणीप्रसाद आये और हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा—"आप अभी कुछ देर बैठिए।"

चेतन चुपचाप दरी पर बैठ गया। तभी बरामदे का चिक उठा कर वह लड़की जैसे हर्ष और उल्लास से नाचती-सी निकली। उसके पीछे उसकी सहेलियाँ थीं—"जीजा जी छंद * सुनाओ!" जीजा जी छंद सुनाओ!" कहती हुई धम से उसके पास बैठी गयी। शेष सहेलियों ने झुरमुट बना लिया।

चेतन का मुख कानों तक लाल हो गया। इस बीच में दो-चार बड़ी-बूढ़ियाँ भी आ गयीं और एक ने एक दूसरी स्त्री की ओर संकेत करते हुए चेतन से कहा, "यह तुम्हारी सास है।"

चेतन को अपना उमड़ता हुआ उल्लास सिकुड़ता हुआ-सा लगा—काला झुर्रियों वाला चेहरा, अन्दर को धँसे हुए कल्ले, बेढंगे दाँत और एक ओर को दबी हुई आँख। "इस माँ की लड़की कैसे 'रूपवती' न होती?" वह व्यंग से मुस्कराया, 'और फिर आप घूँघट निकाले हुए हैं, उसने मन-ही-मन हँस कर कहा, लेकिन तभी उसे खयाल आया कि वह तो उसकी सास है और माँ के बराबर है और उसने उसे एक खिसियाना-सा प्रणाम किया। इसके बाद कुटुम्ब की अन्य स्त्रियों और वधू की सहेलियों से उसका परिचय कराया गया और उसे पता चला कि वह सुन्दर लड़की उसकी साली है—नाम है नीला—पंडित वेणीप्रसाद की तीन लड़कियों में से मँझली और चेतन ने एक बार दबी आँखों से उसकी ओर देख कर मन-ही-मन में एक

---

*छन्द एक प्रकार का पंजाबी दोहा होता है जिसकी पहली पंक्ति का कोई अर्थ नहीं होता, वह केवल तुक मिलाने के लिए होती है। दूसरी पंक्ति में सास-ससुर और ससुराल के अन्य रिश्तेदारों की प्रशंसा होती है। यह छन्द विवाह में लड़कियाँ वर के मुँह से सुनती हैं, ऐसा रिवाज है। पुराने समय में शायद इसका उद्देश्य यह मालूम करना था कि वर गूँगा तो नहीं है।

लम्बी साँस भर ली। उसे यह बात पहले क्यों न मालूम हुई ?

"छन्द सुनाइए जीजा जी छन्द !" और लड़कियों ने उसका कोट खींचा। एक निमिष के लिए चेतन की आँखें नीला से चार हुईं। उसकी आँखों में एक चतुर स्निग्ध मुस्कान थी जिसका प्रतिबिम्ब उसके ओठों पर हल्की-सी मुस्कान के रूप में फैलने को आतुर था।

चेतन बैठ गया।

लेकिन उसी समय पंडित वेणीप्रसाद अपने हिलते हुए शरीर के साथ आये और हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा, "अब महाराज उठिए !"

चेतन अनिच्छापूर्वक उठने लगा था कि नीला ने उसके कोट का दामन खींचा। चेतन फिर बैठ गया।

पंडित जी ने फिर हाथ जोड़े। वह फिर उठने लगा। नीला ने दामन खींचा, वह फिर बैठ गया।

तब हँसते हुए चेतन ने कहा, "यदि आप कह दें तो यों ही दस-पन्द्रह बैठक लगा डालूँ ?"

और नीला ने तनिक रोष भरे स्वर में कहा, "पिता जी आप बैठने भी दीजिए जीजा जी को, अभी एक भी छन्द नहीं सुना हमने।"

"अच्छा-अच्छा बेटी !....आप बैठिए अभी महाराज !" और वृद्ध सरल-सी हँसी ओठों पर लिए हुए जैसे आये थे वैसे ही चले गये।

चेतन का हृदय धक-धक करने लगा। तभी उसकी दृष्टि सामने बरामदे के एक कोने में गयी। चिक उठा दी गयी थी। विवाह के लाल जोड़े में आवृत्त उसकी दुलहिन ज़रा सा घँघट निकाले बैठी थी और विवाह के उल्लास में उसका गेहुँआ रंग दमक रहा था। चेतन के सामने उसकी सास की सूरत आ गयी और उसने निगाहें हटा लीं।

नीला ने हँस कर कहा, "छन्द सुनाइए जीजा जी ! उधर क्या देख रहे हैं। आप ही के घर जायगी।"

कुछ अप्रतिभ-सा हो, चेतन ने तनिक सोच कर एक छन्द सुनाया।

"छन्द परागे आइए जाइए छन्द परागे तीला
छन्द गया मैं भुल्ल सभे, जद सामने आयी नीला"*

नीला का मुख कानों तक लाल हो गया। फिर वह एक बार ही सखियों के साथ ठहाका मार कर हँस दी।

चेतन इस ठहाके में बह गया और इसके साथ ही बह गया वह थोड़ा-बहुत गाम्भीर्य जो गत दो-तीन दिनों से उसके अन्दर इकठा हो गया था और जिसका प्रतिबिम्ब उसकी आकृति पर विषाद के हल्के-से बादल ले आया था।

एक युवती जैसे उल्लास की ताल पर नाचती-सी आयी। उसकी कलाइयों का लाल चूड़ा साक्षी था कि उसका विवाह हाल ही में हुआ है। टेसू के रंग की लाल साड़ी उसने पहन रखी थी और वह रंग उसके सुन्दर कपोलों को लाल भी बना रहा था। चेतन की चंचलता को निशाना बना कर उसने तीर छोड़ा :

"पुत आया नी नटनी दा!"†

चेतन खिसियाना-सा हो गया। किन्तु उसी क्षण इस सिठनी की दूसरी पंक्ति कहने का अवसर उस युवती को दिये बिना, उसकी नकल उतारते हुए, उसने कुछ इस तरह मटक कर यही शब्द दुहराये कि वह युवती शर्मा कर उल्टे पाँव वापस भाग गयी।

उसी समय पंडित वेणीप्रसाद एक बार फिर हाथ जोड़े हुए चेतन को उठने के लिए कहने के अभिप्राय से आये, किन्तु अपने इस असहाय पिता पर नीला को कुछ ऐसा अधिकार प्राप्त था कि उसने चेतन को वहीं बैठाये रखा। वास्तव में मास्टर नन्दलाल तथा उनके आर्य-समाजी मित्र विवाह-शादी की इस हँसी-खुशी के भी विरुद्ध थे। वे न चाहते थे कि वधू की

---

*पहली पंक्ति का कोई अर्थ नहीं। दूसरी का अर्थ यह है कि मैं उस समय सभी छन्द भूल गया, जब मेरे सामने नीला आयी।

† नटनी का पुत्र आया है। इसकी दूसरी पंक्ति है—नटनी कोठे टप्पनी दा—अर्थात् उस नटनी (चंचल नारी) का जो छतें कूदती है अर्थात् छतें कूद कर अपने प्रेमियों से मिलने जाती है!

सब-की-सब सहेलियाँ एकदम वर से सालियों का नाता स्थापित करके हर तरह के हँसी मज़ाक की छुट्टी पा लें। इसीलिए वे पंडित वेणीप्रसाद को अन्दर भेजते थे, किन्तु अपनी लड़की नीला से उन वृद्ध को कुछ ऐसा प्रेम था कि वे उसका कहा न टालते।

इस बीच में चेतन को अपनी पत्नी की सब सुन्दर और असुन्दर सहेलियों के नाम याद हो गये। सोहनी तो सचमुच सोहनी[1] थी, जिसके सम्बन्ध में उसे मालूम हुआ कि वही उसकी मँगेतर होने वाली थी, किन्तु पंडित वेणी-प्रसाद पहले पहुँच गये थे। केसरी, जिसकी आँखों में एक अज्ञात-सी आकांक्षा दबी रहती थी और जिसने चेतन की दिलचस्प बातों, उसकी खुली हँसी और चंचलता को देख कर एक लम्बी साँस को बरबस दबा कर केवल इतना कहा था—"जीजा जी, तुसी ताँ तिन्ना लोकाँ तों न्यारे ओ।"[2] और लक्ष्मी जो अपने छोटे भाई को गोद में लिये हुए थी, जिसे लक्ष्मी की आयु को देखते हुए उसने उसका बच्चा समझा था और जो अपनी इस बड़ी आयु के बावजूद अविवाहित थी। फिर पारो, सरला, रानी, शीला, कर्तारी....

चेतन का समय खूब बीता, और जब वहाँ से छुट्टी पा कर वह डेरे वापस जा रहा था तो उसकी कल्पना के सम्मुख इन सबकी आकृतियों के ऊपर से नीला की सुन्दर मूर्ति जैसे उभर-उभर कर झाँकती रही। उसकी वह सुनहरी स्मिति, मादक दृष्टि और मदिर स्वर लहरी....नीला....नीला !



२१

लेकिन गौने से भी पहले, अपने विवाह के प्रथम दिवस ही चेतन को मालूम हो गया कि चन्दा—वह उसकी मोटी ठिगनी-सी पत्नी—अपनी उस साधारण दिखायी देने वाली सूरत-शक्ल के अन्दर एक

१—सुन्दर

२—जीजा जी, आप तो तीन लोक से न्यारे हैं।

अत्यन्त कोमल और भावुक हृदय रखती है।

दूसरे दिन नव-परिणीता वधू के साथ जब वह ताँगे में बैठ कर बाजे के पीछे-पीछे बस्ती गज़ाँ से चला था तो उसके मन-मस्तिष्क पर नीला का चित्र अंकित हो चुका था और उसके हृदय में कहीं ज्वाला-सी धधक रही थी। वह सोच रहा था, क्यों नीला से उसका विवाह न हुआ? उसे पहले ही क्यों न पता चल गया कि वही लड़की, जिसे बस्ती के अड्डे पर जाते देख कर, उसके हृदय में, अँधेरी रात के दूरस्थ प्रदीप की भाँति एक ज्योति-किरण जगमगा उठी थी, उसकी भावी पत्नी के ताऊ की मँझली लड़की है। यदि वह मुल्कराज से उससे सम्बन्ध में पूछ लेता? यदि उसे बाद में भी किसी तरह पता चल जाता? यदि....तो जीवन के दुख भरे सागर में सुख की उद्दाम तरंगें उठ आतीं। उनके सहारे वह कहाँ-कहाँ न पहुँच जाता।

नारी ही गति है और नारी ही अगति। जीवन भी यही है और मृत्यु भी यही—केवल संगिनी के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने का प्रश्न है। इन्हीं दो सीमाओं में पुरुष के जीवन का क्रम चलता रहता है। उपयुक्त संगिनी मिल गयी तो उसके जीवन का सागर आनन्द से हिलोर उठता है और यदि अनुपयुक्त तो चेतन की कल्पना के सम्मुख क्षण भर के लिए हिलोरें लेता हुआ सागर आया और फिर उसके स्थान पर क्षण प्रति क्षण सूखता एक पोखर—गँदला, गति-हीन, तरंग-रहित—और उसने अपने साथ ताँगे में बैठी हुई अपनी नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा और अपने जीवन का सागर उसे जैसे उत्साह-हीन-सा हो कर उतरता हुआ दिखायी दिया और निराशातिरेक से उसका गला भर-सा आया और सचमुच अपने घर की देहरी पार करके कुछ एक रस्मों को जल्द-जल्द पूरा करने के बाद, वह अन्दर कोठरी में जा कर रोने लगा।

उसकी माँ—दुःखों कष्टों की मारी उसकी माँ—इस नयी विपत्ति को देख कर पहले तो घबरा गयी, किन्तु विपत्तियों का पहला आक्रमण जहाँ मानव के पाँव ज्वार के पहले रेले की भाँति डगमगा देता है, वहाँ उनका आधिक्य उसे स्थिर भी कर देता है और माँ विपत्तियों के निरन्तर प्रहारों के

कारण तूफ़ान के मध्य भी स्थिर खड़े हो कर सोचने की शक्ति पा गयी थी।

सोच-सोच कर वह पहले बहू के पास स्वयं गयी और बहू का घूँघट हटा कर उसने क्षण भर के लिए निर्निमेष उसकी आँखों में देखा। अनुभव किया कि उनमें अपार कोमलता और अपार सहृदयता है। तब क्षणिक आवेश के वश उसने उसे अपने आलिंगन में भींच लिया और आर्द्र कंठ से बोली :

"वह कुछ बेचैन-सा है मेरी बेटी। फूल-फूल पर बैठने वाला, आकाश के विस्तार में स्वच्छन्द तरारे भरने वाला पक्षी। उसे बाँधना है। वह भाग जाना चाहता है सब बन्धन तोड़ कर! लेकिन बेटी तू ज़रा सतर्क रहेगी तो वह भाग न पायेगा। मैं उसे अभी भेजूँगी। बहुत संकोच से काम न लेना समझी....तू छोटी नहीं, सयानी है, व्यर्थ की लज्जा न करना।"

और वह चली आयी थी। फिर बहाने से महरी को बस्ती भेज कर उसने चेतन को अन्दर भेजा था।

चेतन का मन खिन्न था। वह अपनी इस बहू से साक्षात् भी न करना चाहता था, किन्तु माँ के ज़ोर देने पर वह अनिच्छा पूर्वक अन्दर चला गया।

कमरे में जा कर उसने अत्यन्त हास्यास्पद हरकतें कीं। पहले तो उसने माँ से कहा कि उसके लिए खाना वहीं भेज दिया जाय। फिर जब बहू भी माँ के साथ बाहर उठ कर जाने लगी तो उसने तनिक कड़े स्वर में कहा "बैठो!" और उसके बैठने पर उसने उठ कर कुण्डी लगा ली (और भूल गया कि उसने खाना वहाँ लाने की आदेश दिया है।) फिर उसने पत्नी को आदेश दिया कि घूँघट उठा दे।

चन्दा ने धीरे से घूँघट उठा दिया था और एक बार लज्जा-भार से दबी बड़ी-बड़ी अलसायी-सी पलकों को उठा कर उसकी ओर देखा था।

इस एक दृष्टि से ही चेतन के स्वर की कर्कशता कोमलता में बदल गयी थी। वह गंभीर, गहरी, सहृदय, तरल दृष्टि!....चेतन जैसे शांति के सागर में डूबा जा रहा था। उसने कुछ नर्मी से पूछा, "तुम हिन्दी पढ़ सकती हो या नहीं?" चन्दा ने धीरे से कहा, "जी हाँ!" और इस शब्द

की मिठास चेतन की श्रवण-शक्ति पर छा कर रह गई। तभी अचानक उसे लगा कि बस्ती के अड्डे पर पहले-पहल, उसने जिस चन्दा को देखा था, उसमें और आज की नवविवाहित चन्दा में महान् अंतर है। उसका रंग निखर आया है, अंग अधिक सुगठित हो गये हैं और आँखें पहले से कहीं अधिक फैल गयी हैं। माँ ने उबटन मल कर शायद उसका रंग चमका दिया था या जवानी ने अपनी भट्टी में तपा कर उस गेहुएँ रंग को कुन्दन बना दिया था! और फिर यौवन की गरिमा इस रंग में अकथनीय मादकता ले आयी थी।

"तुम तो पहले से सुन्दर हो गयी हो चन्दी!"

वह मुस्करायी और फिर तनिक हँसी—मीठी मुस्कान और मादक हँसी! और चेतन ने देखा उन लाल-लाल ओठों के नीचे दूध-से सफ़ेद, साथ-साथ जुड़े हुए मोतियों की बतीसी है जो उस हँसी को एक अनोखी चमक प्रदान कर रही है।

और वह मुग्ध-सा, साधारण होते हुए भी असाधारण-सी अपनी इस पत्नी की ओर देखने लगा। फिर वह उठ कर एक पुस्तक ले आया।

चन्दा ने उसे फ़र-फ़र पढ़ डाला।

तब किताब को परे फेंक कर चेतन ने उसे निकट खींच लिया और भावावेश में बोला, "मैं तो तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय करने जा रहा था चन्दी।"

चन्दा ने एक बार अपनी अर्द्ध-निमीलित, अलस, लजीली आँखों से उसकी ओर देखा और चेतन को लगा कि जैसे मीलों चल कर वह किसी भरे-पुरे सरोवर के किनारे घने वृक्षों की छाया में आ बैठा है।

●

२२

किन्तु नीला आग थी।

दूसरे दिन वह गौने के लिए बस्ती गया। सावन का आरम्भ था। आकाश पर गहरी काली घटा छायी हुई थी। ठंडी हवा हिलोरें ले रही थी।

बाहर पड़ोस के एक घर में चौखट से झूला डाल कर पेंग बढ़ाती हुई लड़कियाँ उस चौखट ही को नीम समझ कर गा रही थीं।

इक झूला डाला मैंने नीम की डाल में,
नीम की डाल में,
नन्हीं-नन्हीं बूँदियाँ रे सावन का मोरा झूलना !
सावन का मोरा झूलना !

अपनी ससुराल में, अथवा यों कहिए कि अपने ससुर के बड़े भाई के यहाँ (क्योंकि उसके ससुर का अपना कोई घर न था) ऊपर चेतन चौबारे में निवाड़ के पलंग पर लेटा हुआ था। वह दरवाज़े से चुपचाप आकाश में उमड़ती हुई घटाओं को देख रहा था और गली की लड़कियों का गाना अनवरत उसके कानों में मधुरस ऊँडेल रहा था।

पास ही उसकी पत्नी की सहेली केसरी अपनी आकांक्षा भरी आँखें लिये हुए बैठी कुछ बातें कर रही थी। चेतन अन्यमनस्क-सा उसकी बातों का उत्तर देता जा रहा था और उसके उत्तर को सुन कर हँसती हुई वह हर दस मिनट बाद कहती थी "जीजा जी, आप तो तीन लोक से न्यारे हैं।"

चेतन के कानों को, लड़कियों के गाने की भाँति केसरी की बातों का स्वर भी किसी स्वप्न-संसार के स्वर ही सा लग रहा था। उसकी आँखों में कुछ हल्की-सी तन्द्रा छायी जा रही थी। विवाह के दिनों की समस्त थकन, सब रतजगे जैसे अपने सारे भार से उसकी आँखों को बन्द किये देते थे। वहीं लेटा वह अपनी अर्ध-निमीलित, तन्द्रालस आँखों से छत पर नीला का चित्र बना रहा था और वह चाहता था कि केसरी चली जाय। किन्तु वह अपने इन जीजा जी को देखने में और उनकी बातें सुनने में कुछ ऐसा आनन्द पा रही थी कि उठने ही में न आती थी।

हार कर चेतन ने अपनी पत्नी का नाम ले कर आवाज़ दी।

नीचे आँगन में एक अट्टहास गूँज उठा जिसमें से नीला का गूँजता, झनझनाता स्वर उसने दूसरों से अलग कर लिया। उसकी पत्नी ने उत्तर नहीं दिया, किन्तु छत से परे सीढ़ियों पर उसे नीला चढ़ती दिखायी दी। चेतन

को लगा जैसे वह चढ़ती नहीं, अदृश्य हल्के परों के सहारे हवा में फुदक रही है। वह जल्दी से उठ कर उसे छत पर ही मिला।

"आपको लाज नहीं आती?" नीला की मुस्कराती हुई आँखें नाच रही थीं और वह निर्निमेष उनकी ओर देख रहा था। "बहन का नाम ले कर आप पुकार रहे हैं। वह लाज में मरी जा रही है।"

चेतन ने जोर से ठहाका लगाया।

दो स्त्रियाँ दूर एक मकान की छत पर धूप में सूखने के लिए डाले हुए कपड़े वर्षा के भय से समेट रही थीं। वे पलट कर उधर देखने लगीं।

चेतन फिर हँसा और उसने बहुत धीरे से कहा, "तुम किसी बहाने अपनी बहन की इस तीन लोक से न्यारी सहेली को ले जाओ।"

"तीन लोक...."

"यह केसरी मुझे कहती है कि मैं तीन लोक से न्यारा हूँ। वास्तव में वह तीन लोक से न्यारी है। उसकी बातें बड़ी अजीब हैं, मुझे नींद-सी लाये देती हैं और तुम तो इतनी व्यस्त हो कि...."

नीला एक बल खाती उसके पास से गुज़र गयी। वह जाने क्या कह कर केसरी को ले गयी और चेतन वहीं खड़ा उन सीढ़ियों को देखता रहा जहाँ वह अभी-अभी ग़ायब हो गयी थी और फिर वह चुपचाप चारपाई पर जा लेटा।

वहीं लेटे-लेटे उसके सामने कल दिन की समस्त घटनाएँ घूम गयीं और उसके मन की आग, जो नीला को देखते ही भड़क उठी थी, चन्दा का ध्यान आने से ठंडी पड़ने लगी।

उसने अपने आप को कोसा। वह अब विवाहित है। किसी के प्रति विश्वास का बोझ उसके कन्धों पर आ रहा है और यही सोचते-सोचते उसे ऊँघ आ गयी। उसने देखा कि वह एक सीमाहीन मरुस्थल में खड़ा है। दूर-दूर तक झाड़ियाँ हैं और पलाश तथा बबूल के सूखे टेढ़े-मेढ़े वृक्ष। तनिक और ध्यानपूर्वक अपने इर्द-गिर्द देखने से उसे समझ आ जाती है कि

वह तो बहावल नगर के उसी मरुस्थल में खड़ा है जो उसने गाड़ी से देखा था। तब उसे आभास होता है कि वह किसी की खोज में किसी के पीछे भागता हुआ यहाँ आया है। एक झाड़ी से एक खरगोश निकलता है। वह उसके पीछे भागता है। तभी वह देखता है कि एक लोमड़ी उसके पीछे-पीछे चली आ रही है।

चेतन ने करवट बदली।

स्वप्न फिर चलने लगा। इस बार उसने देखा कि वह एक बड़ा-सा पतंगा बन गया है और एक बड़े से हंडे के इर्द-गिर्द घूम रहा है। घूम रहा है, पर हंडा उसे दीपशिखा तक नहीं पहुँचने देता। वह उसके शीशे से टक्करें मारता है और दीपशिखा उसकी इस मूर्खता पर अट्टहास कर उठती है।

●

२३ विवाह के तत्काल बाद चेतन अपनी पत्नी को लाहौर नहीं ले गया। कारण कई थे।

—उसकी माँ चाहती थी कि अपनी इस नयी बहू को कुछ दिन अपने पास रखे और समस्त गृह-कार्यों में उसे निपुण कर दे।

—भाई साहब चाहते थे कि अब जब उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी है तो चेतन भी अपना वचन पूरा करे और लाहौर में दुकान खोलने में उन्हें सहायता दे।

—भाई साहब की श्रीमती इस बात पर तुली हुई थीं कि वे जालन्धर रहते-रहते ऊब गयी हैं, इसलिए लाहौर जायेंगी। गर्मियों का मौसम था, बादल हों तो कुछ ठंड हो जाती, नहीं तो ग़ज़ब की गर्मी पड़ती और चंगड़ मुहल्ले के उन दो कमरों में चार-छै व्यक्तियों के एक साथ रहने की बात स्वयं एक समस्या थी।

—फिर चेतन (मन की किन्हीं अज्ञात गहराइयों में) न चाहता था कि वह नीला से एकदम इतनी दूर चला जाय। उसके अर्ध-चेतन में कहीं यह

बात भी छिपी थी कि चन्दा जालन्धर अथवा बस्ती रहेगी तो वह नीला से मिलने के अधिक अवसर पा सकेगा।

इन सब कारणों से अपनी नव-पत्नी को अपनी माँ की देख-रेख में छोड़, अपने भाई साहब को, कुछ थोड़ा-बहुत प्रबन्ध करके अपने पीछे आने के लिए कह और अपनी भावज को सान्त्वना दे कर कि उसे शीघ्र ही बुला लिया जायगा, चेतन अतीव दुःख और अतीव सुख के इन कुछ दिनों के बाद अपने उसी समाचार-पत्र की चक्की में जुटने के लिए लाहौर वापस चला गया।

सुख की अपेक्षा जीवन में दुःख की मात्रा कहीं अधिक है। पर इन दोनों को एक-दूसरे से पृथक करके नहीं रखा जा सकता। सुख के क्षण दुःख को लिए हुए आते हैं और दुःख के सुख को और मानव इन्हीं मधु-विष मिश्रित प्यालों को पीता चला जाता है।

माँ के दिल में बहू को घर के काम-काज में दक्ष करने का जो शौक था वह शीघ्र ही पूरा हो गया, और दो महीने बाद माँ ने फ़तवा दे दिया कि यह नयी बहू बड़ी बहू से भी गयी-गुज़री है। वह ज़बान की कड़वी हो, लड़ती-झगड़ती हो, पर काम तो करती थी। यह तो बस गुम-सुम पत्थर! अजगर की भाँति खाना और सोना जानती है। काम के नाम पर सिफ़र है। यह कहते-कहते माँ पञ्जाबी भाषा की एक लोकोक्ति भी सुनाती।

बहू कम्म करन नूँ कही
बहू सुज्ज भड़ोला जही
बहू खान नूँ कही
दो सज्जरियाँ दो बही*

---

*बहू से काम करने को कहा, बहू का मुँह भड़ोला (नाँद) बन गया। बहू से खाने को कहा, बहू ने दो ताज़ा और दो बासी रोटियाँ सामने रख लीं। हिन्दी में भी एक लोकोक्ति है जिसका यही अर्थ है—काम की न काज की अढ़ाई सेर अनाज की।

और माँ उन दिनों की बातें सुनाती जब वह स्वयं ब्याही आयी थी और परदादी गंगादेई के कठिन शासन के नीचे उसे अथक काम करना पड़ता था।

इस बीच में चेतन दो बार जालन्धर आया था। वर्ष भर में एक महीना और महीने भर में अढ़ाई दिनों की छुट्टी उसे मिलती थी। इन अढ़ाई दिनों को इतवार से मिला कर दोनों बार वह साढ़े तीन-तीन दिनों के लिए जालन्धर आया था। तब माँ के कठिन संयम से हारी-थकी उसकी पत्नी ने बस्ती चलने की इच्छा प्रकट की थी। उसकी ऊबाहट को लक्ष्य कर चेतन ने कहा था :—

"मैं जानता हूँ, तुम्हारा दिल यहाँ नहीं लगता। मैं तुम्हें आज ले चलूँ लाहौर, पर अभी भाभी गयी है। वह दो-चार महीने रह ले, तब तुम्हें ले चलूँ। इतनी जगह तो है नहीं कि तुम दोनों रह सको। अब माँ से मैं क्या कहूँ? उन्हें न नींद आती है, न भूख लगती है। दूसरों को भी वे ऐसा ही समझती हैं। जब तक यहाँ रहना है, यह सब कुछ सहते हुए ही रहना है। प्रातः उठने की और तनिक देर से खाने की आदत डालनी होगी। पुरुषों के खाने से पहले खा लेना माँ के धर्म में पाप है। मैं कह जाऊँगा। तुम न हो कुछ बासी-ऊसी खा लिया करना।" और फिर कुछ रुक कर उसने कहा था, "बस्ती जाने को बहुत मन हो तो आओ चन्द दिन बस्ती।"

चन्दा मन-ही-मन अपने इस सहृदय पति के चरणों में झुक गयी थी और इसी बहाने चेतन दोनों बार बस्ती हो आया था।

चाँदनी रात थी और दिन भर बरसने के बाद तीतर के पंखों-सी बदली आकाश पर छायी हुई थी, जिसके सम्बन्ध में पुराने लोगों का विचार है कि वह वर्षा के पुनरागमन की सूचना देती है। उमस नहीं थी और ठंडी-ठंडी बयार चल रही थी। चाँद के इर्द-गिर्द एक नन्हीं-सी बदली साँप की तरह कुण्डली मार कर बैठी थी और आकाश पर फैली हुई बदलियों में कहीं-कहीं कोई तारा झाँक उठता था। अपनी ससुराल में छत पर चेतन लेटा हुआ था। पास ही नीला बैठी थी और वह मन्त्र-मुग्ध-सा उसकी ओर देख

रहा था।

दोनों चुप थे। नीचे बर्तनों के मले जाने की आवाज़ आ रही थी, कभी हैंडपम्प का कर्कश स्वर भी आ जाता था या फिर चन्दा कभी (ऊपर अपने पति की उपस्थिति के कारण) सरगोशियों में बातें करती थीं—"भाभी आटा देख लो काफ़ी है या नहीं?"...."अम्बो थाली कहाँ रख दी तैंने?"....
"चावल तो गल गये भाभी...."

उस दिन के बाद चेतन को आज नीला से दो बातें करने का अवसर मिला था। किन्तु उसे बातें सूझ ही न रही थीं और वह निर्निमेष उसके सुन्दर मुख को देख रहा था। नीला का क़द लम्बा न था, किन्तु ऐसा भी नहीं, जिसे मझोला कहा जा सके। वह पतली न थी, लेकिन मोटी भी न थी। सुडौल, सुगठित अंग, तीखा लम्बा चेहरा, भरे गाल, जिनमें हँसते समय गढ़े पड़ जाते थे; बड़ी-बड़ी मुस्कराती आँखें और वय-सन्धि को पार करता और रेखाओं को उभारता शरीर! और चेतन उसे मोहित-सा देख रहा था।

सोचने पर भी उसे कोई बात न सूझ पड़ी। नीला के सामीप्य और उस चाँदनी रात की तरल मादकता से मस्त वह लेटा रहा। कोने में कोई टिड्डी अनवरत चीं-चीं करती रही और चेतन जैसे स्वप्न के संसार में खोया-सा उसे सुनता रहा।

नीला चेतन के बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी। अपनी कोमल अँगुलियों से उन्हें प्यार के साथ सुलझाते हुए उसने अनायास कहा, "जीजा जी तुम्हारे बाल कितने कोमल हैं, कितने लम्बे और कितने कुण्डल बन जाते हैं इनमें!"

चेतन को फिर भी कोई उत्तर न सूझा। उसने केवल नीला का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और कुछ क्षण आँखें बन्द करके चुपचाप पड़ा रहा।

नीला चुप रही। उसके बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरती रही, उसके

कुण्डलों को सुलझाती रही।

कुछ क्षण बाद चेतन ने कहा, "मैं सोचा करता हूँ नीला, मैं दो बार चन्दा को देखने आया और दोनों बार मैंने तुम्हें देखा।"

"मैंने भी आपको दोनों बार देखा और मैं यह भी बता सकती हूँ कि पहले दिन जब आप बस्ती के अड्डे पर खड़े थे, आप ने कौन-सा सूट पहन रखा था।"

एक हल्की-सी लहर चेतन के शरीर में दौड़ गयी। नीला के हाथ को प्यार से सहलाते हुए उसने कहा, "यदि मुझे उस दिन पता चल जाता कि तुम चन्दा की ही बहन हो तो...."

"तो जीजा जी...." नीला ने उत्सुकता से पूछा।

किन्तु चेतन चुप रहा। उसने सिर्फ़ एक लम्बा गहरा निश्वास छोड़ा।

दूसरी सुबह जब चेतन जाने लगा तो नीला अपनी नाचती-मुस्कराती आँखें लिये आयी। और उसने उससे लाहौर से फिर आते समय, रिबन और क्लिप लेते आने की फ़रमाइश की।

दूसरी बार जब चेतन आया था तो वह न केवल क्लिप और रिबन, बल्कि लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर का डिब्बा भी लाया था और बड़ी सफ़ाई से अपने इस कृत्य की प्रशंसा उसने अपनी पत्नी से पा ली थी।

आते ही उसने चन्दा से कहा था कि रिबन और क्लिप वह नीला के लिए लाया है और लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर उसके लिए। फिर कुछ क्षण ठहर कर दो-चार इधर-उधर की बातें करके, उसने कहा था, "मुझे तो ज़रा-ज़रा सी ये दो चीजें तुम्हारी बहन को देते शर्म आती है। वह तुम्हारी बहन ठहरी, ये ज़रा-ज़रा सी चीज़ें उसे क्या दूँगा!" और फिर जैसे उसे उसी समय ख़याल आया हो, उसने कहा, "तुम यह लिप-स्टिक, क्रीम

और पाउडर भी उसे दे देना। उसे कुछ तसल्ली तो हो। तुम्हारे लिए मैं अगली बार आता हुआ और ले आऊँगा। वह तुम्हारी बहन है और पहली बार उसने कुछ माँगा है....”

और भोली चन्दा मान गयी थी। लेकिन जब बस्ती जाने पर उसने नीला को सब कुछ दिया जो उसके जीजा उसके लिए लाहौर से लाये थे तो वह हँस दी। क्लिप और रिबन उसने रख लिये, किन्तु शेष चीज़ें उसने चन्दा को वापस दे दीं। इस पर चन्दा ने उससे कहा था, “इन्हें तुम स्वयं ही अपने जीजा को वापस देना।”

तब पाउडर का डिब्बा और क्रीम तथा लिप-स्टिक की शीशियाँ उठा कर नीला ऊपर गयी थी और तीनों चीज़ें उसने चेतन के सामने रख दी थीं।

“इन्हें आप बहन को दे दें।” उसने कहा था।

“लेकिन मैं तो केवल तुम्हारे लिए लाया हूँ।”

“मैं कैसे इनका प्रयोग कर सकती हूँ ?”

‘क्यों ?”

“आप भी भोले हैं जीजा जी ! किसी कुँवारी लड़की को बस्ती में आपने सुर्खी या पाउडर लगाये देखा है ?”

इतने ही से उसके गाल सुर्ख हो गये और इससे पहले कि चेतन कुछ कहता वह भाग गयी।

किन्तु उसी शाम को दोनों चीज़ें अपनी पत्नी को वापस देते हुए उसने कहा, “अच्छा हुआ नीला ने इन्हें नहीं लिया।”

चन्दा ने चुपचाप चीज़ें ले लीं।

“मुझे केवल तुम्हारा ध्यान था,” चेतन ने एक खिसियानी-सी हँसी के साथ कहा, “तुम्हारी बहन कहीं यह न कहे कि उसका जीजा महा कंजूस है, नहीं मैं सोच रहा था कि यह चीज़ें नीला को देने के लिए कह तो दिया,

पर तुम्हारे लिए कहाँ से लाऊँगा। इस महीने तो कुछ बचा नहीं पाया।"

चन्दा चुपचाप सुनती रही।

और ब्योरा देते हुए चेतन ने कहा, "तुम्हें मैंने लिखा था न कि इस महीने का लगभग सारा वेतन मैंने भाई साहब को दे दिया है। उन्होंने चैम्बरलेन रोड पर दुकान खोल ली है। चल निकलने की पूरी आशा है। पहले ही महीने तीस रुपये आये हैं। लेकिन रुपये तो आते हैं दो-दो चार-चार करके, पर किराया देना पड़ता है इकट्ठा। सो तीस तो उन्हें दे दिये। शेष दस से ये चीज़ें लाया और यहाँ भी आया। मकान का किराया अभी देना बाक़ी है। खाने का तो खैर भाई साहब प्रबन्ध कर देंगे, पर मैं सोच रहा था....लेकिन यह अच्छा ही हुआ....तुम यह रखो! अगले महीने टिकुली और तेल आदि भी तुम्हें ला दूँगा।"

किन्तु उसी रात वह नीला से कह रहा था:

"नीला तुमने वह सब वापस कर दिया, यह न देखा कि लाने वाले के हृदय को कितनी ठेस पहुँचेगी?"

रात के अँधेरे में नीला ने अपने इस जीजा की आँखों में देखने का प्रयास किया।

वह मुँडेर पर बैठी थी। तनिक फ़ासिले से चेतन चारपाई पर लेटा हुआ था। ऊपर आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। चौथ का वक्र चाँद किसी कुबड़े की भाँति लेटा हुआ था। एक नन्हा-सा चमगादड़ इधर-से-उधर और उधर-से-इधर अतीव विह्वलता से चक्कर लगा रहा था। नीला को लगा जैसे निमिष-मात्र के लिए चेतन का गला भर आया हो।

उसने हँस कर कहा, "जीजा जी! मैं ले कर क्या करती, जब मैं उन्हें काम में न ला सकती थी। आप कोई चीज़ लायें जो मैं काम में ला सकूँ, फिर मैं उसे न लूँ तो आप कहें।"

चेतन को सान्त्वना मिली और फिर उसने नीला का हाथ खींच कर अपने हाथ में ले लिया।

नीला चुप बैठी रही।

उसके हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए उसने बताया कि वह चन्दा को कुछ दिनों के लिए बस्ती ही छोड़ जाना चाहता है।

"मेरी माँ देवी है।" वह बोला, "उसने हमारी खातिर अनेक कष्ट सहे हैं। दुःखों के कारण उसमें जान तक भी नहीं रही। उसने हमें कभी गाली नहीं दी, झिड़का नहीं, बुरा-भला नहीं कहा। मेरी सदा यह अभिलाषा रही कि मैं उसे प्रसन्न कर सकूँ। उसके आँसू मैं सहन नहीं कर सकता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि उससे कुछ न कह कर चन्दा ही को कुछ दिन के लिए बस्ती छोड़ दूँ।"

नीला ने इतना ही कहा था, "वह तुम्हारी माँ है, पर चन्दा की तो सास है। बस यही अंतर है।"

"मैं हैरान हूँ नीला कि चन्दा से भी माँ की नहीं निभ सकी। भाभी के सम्बन्ध में तो माँ कहती थी कि वह लड़ाकी, झगड़ालू, कर्कशा है, लेकिन तुम्हारी बहन तो ऐसी नहीं। उसमें और कुछ न हो, सरलता, सहृदयता, विनम्रता तो कूट-कूट कर भरी हुई है। मैं सोचता था कि मैं न सही, माँ तो खुश होगी, लेकिन...."

चेतन क्षण भर तक चुपचाप लेटा रहा। फिर दीर्घ-निश्वास ले कर बोला :

"चन्दा पढ़ी-लिखी नहीं। चार-पाँच दर्जे तक....लेकिन इतने से क्या हो सकता है? और फिर वह एकदम देहातिन है। अपनी सारी सरलता और सहृदयता के होते भी उसे कपड़े पहनने, नहाने-धोने, बाल सँवारने, अपनी और घर की सफ़ाई रखने की तमीज़ नहीं। मेरा विचार था कि माँ उसे अवश्य पसन्द कर लेगी। पर वह उसकी शिकायतें करते नहीं थकती। मैं उसे अभी ले जा नहीं सकता। भाभी वहाँ है और मेरे पास अधिक जगह नहीं और मैं चिन्तित हूँ। तुम मेरी चिन्ता का अनुमान नहीं कर सकतीं...."

और फिर धीरे-धीरे जैसे अपने किसी अभिन्न मित्र को सुना कर वह दिल का भार हल्का करना चाहता हो, उसने नीला को अपने विवाह की

समस्त दुख-गाथा सुना डाली—यहाँ तक कि कुन्ती और प्रकाशो की बात भी उसने नहीं छिपायी।

नीला के हृदय की धड़कन तेज़ हो गयी। चेतन को लगा जैसे उसके हाथ में निर्जीव पड़ा वह सुकोमल हाथ तनिक काँप उठा। चेतन उस हाथ को स्नेह से दबा लेना चाहता था कि नीला ने जल्दी से हाथ खींच लिया।

"जीजा जी उठिए, जल्दी कीजिए! आँधी आ रही है!"

अपने ध्यान में मग्न चेतन घबरा कर जल्दी से उठा। तब दूर उसने सायँ-सायँ की आवाज़ सुनी और बिजली की चमक में पश्चिमी क्षितिज का उग्र रूप देखा।

२४

सन्ध्या का सूरज कब और कहाँ छिपता है, छिपते-छिपते पश्चिम का क्षितिज कैसा सुन्दर रूप धर लेता है। आकाश में कैसी रंगीन लहरियाँ बन जाती हैं और सघन वृक्षों के पत्तों में उनकी आभा कैसे हीरे-मोती जगमगा देती है, इस बात से लाहौर, विशेषतया अनारकली के अगणित वासी सर्वथा अनभिज्ञ रह जाते हैं। वहाँ तो बाज़ार में बिजली के हंडों के अचानक जग उठने, भीड़ के अधिकाधिक होते जाने, धुएँ और धूल के क्षण-प्रति-क्षण बढ़ते जाने से पता चल जाता है कि सन्ध्या बीत गयी है।

चेतन दफ़्तर से साढ़े छः बजे तक, निरन्तर छः-सात घंटे काम करके निकलता तो सीधा घर पर आता। गनपत रोड से होता हुआ अनारकली का छोटा-सा टुकड़ा पार कर अपने आपको मुक्त-सा अनुभव करता, पैसे-आध-पैसे की गज़क ले कर चूसता हुआ या धेले-पैसे की मूँगफली ले कर कुटकता हुआ वह लोहारी के चौक तक चला जाता और वहाँ फ़ज़ल की दुकान पर एक-दो साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को देखा करता। उसकी कविता अथवा कहानी जिस पत्र अथवा पत्रिका में छपी होती या जिसमें छपने की उसे आशा होती, उसे ही वह सबसे पहले उठा कर देखता। प्रायः जब उसके

हाथ में कोई ऐसी पत्रिका आ जाती जिसमें उसकी कोई रचना छपी होती और वहीं स्टाल पर पत्रों की देख-रेख करने वालों में उसका कोई परिचित होता, उसका मन उस अपने परिचित को इस बात से सूचित करने के लिए मचल उठा करता। कई बार ऐसा भी होता कि उसके पास ही कोई व्यक्ति खड़े-खड़े उसकी ही कविता अथवा कहानी देख रहा होता, तब उसके मुख पर एक रंग आता और एक जाता। उसे प्रबल आकांक्षा होती कि उस व्यक्ति को किसी तरह इस बात का पता चल जाय कि यह नवयुवक जो उसके पास ही खड़ा है, उस कहानी अथवा कविता का रचयिता है। किन्तु इस तरह की बात अपने किसी परिचित अथवा अपरिचित को समझाने में वह सदैव असफल रहा करता। हाँ, अपनी कृतियों को छपे अथवा पढ़े जाते देख कर उसके मन को अपार प्रसन्नता होती। इसीलिए वह प्रायः धुएँ और धूल की परवाह न करके स्टाल पर कितनी ही देर खड़ा रहता। दुकान का मालिक उसे मुफ्तखोर न समझ ले, इस विचार से, जैसे-तैसे कुछ पैसे बचा कर, एक-दो साहित्यिक पत्रिकाएँ भी वह कभी-कभी खरीद लिया करता। दुकानदार से मेल जोल बढ़ाने के लिए उसने एक पत्रिका की एजेन्सी भी उसे ले दी थी।

आज चन्दा को लाहौर आना था और चेतन सुबह ही से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि उसके छोटे भाई ने अपने पत्र में दिन तो लिखा था, पर समय और गाड़ी नहीं।

यद्यपि पहले चेतन की इच्छा अपनी पत्नी को पाँच-छै महीने जालन्धर रखने की थी, पर उसकी भाभी ने उसके साथ कुछ ऐसा रूखा व्यवहार किया कि दो महीने बाद ही चेतन को अपना वह संकल्प बदलने को विवश होना पड़ा।

हुआ यह कि चेतन अपनी भाभी के स्वभाव से बेतरह तंग आ गया। वह उसके कर्कश लड़ाकेपन से परिचित था, पर वह जिस प्रकार उसके पति के लिए काम कर रहा था (न केवल अपने वेतन का आधे से अधिक भाग

उसे दे देता था, वरन् दिन-रात दुकान को चलाने की चिन्ता में रत रहता था। समाचार-पत्रों में विज्ञापन देता था, मित्रों में प्रचार करता था, अपने पद की परवाह न करके अनारकली में विज्ञापन बाँटता था) उसे देखकर उसकी भाभी कम-से-कम उसकी प्रशंसा करेगी और उसे स्नेह देगी, इस बात का उसे विश्वास था। किन्तु श्रीमती चम्पावती उस कुटुम्ब में पली थी जहाँ भाई को भाई न सुहाता था। विद्वेष उन्हें घुट्टी में मिला था और दो ही महीनों में उन्होंने चेतन को अपने 'स्नेह' का कुछ ऐसा परिचय दिया कि एक दिन जब साँझ को उसके भाई आये तो उसने यह कह दिया कि जब तक भाभी यहाँ हैं, वह घर में कदम न रखेगा। इसके बाद दोनों भाइयों में जो मन्त्रणा हुई उसके फलस्वरूप माँ को चिट्ठी लिखी गयी कि वह तत्काल चेतन की पत्नी को नित्यानन्द के साथ लाहौर भेज दे। यह भी तय हो गया कि नित्यानन्द जाता-जाता भाभी को ले जायगा।

चेतन का मन बड़ा खिन्न था। इसका एक कारण तो यह था कि सारा दिन दफ़्तर में प्रकट वह अंग्रेजी तारों का अनुवाद करता रहा था, किन्तु उसका मन जालन्धर से आनेवाली प्रत्येक गाड़ी की प्रतीक्षा करता रहा था। किसी-न-किसी बहाने वह घर जा-जा कर देखता और निराश होता रहा था और इसी कारण वह ग़लतियाँ करता और झिड़कियाँ खाता रहा था। दूसरा कारण यह था कि ड्योढ़ी के ऊपर रहने वाली विधवा ने उसे खूब चिढ़ाया था। "क्यों झूठ बोलते हो, उसने कहा था, "ब्याह तो तुम्हारा हुआ ही नहीं, पत्नी कहाँ से आयगी ? पता नहीं किसके ब्याह की शीरीनी ला कर मुहल्ले में बाँट दी!" चेतन ने कहा था कि उसकी पत्नी आज अवश्य आ जायगी, लेकिन जब वह दो-तीन बार घर गया और पूछने पर उसे पता चला कि वह नहीं आयी तो उसे उनके सामने बहुत खिन्न होना पड़ा था।

फिर जब वह शाम को दफ़्तर का काम समाप्त करके, इस विचार से क उसकी पत्नी घर न आयी बैठी हो, फ़ज़ल की दुकान के बदले सीधा घर गया था तो उसे निराश होना पड़ा था। तब झुँझलाहट में खाना खाते-

खाते वह अनायास भाभी से उलझ पड़ा था और खाने की थाली पटक कर उठ खड़ा हुआ था।

वास्तव में भाभी लाहौर आ कर फिर जालन्धर न जाना चाहती थी। वह अपढ़ और असंस्कृत नारी थी। उसका विचार था कि उसके देवर और देवरानी उसके पति की कमाई खाना चाहते हैं, इसलिए उसे जालन्धर भेज रहे हैं। अपने मन का यह भाव उसने चेतन पर प्रकट कर दिया था। चेतन का रक्त खौल उठा था। और वह लड़-झगड़ कर खाना छोड़ चला आया था।

वहीं अपने अड्डे पर पहुँच कर वह पत्रिकाएँ देखने लगा। उसका मन न लग रहा था। हल्की-हल्की सर्दी उतर आयी थी। वह खादी की एक कमीज़ पहने और तहमद बाँधे खड़ा था। सोच रहा था कि उसके पास गर्म कपड़ा कोई नहीं। उसने जल्दी की थी, यदि वह सर्दियों में विवाह करता तो और कुछ न सही, उसे एक गर्म सूट तो मिल ही जाता। अब सर्द सूट तो उसने अपने भाई को दे दिये थे। (वे उससे सिर्फ़ दो वर्ष बड़े थे और उसके सूट उन्हें फ़िट आते थे। फिर वे डाक्टर थे और सूटों की उन्हें बड़ी आवश्यकता थी।) लेकिन लाहौर में सर्दी तो खूब पड़ती है। माना कि राष्ट्रीय पत्र के जूनियर एडीटर को सूट-बूट अच्छा नहीं लगता, लेकिन वह एक गर्म अचकन तो सिलवा ही सकता था।

उसे कुछ-कुछ भूख-सी लग रही थी और वह सोच रहा था कि यदि जेब में कुछ पैसे होते तो सामने कोने के सिक्ख हलवाई की दुकान से डेढ़ पाव, आध सेर गर्म-गर्म दूध पीता, जिस पर मलाई की मोटी परत जमी हुई थी और जिस पर बादामों की गिरियाँ तथा छोहारे दूर ही से जमे दिखायी देते थे। कल्पना-ही-कल्पना में चेतन के मन-मस्तिष्क में उस दूध की सुगन्ध बस गयी। कुछ विचलित-सा हो कर उसने हाथ की पत्रिका पर से दृष्टि उठायी।

एक ताँगा उसके पास से गुज़रा। पिछली सीट पर एक नव विवाहिता घूँघट निकाले बैठी थी। उसके साथ सफ़ेद धोती पहने उस पर रेशमी चादर ओढ़े एक अधेड़ महिला थी। ज्योंही युवती पर से होती हुई उसकी दृष्टि

उस महिला पर पड़ी कि उसके मुँह से अनायास निकल गया—"माँ !"

पत्रिका को वहीं फेंक तहमद सम्हालता हुआ वह ताँगे के पीछे-पीछे भागा और उसने दो-एक आवाज़ें दीं—'माँ !' 'माँ !' और फिर 'नित्यानन्द !' 'नित्यानन्द !'

और माँ ने ताँगा रुकवा लिया।

●

२५ यद्यपि अपनी इस नयी बहू को घर के काम-काज में दक्ष बनाने के हेतु माँ का सारा उत्साह जालन्धर ही में भंग हो चुका था, इस पर भी जब चेतन ने अपना वैवाहिक जीवन आरम्भ करने के लिए पत्नी को बुलाया था और लिखा था कि उसे नित्यानन्द के साथ भेज दिया जाय तो वह भी साथ आ गयी थी। शायद वह अपनी इस बहू को जीवन के कठिन मार्ग पर चलने से पहले हर तरह समझा-बुझा देने का एक और प्रयास कर देखना चहाती थी। और इसलिए जब अपनी देवरानी के आने पर चेतन की भावज अनिच्छापूर्वक अपने देवर के साथ जालन्धर चली गयी तो माँ उसके साथ न गयी।

भाई साहब की दुकान के अन्दर (कदाचित् सामान आदि रखने के लिए) एक परछत्ती थी। उसकी छत दुकान के एक-तिहाई भाग पर थी और लकड़ी की एक तंग सीढ़ी उससे लगी हुई थी। अपनी छोटी भावज के आने और अपनी पत्नी के जाने के बाद भाई साहब ने अपना बोरिया-बिस्तर वहीं लगवा लिया। बिस्तर तो खैर जैसा-तैसा था ही, लेकिन बोरिये के नाम पर उनके पास एक सूटकेस ही था, जिसके कब्ज़े इतने पुराने हो चुके थे कि ऊपर का ढकना सदैव खुला रहता था। बस दो जून खाना खाने के लिए वे घर आते थे।

अपनी माँ की उपस्थिति, विशेषतया विवाह के उन पहले दिनों में, चेतन को उतनी अच्छी नहीं लगी। कमरे दो ही थे। अन्दर धीरे से भी बात की जाय तो बाहर सुनायी दे जाती थी। माँ की उपस्थिति में अपनी पत्नी से

बातचीत करने का उसे अवसर न मिलता। माँ कुछ रोड़ा अटकाती हो, यह बात न थी। वह तो बाहर के कमरे में अधिक-से-अधिक फ़ासले पर बैठी, मौन रूप से विष्णुसहस्रनाम, प्रेमसागर अथवा रामायण का पाठ किया करती या केवल माला फेरती रहती। किन्तु अपनी माँ की उपस्थिति में अपनी पत्नी के साथ बातें करने में चेतन को बड़ी लज्जा लगती थी।

तभी इतवार आ गया।

इतवार को अधिकांश समाचार-पत्रों के दफ़्तरों में छुट्टी होती है। चेतन के दफ़्तर में उस दिन भी काम होता था। बात यह थी कि उसके पत्र का 'संडे एडीशन', (Monday) को निकलता था। उस दिन दूसरे पत्रों से मुकाबिला न होता था। शनि के दिन भारत सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार का ह्वाइट पेपर प्रकाशित हुआ था। इसलिए चेतन के ज़िम्मे इतवार को स्थानीय नेताओं से इन्टरव्यू* करने की ड्यूटी लगी थी। दूसरे समाचार-पत्रों को छुट्टी के कारण यह सुविधा प्राप्त न थी। इसलिए सम्पादक महोदय चाहते थे कि वे उनसे पहले ही ह्वाइट पेपर के सम्बन्ध में स्थानीय नेताओं की सम्मतियाँ छाप कर डाइरेक्टरों की प्रशंसा और पाठकों का यश अर्जित कर लें।

चेतन दिन भर साइकिल लिए घूमता रहा। वह तीन तरह के नेताओं से मिला। एक जो राजनीतिक थे, राजनीति के सम्बन्ध में गम्भीर थे, अपने दृष्टिकोण के बारे में दयानतदार थे और जिनकी राय को महत्व भी दिया जाता था। ये नेता पहले सारे-के-सारे ह्वाइट पेपर का अध्ययन करना चाहते थे। फिर अपने दल के नेताओं के वक्तव्यों की प्रतीक्षा करना चाहते थे। किसी प्रकार का ओछा वक्तव्य देना उन्हें स्वीकार न था—उनके वक्तव्य कुछ अस्पष्ट-से थे, कुछ अपूर्ण-से, जिनमें निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कहा गया था और विहंगम दृष्टि से देखने पर ह्वाइट पेपर के असंतोषजनक होने का उल्लेख था।

---

*भेंट = साधारणतः किसी विषय के सम्बन्ध में किसी नेता की सम्मति जानने अथवा किसी नेता अथवा पदाधिकारी के सम्मुख अपनी बात रखने के लिए की गयी भेंट को इन्टरव्यू कहते हैं।

दूसरे नेता सामाजिक थे और राजनीति में उन्हें इसलिए घसीटा जाता था कि उनके पास पैसा अधिक था या फिर उनका नाम बड़ा था। वे किसी-न-किसी साम्प्रदायिक सभा के प्रधान अथवा उपप्रधान थे। उनके वक्तव्य बड़े नपे-तुले दुअर्थी शब्दों में वेष्ठित थे।

तीसरे ऐसे थे जो न राजनीतिक थे न सामाजिक! जो बस नेता थे। काँग्रेस की सभाओं में शुद्ध खादी पहन कर भाषण झाड़ आते थे और किसी सामाजिक पार्टी में अपटूडेट फ़ैशन की भूषा में सज-धज कर जा पहुँचते थे। वे न इसके सम्बन्ध में गम्भीर थे न उसके—जीवन उनके लिए फूलों के उपवन-सा था जिसमें वे भौंरे बने घूमना चाहते थे। इनमें से कोई डाक्टर था, कोई वकील, कोई वैद्य, कोई बैरिस्टर, कोई धनी रिटायर्ड अफ़सर—जिसे ज्ञात न था कि अपने धन का क्या करे—अथवा कोई सम्पन्न बेकार—जिसे मालूम न था कि अपने समय का क्या करे।

उन्हीं में से एक लेडी डाक्टर से इन्टरव्यू करने के बाद चेतन सारा दिन हँसता रहा।

ये देवी जी प्रैक्टिस तो न जाने कहाँ करती थीं, पर माल रोड पर उनके पति की कोठी थी। देवी जी बी० ए० थीं और अपने नाम के साथ उन्होंने इस तरह डिग्री लगा रखी थी, जैसे वह डिग्री केवल उन्हीं के लिए बनी हो। एक बार म्युनिसिपल कमेटी की सदस्या बन चुकी थीं, दो बार प्रान्तीय कौंसिल के लिए भी खड़ी हुई थीं और फिर नेताओं के ज़ोर देने पर (जिसका अर्थ यह है कि अन्य उम्मीदवारों से कुछ रुपये ऐंठ कर) दोनों बार बैठ गयी थीं।

चेतन ने जा कर घंटी का बटन दबाया। उन्होंने दरवाज़ा स्वयं खोला। वह उनके पीछे-पीछे ड्राइङ्ग-रूम में चला गया—साफ़ चमकती हुई दरी, झमझमाते हुए ग़ालीचे, झिलमिलाते हुए कुशन, साफ़-सुथरी मेज़-कुर्सियाँ, बहुमूल्य केबीनेट, क़ीमती चित्र और मेंटल-पीस पर रखी हुई कई ऐसी

सुन्दर वस्तुएँ जिनका वह नाम भी न जानता था। श्रीमती राधारानी (यही उनका नाम था) एक श्वेत साड़ी में सुसज्जित, एक कुर्सी सरका कर उस पर बैठ गयीं—तीस-बत्तीस वर्ष की आयु, गेहुँआ रंग, लेकिन बेहतरीन पेण्ट से चमकता हुआ। चिबुक के नीचे मांस उभरा हुआ था। कुछ ऐसी सुन्दर तो न थीं, लेकिन चेतन को मालूम था कि सभ्य-समाज में वे अनुपम सुन्दरी गिनी जाती थीं।

"आप ने ह्वाइट पेपर पढ़ा?"

"कल रात जस्टिस नवल किशोर की पार्टी थी, मैं समाचार-पत्र तक नहीं पढ़ पायी।"

देश में हलचल मच गयी है। देश के भाग्य का निर्णय सुना दिया गया है, पर इन श्रीमती जी को, जो लीडर कहलाती हैं, उससे कुछ मतलब नहीं! किन्तु उन्हें ही क्या—चेतन ने सोचा—स्वयं उसे ह्वाइट पेपर से कितनी दिलचस्पी है? कल जब उसके दफ़्तर में टेलीफ़ोन-पर-टेलीफ़ोन आ रहे थे, लोग ह्वाइट पेपर की शर्तें सुनने के लिए बेचैन थे, वह बड़े शांत भाव से इनफ़र्मेशन ब्यूरो से ह्वाइट पेपर की कापी ले कर चला आया था। उसके मन में उसे देखने की तनिक भी उत्सुकता पैदा न हुई थी और इस बहाने जब उसे छुट्टी मिली थी तो वह गोल बाग की ओर से आते हुए अपने घर से हो कर अपनी नव-परिणीता पत्नी से दो बातें करते जाना भी न भूला था। इसके अतिरिक्त समाचार-पत्र में काम करने पर भी उसे बिल की उन धाराओं के अतिरिक्त, जिनका उसने स्वयं अनुवाद किया था, किसी दूसरी के सम्बन्ध में कुछ भी तो ज्ञात न था।

वास्तव में दो प्रकार के लोगों को राजनीति में किसी तरह की दिलचस्पी लेने का अवकाश नहीं मिलता। एक तो धनी-मानी लोग, जो जस्टिस नवल किशोर की पार्टियों में शामिल होते हैं। कहीं अकाल पड़े, कहीं भूकम्प आये, ये उन अवसरों से भी (ख़ैराती कन्सर्टों के द्वारा) कुछ-न-कुछ मनोरंजन का सामान जुटा लेते हैं। दूसरे वे जिनका मस्तिष्क तेरह-चौदह घंटे काम करने के पश्चात् इतना थक चुका होता है कि उसमें राजनीति

अथवा किसी दूसरी नीति के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। जब कभी ये दूसरे अपने अधिकारों को पहचानेंगे तभी पहलों को राजनीति में भाग लेने को विवश होना पड़ेगा।

चेतन ने कहा, "हमें आपका वक्तव्य तो अवश्य चाहिए, कल के विशेष साप्ताहिक अंक में सब नेताओं के वक्तव्य जा रहे हैं। आप का भी तो रहना चाहिए।"

"लेकिन मैंने तो अभी तक समाचार-पत्र ही नहीं पढ़ा।"

"आप देख लीजिए। श्रीमती सुशीला देवी, श्रीमती अमृत कौर, मिसेज़ निहाल चन्द, सबके वक्तव्य जा रहे हैं। ह्वाइट पेपर का प्रभाव जहाँ तक भारतीय नारी के अधिकारों पर पड़ता है, वहीं तक बस आप पढ़ लें!"

और वे "ट्रिब्यून" ले कर दूसरे कमरे में चली गयीं। चेतन आध घंटे तक वहीं बैठा रहा। समय काटने के लिए जल्दी-जल्दी लिये गये वक्तव्यों को कातिबों* के हवाले करने के लिए ठीक करता रहा। तत्पश्चात् वह मन-ही-मन साँझ का प्रोग्राम बनाता रहा।

वह लाला गणेश दास एडवोकेट, मंत्री प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के यहाँ गया था। वे मिले नहीं थे और दयालसिंह मैन्शन्ज़ से, जहाँ वे रहते थे, उसे पता चला था कि रात को नौ बजे से पहले न आयँगे, और चेतन ने सोचा था कि सन्ध्या को ज़रा जल्दी खाना खा कर वह अपनी पत्नी को माल पर सैर के लिए ले जायगा और रास्ते में दयालसिंह मैन्शन्ज़ से दस-पन्द्रह मिनट में इन्टरव्यू लेता जायगा।

तभी पौन घंटे के बाद श्रीमती राधारानी बाहर आयीं और उन्होंने कुछ अन्यमनस्कता से कहा, "मैं तो कुछ कुछ नहीं लिख सकी, वास्तव में मेरा ध्यान बहुत-सी बातों की ओर लगा है। मैं लिखने का 'मूड' नहीं बना सकी।"

चेतन ने कहा, "आप ज़बानी मुझे अपने विचार बता दें, मैं स्वयं

*उर्दू में लिथो छपाई होने से, पहले सब मैटर कातिब (छापे-सी सुन्दर लेखनी वाले) लिखते हैं, फिर उसे प्लेट या पत्थर पर अंकित किया जाता है, तब वह छपता है।

लिख लूँगा।"

"मैं कुछ भी नहीं सोच सकी।"

लेकिन चेतन की सहज पत्रकार-बुद्धि को इतना समय नष्ट करके यों ही उठ जाना स्वीकार न हुआ। धैर्य के साथ उसने कहा, "मैं समझ गया हूँ, आप के कैसे भाव हैं। आपने भारत की नारी के सम्बन्ध में शर्तें तो पढ़ ही ली हैं। मैं आप की ओर से एक छोटा-सा वक्तव्य लिखता हूँ। यदि आप को उसकी कोई बात अपने विचारों से मेल खाती दिखायी न दे अथवा असंगत लगे तो काट दीजिएगा।"

उन्होंने कुछ 'न' 'न' की, लेकिन चेतन ने कहा, "यदि आप को कोई वाक्य पसन्द न हुआ तो मैं उसे बदल दूँगा या काट दूँगा।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये उसने लिखना आरम्भ कर दिया।

और यद्यपि उसने स्वयं वे शर्तें न पढ़ी थीं, "किन्तु पहली दो महिलाओं के वक्तव्यों से जो उसने अभी सँवारे थे, कुछ मसाला ले कर उसने एक गोल-मोल-सा वक्तव्य लिख डाला, जिसमें मिस्टर मैकडानल्ड के प्रयास की सराहना भी थी, किन्तु उसके फलस्वरूप भारत की नारी को जो अधिकार मिले, उनसे असंतोष भी दिखाया गया था और यह भी आशा प्रकट की गयी थी कि ह्वाइट पेपर की नींव पर जो इंडिया एक्ट बनाया जायगा, उसमें भारतीय नारी को अधिक अधिकार दिये जायेंगे।

वक्तव्य लिख कर चेतन ने श्रीमती जी को सुनाया। वे प्रसन्न हो गयीं और उल्लसित स्वर में उन्होंने कहा कि कोई वाक्य काटने की आवश्यकता नहीं। चेतन ने उनके हस्ताक्षर कराये और चला आया।

इस इन्टरव्यू के बाद चेतन ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि आज के लिए यह यथेष्ट है। तीन वक्तव्य वह इससे पहले ले चुका था। लाला गणेशदास का वक्तव्य वह शाम को ले लेगा और समय मिला तो दफ़्तर में जा कर दे आयेगा, नहीं तो दूसरे अंक में छप जायगा।

घर जाकर उसने कहा कि रात को उसकी ड्यूटी नहीं, इसलिए उसकी

इच्छा है कि पत्नी को लारेंस की सैर करा लाये ।

यह कह कर वह दफ़्तर गया । दो घंटे जम कर उसने वह सब मसाला देख-दिखा कर कातिब को दिया । लिख जाने पर पढ़ा और सम्पादक महोदय को नमस्कार करके चल पड़ा ।

वह आज लोहारी के चौक की ओर नहीं गया, सीधा घर आया । खाना खाया और फिर पत्नी से झट तैयार होने के लिए कहा । यह अजीब बात थी कि दहेज में कितनी ही चीज़ें आने पर भी उसकी पत्नी के पास कोई ऐसी धोती अथवा ब्लाउज़ न था जिसे पहन कर वह उसके साथ सैर को जा सके । कीमती साड़ियाँ और रेशमी, दरियाई और सिल्मे के दो-तीन सूट थे, लेकिन वे अनायास ही दृष्टि को अपनी ओर खींचते थे । चेतन के पास साधारण कपड़े भी अधिक न थे और वह अपने सीधे-सादे कपड़ों को पहने हुए रेशमी सूट अथवा बनारसी साड़ी में सुसज्जित पत्नी के साथ सैर को न जाना चाहता था । उस समय मन-ही-मन में उसने चाहा—कितना अच्छा होता यदि उसके ससुराल वाले इन कीमती साड़ियों और सूटों के स्थान पर दस-बीस अच्छी धोतियाँ दे देते !

इस महीने उसके पास एक पैसा भी न बचा था और इसीलिए वह अपनी पत्नी को घर में हर वक्त पहनने के लिए एक धोती तक न ला कर दे सका था और वह घर में भी बनारसी साड़ी ही पहने रहती थी । साड़ी पहन कर उसे न लेटने की तमीज़ थी न बैठने की । वह साड़ी पहने ही फ़र्श पर बैठ जाती थी और उसे पहने हुए ही लेट जाती थी ।

तो भी इस खयाल से कि अँधेरा हो गया है और कोई व्यक्ति उनकी वेष-भूषा के अंतर को न देखेगा, चेतन ने पैड की तख़्ती पर क्लिप में दो-चार फ़ुलस्केप काग़ज लगाये, पेंसल ली और चल पड़ा ।

उसकी पत्नी ने अभी घूँघट निकाल रखा था । गली के बाहर निकल कर चेतन ने कहा, "अब घूँघट उठा लो, नहीं लोग दुकानों पर बैठे-बैठे नीचे झुक-झुक कर देखेंगे ।"

सरलता से चन्दा ने कहा, "अँधेरे में वे क्या देखेंगे ।"

चेतन निरुत्तर-सा हो गया। फिर कुछ ठहर कर उसने कहा, "लेकिन गिर पड़ोगी, लाभ क्या है ?"

और चन्दा ने साड़ी का छोर तनिक उठा लिया और चेतन के पीछे-पीछे चलने लगी।

"तुम मेरे बराबर क्यों नहीं चलती ?"

"मैं आपके पीछे ही अच्छी हूँ !"

"पागल हो, मेरे साथ-साथ चलो !"

वह तनिक आगे आ गयी। लेकिन अब भी वह उसके बराबर न थी। बात करने के लिए चेतन को अपना सिर तनिक मोड़ना पड़ता था।

ठंडी हवा चलने लगी थी। ला कॉलेज रोड की धूल भरी सड़क से बचने के लिए (जो तब म्यूनिसिपैलिटी के अधीन न आयी थी और जहाँ पाँव टख़नों तक धूल में धँस जाते थे) वे ला-कॉलेज-होस्टल की दीवार के साथ-साथ जा रहे थे। होस्टल के अन्दर बरामदे में घूमता हुआ कोई बेफ़िक्रा छात्र कोई फ़िल्मी गीत अलाप रहा था।

चेतन को कोई बात न सूझ रही थी। अपने कोट को सीने पर और भी कसते हुए उसने कहा, "सर्दी खूब उतर आयी है।"

"मुझे तो इन कपड़ों में भी गर्मी लगती है।"

"तुम्हारे शरीर में अभी गर्मी है। मेरी गर्मी तो अख़बार के दफ़्तर में निकल गयी।" और चेतन हँसा।

फिर दोनों चुपचाप चलने लगे।

कचहरी रोड के मोड़ पर अँधेरे में दो-तीन सिपाही छिपे खड़े थे। ज्योंही एक व्यक्ति (इस विचार से कि चौरस्ते के समीप जा कर वह उतर जायगा) बत्ती और ब्रेकों के बिना साइकिल पर गुनगुनाता हुआ गुज़रा कि उन्होंने सीटी दी। उसकी गुनगुनाहट सहसा वायुमण्डल में विलीन हो गयी, रंग उड़ गया और पाँव भी सड़क से घिसटने लगे।

"अपना नाम बताओ ?" सिपाही ने अपनी नोट बुक और पेंसल निकाल कर बिजली के प्रकाश में हो कर कहा।

"ग़लती हो गयी सरदार जी अपराध क्षमा...."

चेतन हँसा। अपराध और क्षमा—कितनी आपेक्षिक बातें हैं? वह प्रतिदिन इसी तरह की तरह बिना बत्ती और ब्रेकों के साइकिल चलाता होगा और अपने मित्रों में अपनी इस चतुराई की डींग मारता होगा, किन्तु अब वह पकड़ा गया है तो उसका वही चातुर्य उसकी ग़लती बन गया है। अपराध बन गया है। समाज की दृष्टि में अपराध प्रगट ग़लती का नाम है। बड़े-से-बड़ा अपराधी यदि अपने पाप समाज की दृष्टि से बचा सकता है तो वह पुण्यात्मा है और फिर दण्ड, क्षमा, कर्त्तव्य....इस अपराधी को क्षमा करके सिपाही अपने आप को दया का अवतार समझ कर छाती फुला सकता है। किन्तु यदि कोई बड़ा अफ़सर पास हो तो ऐसे व्यक्ति को जिसकी साइकिल की बत्ती तेल समाप्त होने के कारण बुझ गयी हो और जो सचमुच माफ़ी का अधिकारी हो, पकड़ कर चालान करके अपनी कर्यव्यपरायणता के लिए प्रशंसा भी पा सकता है।

और चेतन के ओठों पर एक मुस्कान फैल गयी।

'नीला गुम्बद' पार करके दोनों माल रोड पर हो लिये। चेतन बहुतेरा चाह रहा था कि अपनी इस नयी पत्नी को अपने हँसमुख स्वभाव का कुछ परिचय दे—और कुछ नहीं तो दो एक ठहाके ही लगाये। लेकिन वह कुछ खिन्न-सा हो रहा था। शायद उसके अर्द्ध-चेतन मन में कहीं से हीन-भाव आ बैठा था, जो श्रीमती राधारानी के ड्राइङ्गरूम को देख कर पैदा हो गया था, या फिर शायद उसके कपड़ों की कमी अज्ञात रूप से उसके मन-प्राण पर छा गयी थी।

तंग आ कर उसने अपनी पत्नी को उन नेत्री महोदया की बात सुनानी शुरू कर दी। किन्तु बहुत समझाने पर भी, ह्वाइट पेपर क्या बला है, चन्दा भली भाँति यह बात न समझ सकी....'हुँ'....'हुँ'! वह ज़रूर करती रही, किन्तु वक्तव्य लिखने-लिखवाने के सम्बन्ध में श्रीमती राधारानी की घबराहट और उनके स्थान पर स्वयं ही वक्तव्य लिखने की बात कह कर चेतन अपनी पत्नी के ओठों से जिस हँसी की आशा करता था, उसका वहाँ कोई आभास

न मिला। तब और भी खिन्न हो कर उसने अपनी पत्नी को बताया कि उसे अवश्य ही शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियों के लिए, विशेष-तया लेखकों के साथ विवाह की गाड़ी में जुतने वाली स्त्रियों के लिए और उनमें भी उसकी अपनी पत्नी के लिए ज्ञानार्जन की महत्ता उसका प्रिय विषय था। इसलिए इस सम्बन्ध में उसने एक छोटा-मोटा भाषण देना शुरू कर दिया। लेकिन तभी 'दयालसिंह मैन्शन्ज़' पर उसकी दृष्टि पड़ी और उसे याद आया कि उसे तो लाला गणेशदास से इन्टरव्यू लेना है।

दयालसिंह मैन्शन्ज़ की शक्ल आधे कटे हुए अंडे की-सी है। जहाँ से दुकानों की पाँत गोल होने लगती है, वहीं प्रसिद्ध काँग्रेसी नेता लाला गणेशदास एडवोकेट का बोर्ड लगा था। काफ़ी चौड़ी सीढ़ियाँ उनके फ़्लैट को जाती थीं। अपनी पत्नी को साथ ले जाने में उसे कुछ संकोच हुआ। उसे सीढ़ियों ही में खड़ी करके वह ऊपर गया। घंटी का बटन दबाया। नौकर ने उसे आफ़िस में बैठाया और बताया कि वकील साहब अभी आते हैं।

चेतन पाँच मिनट तक बैठा रहा, लेकिन वे नहीं आये। तब भाग कर और चन्द सीढ़ियाँ उतर कर उसने अपनी पत्नी से कहा, "घबराना नहीं, मैं अभी आया!" और वह भाग कर फिर कमरे में अपनी जगह पर जा बैठा।

वहीं बैठे-बैठे उसे पाँच मिनट और बीत गये तब उसने नौकर से फिर पूछा और उसे मालूम हुआ कि वे बस खाना खत्म ही कर रहे हैं, अभी पाँच मिनट में आ जायेंगे।

तब फिर चेतन भाग कर सीढ़ियों पर गया। अपनी पत्नी के कन्धे को थपथपाते हुए उसने कहा, "देखो घबराना नहीं, सकुचाना नहीं। अव्वल तो यह माल रोड है, यहाँ भले आदमी बसते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि एक भला आदमी कब भलाई छोड़ दे और बुराई शुरू कर दे। इसलिए यदि कोई सीढ़ियों से गुज़रने वाला व्यक्ति किसी तरह की शरारत करना चाहे तो बेधड़क हो कर उसे डाँट देना या मुझे बुला लेना। सीढ़ियाँ चढ़ते ही

सबसे पहले कमरे में हूँ !"

उसे यों आश्वासन दे कर और स्वयं आश्वस्त हो कर वह फिर कमरे में जा बैठा ।

तभी नेता महोदय धोती बाँधते बाँधते आ गये । एक निमिष के लिए चेतन ने उन्हें देखा । काला रंग; मोटा थल-थल पिल-पिल शरीर; मझला क़द; छोटी, कंधों में धँसी हुई गर्दन; उस पर बड़ा चौड़े मस्तक वाला सिर और उस पर बिना क्रीज़ की गोल-सी बनी गांधी टोपी । और चेतन सोचने लगा कि किस प्रकार ऐसे भद्दे शरीर में ऐसा प्रखर मस्तिष्क है ।

आ कर लाला जी ने एक लम्बा वक्तव्य लिखवाया—ह्वाइट पेपर तो बस ह्वाइट पेपर (कोरा काग़ज) ही है । जो अधिकार एक हाथ से दिये गये हैं, उन्हें दूसरे हाथ से छीन लिया गया है । न केवल यह, बल्कि जो अधिकार पहले प्राप्त थे उन पर भी हस्तक्षेप किया गया है । आदि-आदि....

जब चेतन वह महत्वपूर्ण इन्टरव्यू ले कर वापस आया तो उसकी पत्नी खड़े-खड़े थक कर और लगभग रुआँसी हो कर वहीं सीढ़ियों पर बैठ गयी थी ।

लेकिन इस इन्टरव्यू के प्राप्त हो जाने से चेतन की खिन्नता कुछ दूर हो गयी थी, इसलिए उसने अपनी पत्नी को तनिक गुदगुदा कर हँसा दिया ।

सीढ़ियों से उतर कर चेतन ने सोचा कि अब क्या किया जाय ? अभी सवा दस बजे थे । चेतन के मन में आया कि वापस जाये और अपनी कार-गुज़ारी दिखा कर प्रशंसा पाये । लेकिन उसे मालूम था कि प्रशंसा तो सम्पादक महोदय को मिलेगी और उसे कई घंटे काम करना पड़ेगा । किसी भव्य भवन के निर्माण का श्रेय तो इंजीनियरों ही को मिलता है, राज-मज़दूर तो बस दिन-रात काम करते हैं । उसने निश्चय किया कि आज जब इतने दिनों के बाद कुछ अवसर मिला है तो कहीं घंटे-डेढ़-घंटे सैर कर ली जाय ।

पत्नी ने कहा, "देर हो गयी है, माँ प्रतीक्षा करती होगी, इसलिए घर

चलना चाहिए !" लेकिन चेतन का मन कुछ उमंग पर था। उसने कहा, "अब तक तो इन्टरव्यू सिर पर सवार था, सैर का आनन्द तो अब आयेगा।"

और वे दोनों लारेंस की ओर चल पड़े। चेतन ने प्रकाशो का किस्सा छेड़ दिया।

विक्टोरिया गेट के पास पहुँच कर चेतन ने कहा, "आओ तुम्हें लारेंस दिखा लायें।"

"वह क्या है ?"

"यहाँ का प्रसिद्ध बाग़ है !"

"लेकिन रात बहुत बीत गयी है।"

"तो क्या हुआ ?"

और वे विक्टोरिया गेट में से हो कर चले। चिड़ियाघर की ओर संकेत कर के उसने बताया कि यह चिड़ियाघर है और वे जलचरों के तालाब के पास से हो कर गुज़र रहे हैं। दूसरी ओर बारासिंघे और मृग हैं जिनको बाहर जाने से रोकने के लिए बड़े-बड़े ऊँचे लोहे के जँगले लगे हुए हैं।

चन्दा ने उत्सुकता से इधर-उधर देखा, किन्तु सड़क की बिजली के मद्धिम उजाले में जँगले के एक हिस्से के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखाई न दिया। हाँ, सड़े पानी की गंध उसके मस्तिष्क में बस गयी और उसका दम घुटने-सा लगा।

लारेंस बाग बोटेनिकल गार्डन्स के नाम से भी प्रसिद्ध है। भाँति-भाँति के देशी-विदेशी पेड़-पौधे वहाँ लगे रहते हैं। चिड़ियाघर के तालाब से ज़रा आगे न जाने किस नाम के देशी या विदेशी दो बड़े-बड़े घने विशालकाय पेड़ हैं, जिन पर चमगादड़ विचित्र डरावने स्वर में चीखते रहते हैं। वहाँ पहुँच कर चेतन की पत्नी डर गयी—अँधेरी रात, सर्दी, ग्यारह का समय और सन्नाटा ! चेतन का हृदय भी धक-धक करने लगा....यदि कोई गुण्डा इधर निकल आये और उन्हें तंग करे तो वह क्या कर सकता है ?

उसकी तो आवाज़ भी सुनायी न देगी....दो-चार गुण्डे तो बड़ी आसानी से उसकी पत्नी तक को छीन कर ले जा सकते हैं....

तभी उसकी पत्नी ने पीछे से उसे छुआ, "मैं कहती हूँ चलिए, वापस चले चलिए।" उसकी आवाज़ रोने की हद को पहुँच रही थी, "मुझे डर लग रहा है।"

उस समय चेतन के अन्तर का पुरुष जाग उठा। डर! वह तो पुरुष है। डर उसके सामने क्या वस्तु है? और उसने साहस के साथ कहा, "नहीं-नहीं अब इतनी दूर आ कर वापस क्या जायँगे। यहाँ बड़ी रौनक हुआ करती है।" और मन में उसने सोचा—म्यूनिसिपैलिटी ने ऐसी अँधेरी जगह बिजली का बल्ब क्यों नहीं लगवाया।

लगभग सौ गज़ चल कर वृक्षों में से छनता हुआ मिण्टगुमरी हाल के बल्ब का प्रकाश सामने दिखायी दिया।

चेतन का ख़याल था कि लॉन में कुछ रौनक होगी। अभी महीना-डेढ़-महीना पहले, जब एक दिन उसे इधर आने का अवसर मिला था, उसने बारह बजे रात तक लारेंस में रौनक देखी थी। लेकिन वह भूल गया था कि सर्दी उतर आयी है और लारेंस में आने वालों के पास इन सर्दियों में अपने आप को व्यस्त रखने के लिए सैर के अतिरिक्त दूसरे भी कई साधन हैं।

यद्यपि उस प्रकाश से उसे कुछ तसल्ली हुई थी और वह रात के उस सन्नाटे में अपनी पत्नी को लारेंस का परिचय देता रहा था, लेकिन उसका अलबेलापन ठंडा पड़ चुका था और उस समय तक नहीं जगा जब तक सड़क छोड़ महारानी विक्टोरिया की मूर्ति नहीं आ गयी।

घर पहुँचा तो माँ ने रो कर कहा कि उसे दूसरे दिन ही गाड़ी पर चढ़ा दिया जाय।

उस समय तो चेतन बे-सिर-पैर के बहाने बना कर और एक-दो बार

खिसियानी-सी हँसी हँस कर सोने चला गया, लेकिन दूसरे दिन उसने माँ से क्षमा माँगी और कहा कि उसे एक जगह दफ़्तर का काम पड़ गया, जिससे देर हो गयी। उसने अपनी पत्नी से भी कहा कि वह माँ के चरणों पर गिर कर क्षमा माँगे। किसी तरह के अपराध के बिना वह अपनी सास के कदमों पर झुकी भी, लेकिन माँ नहीं मानी। वह प्रातः ही जाने को तैयार हो गयी। वह कुछ बोली नहीं, गुस्सा नहीं हुई, जाते समय हँसी भी, उसने आशीर्वाद भी दिया, किन्तु नये ज़माने के यह लच्छन देख सकने की शक्ति न रखने के कारण उसने वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

●

२६ माँ के चले जाने पर एक और समस्या चेतन के सामने आयी। उसे तो उसका पता ही न चलता यदि भाई साहब बातों-बातों में स्वयं ही इसकी ओर इशारा न कर देते।

बात यह थी कि चन्दा भाई साहब से हाथ भर का घूँघट निकालती थी। दोपहर के समय चेतन तो १२ बजे दफ़्तर चला जाता और भाई साहब काम से निबट कर एक-डेढ़ बजे आते। तब चन्दा भाग कर पिछले कमरे में जा छिपती। भाई साहब किसी पड़ोसिन को बुलाते। कहते कि तनिक चन्दा से खाना देने के लिए कह दे। वह खाना ला कर दे देती और तब तक बैठी रहती जब तक भाई साहब खाना समाप्त न कर चुकते। इस तरह भाई साहब को अपनी इस छोटी भावज से यदि कोई बात कहनी होती तो पहले वे उस पड़ोसिन से कहते, फिर वह चन्दा से कहती। इस प्रकार चन्दा का उत्तर भी उसी के द्वारा भाई साहब तक पहुँचता।

"अब घर की अपनी कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जो किसी पड़ोसिन के सामने नहीं भी कही जा सकतीं!" भाई साहब ने कहा था। "तुमने अच्छा आर्य समाजी घर में विवाह किया! मैंने कभी नहीं देखा कि छोटी भावज जेठ की छाया तक से दूर भाग जाय।"

उसी दिन चेतन ने अपनी पत्नी से कहा, "यह तुम्हारी कैसी मूर्खता

है ? विवाह के अवसर पर तो तुमने घूँघट निकाला नहीं, ससुर छोड़ ससुर के पिता तक उपस्थित थे। और अब जेठ ही से डेढ़ गज़ लम्बा घूँघट निकाले फिरती हो।"

उसकी पत्नी हँसी—अपनी मोतियों-सी उज्जल हँसी—"मैं तो माँ जी के डर से निकालती हूँ", उसने कहा, "कहिए अभी हटा दूँ ?"

"लेकिन माँ यहाँ कहाँ बैठी है ?"

"यदि उन्हें पता चल जाय ?"

"तो फिर कौन प्रलय आ जायगा ? उनका और परदादी गंगादेई का ज़माना अब बदल गया ?"

चन्दा ने उस दिन अपने पति को वचन दिया कि वह निश्चय ही घूँघट हटा देगी, किन्तु इस पर भी अपने जेठ के सामने घूँघट उठाने में उसे झिझक ही रही। जब भी वे बाज़ार में सामान खरीदने के लिए जाते तो यों होता कि एक ओर भाई साहब होते और दूसरी ओर चेतन और दोनों के मध्य घूँघट निकाले चन्दा चलती। पर्दे के कारण उसे जो कष्ट होता उसके विचार से भाई साहब आगे बढ़ जाते अथवा पीछे रह जाते। और यदि कोई ऐसी चीज़ मोल लेनी होती, जिसमें उनके परामर्श की आवश्यकता न होती, तो वे कोई-न-कोई बहाना करके चले जाते।

दीवाली का दिन था। चेतन बड़े भाई और अपनी पत्नी के साथ साँझ-समय अनारकली की सैर को निकला। यद्यपि दीवाली के दिन अनारकली की सैर का आनन्द रात ही को आता है, लेकिन चेतन और उसके बड़े भाई का यही विचार था कि दिये जलने से पहले-पहले अनारकली की सैर कर ली जाय और जो मिठाई आदि लेनी है, ले ली जाय। कारण यह था कि दिये जलते ही अनारकली में इतनी भीड़ हो जाती थी और उस भीड़ में गुण्डों का इतना आधिक्य होता था कि किसी शरीफ़ आदमी के लिए अपनी बीवी या बहन को साथ ले कर निकलना और बेइज़्ज़ती से बचना लगभग असम्भव था। उससे पिछले वर्ष दीवाली के अवसर पर अनारकली में जो हुआ था, उसके किस्से चेतन ने समाचार-पत्रों में पढ़े थे। अपने एक

मित्र की पत्नी के मुँह से सुने भी थे और उसका खून खौल उठा था—उसका मित्र अपनी पत्नी और लड़की के साथ दीवाली की रात अनारकली की बहार देखने घर से निकला था। अभी वे 'पैसा अखबार स्ट्रीट' ही में थे कि उन्होंने देखा कि स्वयं-सेवकों और सिपाहियों द्वारा सुरक्षित रस्सियों को तोड़ कर गुण्डों का अपार समूह बाढ़ पर आयी हुई नदी की तरह बह रहा है—उनके देखते-देखते एक लड़का उछल कर एक ताँगे में पिछली सीट पर बैठी हुई स्त्री के बराबर जा बैठा। इससे पहले कि अगली सीट पर बैठा हुआ पुरुष उससे कुछ कहता, वह उस स्त्री को छेड़, फिर उछल कर भीड़ में जा मिला। एक चलती मोटर के साथ लटते हुए दो-तीन युवकों को उन्होंने देखा जो अन्दर बैठी लड़कियों से मज़ाक कर रहे थे और चेतन के मित्र 'पैसा अखबार स्ट्रीट' से वापस चले आये थे।

अभी सूरज डूबा न था जब चेतन, उसकी पत्नी और भाई साहब 'नीला गुम्बद' की ओर से अनारकली में दाखिल हुए। पिछले वर्ष दीवाली के दिन जो गुण्डागर्दी हुई थी, उसके विरुद्ध समाचार-पत्रों में बड़ा हो-हल्ला मचा था। यही कारण था कि इस वर्ष महावीर दल, सेवा समिति, आर्य समाज, स्काउट्स—सभी मिल कर अनारकली के प्रबन्ध में व्यस्त थे।

"ये सब प्रबन्ध धरे-के-धरे रह जायँगे," भाई साहब ने दार्शनिकों के-से अन्दाज़ में कहा, "मुझे तो उन स्त्रियों पर हँसी आती है जो यह सब जानते हुए भी तमाशा बनने चली आती हैं।"

"और मुझे कॉलेज के लड़कों पर गुस्सा आता है," चेतन बोला, "जो ऐसी अनुचित और भोंडी हरकतें करते हैं। उनके घर माँ-बहनें नहीं क्या ?"

"माँ-बहनें !" भाई साहब हँसे, मुझे बाबूराम की याद आ जाती है।"

"बाबूराम ?"

"हमारे साथ पढ़ता था," भाई साहब ने कहना शुरू किया। "लफ़ंगा नम्बर वन था। कोई लड़की जाती (सूरत-शकल कैसी भी क्यों न हो) वह छेड़खानी करने से बाज़ न आता। एक दिन कॉलेज से छुट्टी हुई। हम लोग साइकिलों पर चले जा रहे थे कि दूर एक स्त्री एक युवती को साथ लिये

हुए जाते दिखायी दी। उसे देखते ही बाबूराम ने साइकिल बढ़ायी। उसके साथियों ने उससे बाज़ी मारने की कोशिश की। पैडलों पर पैरों का ज़ोर बढ़ गया। साइकिलें हवा से होड़ ले चलीं। लेकिन ज्योंही बाबूराम ने उस लड़की के पास पहुँच कर फबती कसी और लड़की ने मुँह घुमाया कि बाबूराम के ओठों से एक हल्की-सी चीख़ निकल गयी।

"क्या माल है!" लड़की की सुन्दरता देख कर एक ने आह भरी!

किसी ऐसे व्यक्ति की भाँति जिसे शिकंजे में कसा जा रहा हो, बाबूराम फुसफुसाया, "मेरी बहन है, ज़रा साइकिल तेज़ चलाओ!"

चेतन ने बीच बाज़ार रुक कर ठहाका लगाया।

भाई साहब ने अपने विचारों की रौ में तनिक उत्तेजित हो कर कहा, "ये कॉलेज के लड़के, जो आती-जाती लड़कियों को छेड़ते हैं, उन्हें देख कर अत्यन्त अश्लील मज़ाक करते हैं, यह कभी नहीं सोचते कि उन्हीं के मित्र उनकी बहनों को देख कर भी ऐसे ही अश्लील मज़ाक करते होंगे!"

"हमारे पाठ्य-क्रम में चरित्र और नागरिकता की शिक्षा को कोई महत्व प्राप्त नहीं।" चेतन को जैसे भाई साहब की उत्तेजना छू गयी, "स्कूलों-कॉलेजों में सन्ध्या-वन्दन, कुरान की तलावत अथवा बाइबिल का पाठ धर्म-शिक्षा का चरम-ध्येय समझ लिया जाता है। अव्वल तो इन संस्थाओं में छात्र-धर्म के नाम पर एक-दूसरे का रक्त बहाने को तत्पर रहने पर भी, धार्मिक पाठ-पूजा की ओर ध्यान नहीं देते। जो देते हैं वे बिना 'धर्म' के महत्व को समझे अंधाधुन्ध सन्ध्या-वन्दन किये जाते हैं। रहे सरकारी स्कूल और कॉलेज—वहाँ अपने धर्म के प्रति आस्था ही मिट जाती है और लड़के माँ-बाप का रुपया उड़ाने के अतिरिक्त कुछ नहीं सीखते। स्वतन्त्र भारत के स्कूल-कालेजों में ऐसा न होगा, नागरिकता की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा और दासता की बेड़ियों के कटने पर हमारा युवक...."

चेतन भाषण देने के अन्दाज़ में बड़े ज़ोर से हाथ को हवा में घुमा रहा था कि अचानक उसकी पत्नी उसे धरती में धँसती हुई दिखायी दी—पलक झपकते एक बाँह से चेतन ने और दूसरी बाँह से भाई साहब ने उसे थामा,

नहीं वह धरती में समा गयी होती अथवा औंधे मुँह गिर पड़ती ।

बात यह थी कि जब दोनों भाई कॉलेज के लड़कों की इस उच्छृङ्खलता का आधारभूत कारण जाने बिना उनके बुरे-चरित्र को कोसने में एक-दूसरे से बाज़ी ले जाने में निमग्न थे, चन्दा पूर्ववत घूँघट निकाले दोनों के मध्य चली जा रही थी । बेली राम ड्रगिस्ट की दुकान के पास से हो कर लोहारी के चौक तक धरती के अन्दर-ही-अन्दर जो नाली जाती है, उसमें कभी-कभी कुछ जगह खुली पड़ी रहती है और म्युनिसिपल कमेटी उसे कई-कई दिन तक ढकने का नाम नहीं लेती । वही नाली एक-दो जगह से उस दिन खुली पड़ी थी । चन्दा ने घूँघट तो निकाल ही रखा था । वह गढ़ा न देख पायी । उसका पाँव उसमें फँस गया । यदि दोनों भाई अचानक दोनों ओर से उसे थाम न लेते तो वह औंधे मुँह गिर पड़ती । रेशमी साड़ी जो खराब होती सो होती, टाँग अलग टूट जाती ।

जब तनिक स्वस्थ हो कर चन्दा फिर चलने लगी तो उसने पूर्ववत घूँघट निकाल लिया, बल्कि लज्जा के कारण लाल हो जाने वाले मुख को छिपाने के लिए और भी लम्बा कर लिया । किन्तु साड़ी को ठीक कर जब वह चलने लगी तो चेतन ने क्रोध के साथ पीछे से घूँघट खींच लिया ।

चन्दा ने फिर घूँघट नहीं निकाला, किन्तु सारे मार्ग उसने जेठ की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा, दृष्टि नीचे किये वह पूर्ववत चलती गयी ।

किन्तु दो महीने के बाद जब भाभी फिर आयी और उसने अपनी देवरानी को निर्लज्जों की भाँति अपने जेठ के सामने हँसते और ठहाके लगाते देखा तो उसके आग-सी लग गयी ।

चेतन की ससुराल में किसी लड़की की शादी थी और इस बात की सम्भावना थी कि शायद दोनों को वहाँ जाना पड़े । इसलिए भाई साहब ने अपनी पत्नी को बुला लिया था । उसके पत्र-पर-पत्र आते थे और फिर चेतन भी इसे ज़्यादती समझता था कि वह तो अपनी पत्नी के साथ लाहौर

का आनन्द लूटे और उसके भाई साहब दुकान की उस परच्छत्ती पर पड़े सड़ते रहें।

लाहौर पहुँच कर श्रीमती चम्पावती देवी ने देखा कि जब उसके पति दुकान से आये तो उसकी देवरानी ने न तो घूँघट निकाला—घूँघट निकालना तो दूर रहा, सिर पर कपड़ा तक नहीं लिया—न अपना स्वर ही धीमा किया और न आँखें ही झुकायीं। उसी तरह ठहाके लगाती रही। और तो और अपने आदर-योग्य जेठ से भी एक-दो मज़ाक करने में नहीं चिहकिचायी।

उसका देवर उस समय घर पर न था, नहीं वह अवश्य ही उससे इस निर्लज्जता का कारण पूछती।

इसके बाद एक दिन जब फिर चन्दा अपने जेठ की उपस्थिति में ज़ोर से हँसी तो चेतन की भाभी ने उसे रोक दिया, "ससुर-जेठ की कुछ तो शर्म होनी चाहिए बहन, आँखों का पानी क्या बिलकुल ही मर गया।"

चन्दा जब हँसती थी तो सुन्दर लगती थी। उसका मौन चेतन को न भाता था, इसलिए वह सदैव उसे हँसाता रहता था और चन्दा को हँसने की आदत भी पड़ गयी थी। जेठानी की इस डाँट से उसकी हँसी सहसा रुक गयी और ग्लानि से उसके मुँह का रंग पीला पड़ गया।

उसी साँझ आँगन के ऊपर रहने वाली विधवा चेतन की भावज को यह सदुपदेश दे रही थी :

"तुम हँसने और घूँघट उठाने की बात कह रही हो, मैं कहती हूँ, वह सिनेमा और सैर-तमाशे अपने जेठ के साथ जाती है। देखो बहन ज़माने की आँख में शर्म नहीं, अपने पति को सम्हाल कर अपने बस में रखो।"

चम्पावती ने रुद्ध-कंठ से कहा, "और मैं अपने देवर तक से घूँघट निकालती हूँ, ऊँचे स्वर से बात नहीं करती।"

"मुझे तो उस पर हँसी आती है जिसने अपनी पत्नी को इतनी आज़ादी दे रखी है।" पड़ोसिन ने रद्दा जमाया था।

किन्तु चम्पावती को न अपनी देवरानी पर गुस्सा था न अपने देवर पर। उसे तो अपने पति पर क्रोध था।

जब रात को उसके पति खाना खाने आये तो उसने कहा—

"भला वह तो बच्ची है, आप को शर्म आनी चाहिए जो इस तरह उसके हँसी-मज़ाक में योग देते हो।"

भाई साहब पूरे तितिक्षावादी थे—मीठी, कड़ुवी, तीखी, चुभती किसी बात का भी उन पर कुछ असर न होता था। वे चुपचाप खाना खाते रहे।

"जब वह आप के सामने बैठी 'हिं, हिं' करती है तो आपसे रोका नहीं जाता उसे," भाभी ने मुँह बिचका कर कहा।

"मैं उससे कह दूँगा," यह कह कर हाथ-मुँह धो, छड़ी उठा, वे सैर को चले गये थे।

किन्तु अपने पति के इस वाक्य से चम्पावती की तुष्टि न हुई थी और जब उसकी देवरानी उसके संग खाना खाने बैठी तो उसने अपने आप पर बड़ा संयम रख कर उसे समझाया कि बड़ों के प्रति छोटों का क्या कर्तव्य होना चाहिए, छोटों को बड़ों से कितना विनम्र व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार ससुर और जेठ से पर्दा करना चाहिए और किस प्रकार उनके सामने बोलना तक न चाहिए।

"पुरुष तो ऐसे ही होते हैं," चेतन की भाभी ने कहा था, "उन्हें तो लोकाचार का ज्ञान नहीं होता। इन सब बातों का ध्यान तो स्त्रियों ही को रखना पड़ता है। तुम्हारे जेठ ने बहुतेरा कहा, पर जब देवर सयाने हुए तो मैंने उन से पर्दा करना आरम्भ कर दिया!"

चन्दा ने उस समय तो अपनी जेठानी को कोई उत्तर न दिया, पर जब रात को दो बजे के लगभग चेतन दफ़्तर से आया तो उसने कहा, "अब मैं भाई साहब से पर्दा किया करूँगी!"

"क्यों?"

उत्तर में सरला चन्दा ने दिन की सारी बातें बता दीं।

गहरी रात होने के बावजूद चेतन ने एक ऊँचा ठहाका लगाया—इतना ऊँचा कि अन्दर कोठरी में सोयी चेतन की भाभी जग पड़ी और उसकी बच्ची ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। नींद भाभी की आँखों से उड़ गयी और वह उस कमरे के अंधकार ही में लेटी दत्तचित्त हो कर अपने देवर और देवरानी की बातें सुनने लगी।

किन्तु दो-तीन रातों से निरन्तर अधिक काम करने के कारण थका-हारा चेतन "वह तो पागल है" इतना कहने के अतिरिक्त कुछ और कहे बिना सिरहाने रखा दूध पी कर सो गया।

इस घटना के दूसरे दिन इतवार था। इसलिए चन्दा अपने पति की उपस्थिति में बाजा सीखने का अभ्यास कर रही थी।

एक दिन चेतन ने पड़ोस के एक विवाह में चन्दा को गाते सुन लिया था। उसके स्वर की मधुरता को देख कर उसने मन में निश्चय कर लिया था कि वह उसे नियमित रूप से गाने की शिक्षा दिलायेगा। पेट काट कर किसी-न-किसी तरह वह एक हारमोनियम भी ले आया था और उसने स्वयं एक संगीतज्ञ से एक-दो गीत सीख कर उसे सिखा भी दिये थे। उसी समय भाई साहब आ गये।

"देखिए भाई साहब मैंने कितनी अच्छी धुन सीखी है," चन्दा ने सहसा प्रशंसा पाने के विचार से कहा।

भाई साहब चुप खड़े रहे। एक शब्द भी उनके मुँह से न निकला। पहले वह इस तरह पूछती तो वे कहते, "कौन सी धुन? ज़रा सुनें तो!" पर वे चुप खड़े रहे और फिर गहर-गम्भीर वाणी में उन्होंने कहा, "चन्दा तुम मेरे सामने न गाया करो!"

चेतन आश्चर्य-चकित-सा उनके मुँह की ओर देखने लगा और फिर जब भाई साहब ने उसी स्वर में उससे कहा, "तुम मेरे सामने इतने ज़ोर से हँसा भी न करो!" तो चेतन झल्ला कर बोला—"यह नहीं हो सकता

भाई साहब; चन्दा हँसेगी, गायेगी। आप यह कैसी बात कर रहे हैं ? वह मुँह फुलाये बैठी अच्छी नहीं लगती। हँसती रहे तो अच्छी लगती है !"

भाई साहब ने इसका उत्तर नहीं दिया। केवल इतना कहा "तुम्हारी भाभी आपत्ति करती है !" और फिर चन्दा से कहा, "तुम्हें सास की तरह अपनी जेठानी का आदर करना चाहिये।"

यह अन्तिम बात चेतन के मन में लग गयी और उसने चन्दा को समझाया, "भाभी पुराने और संकुचित वातावरण में पली है। उसके विचारों और भ्रमों का कुछ-न-कुछ ध्यान रखना ही चाहिए। भाई साहब के सामने तुम नंगे सिर न रहा करो और कम हँसने की भी कोशिश किया करो।" और फिर बायीं आँख दबा कर शरारत से मुस्कराते हुए उसने कहा, "विशेषकर जब भाभी सामने हो !"

●

२७

अपने इस वैवाहिक जीवन से चेतन कुछ अधिक संतुष्ट हो और चन्दा के लाहौर आ जाने पर नीला उसे बिलकुल भूल गयी हो, यह बात न थी। उसे चन्दा अच्छी लगती थी, वह उसके साथ हँसता-हँसाता और सैर-तमाशे भी जाता था। किन्तु इस पर भी जब उसने चन्दा से सुना था कि कान्ता की शादी है और शायद उन्हें इलावलपुर जाना पड़े तो अज्ञात रूप से वह निमन्त्रण की प्रतीक्षा किया करता था। भाभी को लाहौर ले आने के लिए भी उसने इसी विचार से अनुमति दे दी थी। चन्दा सरल थी, भोली-भाली थी, उदार थी, सहृदय थी, विनम्र और संकोचशील थी। पर वह सुन्दर और शिक्षित न थी, इसी बात का खेद चेतन को रहा करता था। इतने दिन के वैवाहिक जीवन के बाद उस खेद में कमी न हुई थी, बल्कि वह कुछ बढ़ा ही था।

उन दिनों चेतन को बड़ी आकांक्षा होती थी कि यदि उसकी पत्नी सुन्दर नहीं हो सकती तो सुशिक्षित अवश्य हो जाय। सन्ध्या को दफ़्तर से आ कर,

खाना आदि खा कर वे सैर को जाते थे। गोल बाग़ की रविशों पर टहलते हुए, जब बड़ी सुन्दर बातें हो रही होतीं, चेतन को सहसा ध्यान आता कि वे इस समय को व्यर्थ ही गँवा रहे हैं। क्यों न सैर-ही-सैर में वह अपनी पत्नी को पढ़ा दे? और वह सहसा उससे पूछता :—

"वह दाल के साथ रोटी खाता है," इसकी अंग्रेज़ी बनाओ!"

बातचीत के अचानक बन्द हो जाने से चंदा कुछ उदास हो जाती और धीरे से कहती :—

"दाल की अंग्रेज़ी मुझे नहीं आती।"

"दाल की दाल ही रहने दो, शेष वाक्य की अंग्रेज़ी बनाओ।"

चन्दा सोचती....

"He eat...."

क्रोध को बरबस रोक कर चेतन कहता "ग़लत! कल क्या नियम बताया था तुम्हें?"

चन्दा चुप रहती।

"जिस वाक्य में 'ता है' या 'ती है' आये उसमें वर्ब (verb) अर्थात् क्रिया के साथ एस (s) या, ई-एस (es) लगता है।" क्रोध को किसी-न-किसी तरह दबा कर चेतन कहता और फिर एक दूसरे वाक्य की अंग्रेज़ी पूछता।

"नौकर बाज़ार से मिठाई लाता है। अंग्रेज़ी बनाओ।"

"नौकर की अंग्रेज़ी मुझे नहीं आती।" चन्दा की आवाज़ चिड़-चिड़ी होती।

"नौकर को नौकर ही रहने दो!" चेतन के स्वर में क्रोध होता।

"लेकिन बाज़ार...."

"तुम अंग्रेज़ी तो बताओ। बाज़ार को बाज़ार ही कहते हैं।"

किन्तु अंग्रेज़ी उससे फिर भी न बनती। कार्तिक की स्निग्ध-धवल ज्योत्सना गोल बाग की सुनसान वीथियों, वृक्ष-लताओं, पुष्प-पल्लवों, घास से आच्छादित भूमि-खंडों और तारकोल से काली सड़कों को स्वप्न की-सी

सुन्दरता प्रदान कर रही होती; दिन भर चंगड़ानियों की गालियाँ और कर्कश स्वर सुन-सुन कर ऊबे हुए उसके कान पत्तों की मीठी मर्मर सुनने के लिए आकुल होते; उपलों से लदी हुई दीवारों को देख कर थकी हुई उसकी आँखें इस स्वप्न-संसार का रस लेना चाहतीं; सड़क के किनारे जहाँ एक चबूतरे पर पुराने समय की एक नन्हीं-सी तोप पड़ी है, वह कुछ क्षण बैठना चाहती; पर उसका यह अरसिक पति जो कवि और कथाकार होने का दम भरता था....'ये कैसे कवि हैं,' वह सोचती....और वाक्य की अंग्रेज़ी उससे न बनती....

चेतन पहले तो झल्लाता, फिर शिक्षा पर एक छोटा-सा भाषण झाड़ता और फिर चुपचाप, तनिक जल्दी-जल्दी, चलने लगता। चलते-चलते वह आगे हो जाता और वह पीछे घिसटती आती।

हर दूसरे-तीसरे ऐसा होता। मानसिक तौर पर वह रूठता, शारीरिक तौर पर मान जाता।

अपने वैवाहिक जीवन के तीन-चार महीने बाद ही उसने एक दिन अनन्त को पत्र लिखना आरम्भ किया—

'....मैं कहता हूँ अनन्त मैंने क्या शादी कर ली ! तुम ठीक कहते हो। मैं डरपोक हूँ। मेरी दशा उस व्यक्ति की-सी है जो एक हिंस्र पशु से डर कर दूसरी ओर भागता है तो उसके सम्मुख दूसरा आ जाता है, दूसरे से भयभीत हो कर तीसरी ओर मुड़ता है तो तीसरे का सामना करना पड़ता है।

मैं डर रहा था कि मैं गिर रहा हूँ। अपने चरित्र से गिर रहा हूँ। और मैंने सोचा कि दूसरों की क्यारियों में मुँह मारने की आज्ञा देने की अपेक्षा मन के इस उद्दंड पशु को अपनी एक निज की क्यारी बना दूँ। पर कदाचित् मन के इस पशु को दूसरे की खेतियों में मुँह मारना ही अधिक रुचता है।

दूसरे की आलमारी में लगी हुई पुस्तकें अनन्त बड़ी अच्छी

लगती हैं। उन्हें पढ़ने को बड़ा जी चाहता है। उन्हें पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है, पर जब हम उन्हें खरीद लेते हैं तो वे प्रायः अनपढ़ी और उपेक्षित हमारी आलमारियों में पड़ी रहती हैं।

मेरे मन में सदैव द्वन्द्व मचा रहता है। चन्दा सीधी-साधी, भोली-भाली लड़की है। सहृदय, भावुक और उदार! किन्तु मुझे उसके ये गुण नहीं भाते। जब वह मेरे सामने आती है तो मैं अनायास ही नीला से उसकी तुलना करने लगता हूँ....'

चेतन अभी इतना ही लिख पाया था कि चन्दा उसके पास आ गयी। चेतन ने जल्दी से पत्र मेज के दराज़ में रख दिया।

"क्या लिख रहे थे?" पत्नी ने हँसते हुए पूछा।

"यों ही एक कविता आरम्भ की थी"

"सुनाइए।"

"खत्म होने पर सुनाऊँगा।" उसने कहा और दीर्घ-निःश्वास भर कर बोला...."लेकिन तुम कविता-अविता क्या समझोगी? काश कहीं तुम भी कुछ परिश्रम करके थोड़ा-बहुत पढ़ लेतीं!" फिर सहसा बात का रुख बदल कर उसने पूछा, "वह पुस्तक पढ़ डाली तुमने?"

मैंने पढ़नी आरम्भ की थी पर....।"

चेतन ने उसके मुख की ओर देखा। निर्निमेष वह देखता रहा और वहीं उसके मुख पर उसे किसी दूसरे मुख की रेखाएँ बनती दिखायी दीं और उसने बड़े प्यार से हल्की-सी चपत उसके गाल पर लगा दी।

उसकी पत्नी चकित-सी खड़ी उसकी ओर देखती रही। तब चेतन ने अपने प्रिय विषय 'शिक्षा' पर एक छोटा-सा भाषण दे डाला।

"जवानी के चार वर्ष तो चन्दा यों ही बीत जायेंगे। यों, फुर से!" और उसने चुटकी बजायी, "पता भी न चलेगा। यौवन में शारीरिक आकर्षण ही पति-पत्नी को एक-दूसरे के समीप रखता है। किन्तु युवावस्था बीतते देर नहीं लगती और समय आ जाता है कि पति के लिए घर में कोई आकर्षण नहीं रहता। पति-पत्नी को नहीं समझ पाता और पत्नी पति को।

यदि तुम मुझ-सी अध्ययनशील बन जाओ चन्दा, साहित्य में तुम्हें भले-बुरे की तमीज़ हो जाय तो हमारे बीच पति-पत्नी के बदले संगी और संगिनी का नाता स्थापित हो जायगा, हम एक-दूसरे को भली-भाँति समझते जायँगे और दिन-प्रति-दिन हमारे प्रेम की ज़ंजीर मज़बूत होती जायगी।"

चन्दा चुपचाप अपने पति की ओर देखती रही। फिर उसने धीरे से कहा, "मैं पढ़ने लगती हूँ तो मुझे नींद आ जाती है।"

"यह नींद तो प्रगति की घातक है। नींद आलस्य है, नींद मृत्यु है।" और चेतन को पता न था कि वह क्या बक रहा है। वह कहता चला गया —"अज्ञान भी एक नींद है चन्दा—महानिद्रा-सी भयानक! इस महानिद्रा पर विजय पाने के लिए तुम्हें अपनी साधारण नींद से कुछ घड़ियों का त्याग करना होगा, नहीं तो अज्ञान की महानिद्रा अपने अंधकार से तुम्हें लील जायगी।"

चन्दा ने तनिक हँस कर कहा, "ब्याह होने पर मैं समझा करती थी कि पढ़ाई समाप्त हो गयी, किन्तु मैं आपके आदेश का पालन करने की पूरी कोशिश करूँगी।"

"तुम्हारी पढ़ाई वास्तव में अभी आरम्भ हुई है।" चेतन ने कहा, "ज्ञान जाग्रति है और जाग्रति मानव को किसी समय भी अग्राह्य न होनी चाहिए।"

मैं और अधिक लगन से पढ़ने का यत्न करूँगी।"

और वह बाहर जा कर चारपाई पर लेटे-लेटे पढ़ने लगी।

चेतन ने पत्र निकाला और उसे फिर लिखने लगा, किन्तु अपनी पत्नी की सरलता और सहृदयता उस पर कुछ ऐसी छा गयी कि वह उस पत्र को और आगे न बढ़ा सका। पढ़ कर उसने उसे फाड़ दिया। मन-ही-मन अनन्त को सम्बोधित करके उसने केवल इतना कहा—"तुम नहीं जानते अनन्त मेरे मन में कैसा द्वन्द्व मचा रहता है, प्रति दिन मुझे कैसी यन्त्रणा सहनी पड़ती है।"

२८ आख़िर वह निमन्त्रण आ गया, जिसकी प्रतीक्षा चेतन इतने दिनों से मन-ही-मन कर रहा था। इलावलपुर में उसके ससुर की ननिहाल थी। वहीं उनके मामा की पोती का विवाह था। ससुर के ननिहाल से साधारणतया दामाद को दूर का भी वास्ता नहीं होता, किन्तु पंडित दीनबन्धु और वेणीप्रसाद को वास्तव में उनके मामा ही ने पाला था। दोनों बच्चे ही थे, जब उनके सिर से उनके पिता की छाया उठ गयी थी। नाना भी जीवित न थे, किन्तु मामा ने अपने इन भानजों को अपने बच्चों से भी अधिक समझा। पंडित वेणीप्रसाद ओवरसियर हो गये, पंडित दीनबन्धु ने भी खूब व्यापार किया। इस प्रकार उन्होंने जो कमाया वह इस पिता-तुल्य अपने मामा को भेजते रहे। यही कारण था कि प्राइमरी स्कूल का अध्यापक होने पर भी मामा ने दूर-दूर तक ईंटों के भट्टों का व्यवसाय फैला रखा था और इलावलपुर छोड़, वहाँ से बाईस मील दूर, जालन्धर में आ कर अपना एक पक्का मकान बनवा लिया था। उनके लड़के हरमोहन और कुलदीप राज-कुमारों की भाँति रहते थे और हरमोहन के बारे में तो एक बार इतना भी सुना गया था कि मामा उसे विलायत तक भेजने की सोच रहे हैं।

मामा के बड़े लड़के चूनीलाल की मृत्यु हो चुकी थी। गर्मियों के दिनों में अपनी कुमैत घोड़ी पर सवार हो कर अपने एक दूर के भट्टे पर गया था। मार्ग में उसे प्यास लगी! एक खेत में पक्के-हरे तरबूज़ बिखरे थे। उतर कर उसने दो बड़े-बड़े तरबूज़ तोड़े। हथेलियों का ज़ोर दे कर उनकी फाँकें कीं और खा गया। प्यास तो गयी, परन्तु भट्टे पर पहुँचते-पहुँचते पेट में तीव्र शूल उठने लगा। जाते ही धरती पर लोट गया। ऊसर, उजाड़ स्थान, समीप के गाँव में कोई हकीम न वैद्य, हैज़े का सख़्त दौरा, सन्ध्या होते-होते तड़प कर ठंडा हो गया।

इस चूनीलाल की बड़ी लड़की कान्ता का विवाह था। माँ-बाप के मर जाने के बाद दादा ने उसे अपनी दूसरी पोतियों से कहीं ज़्यादा लाड़ से पाला था। और वह चाहता था कि उसकी शादी भी ऐसी धूम-धाम से करे कि बच्ची को पिता का अभाव न खटके। चन्दा कान्ता के साथ खेली-कूदी

और बड़ी हुई थी। उसे कान्ता ने स्वयं अपने हाथ से पत्र लिखा था और अनुरोध किया था कि वह अपने साथ जीजा जी को भी लाये। पर जीजा जी तो दूर रहे, चन्दा स्वयं भी जाने के लिए कुछ वैसी आतुर न थी।

बात यह थी कि चेतन के रोज़-रोज़ के भाषणों से तंग आ कर अन्त में चन्द्रा नियमित रूप से स्कूल जाने लगी थी। "यदि आप मुझे सचमुच शिक्षित देखना चाहते हैं," उसने कहा था, "तो आप मुझे किसी स्कूल में दाखिल करा दें। आप स्वयं मुझे न पढ़ा सकेंगे। एक शब्द पढ़ायेंगे तो चार बार झिड़केंगे और चार घंटे लैक्चर देंगे।" उसने यह बात इतने भोले-पन से कही थी कि चेतन हँस दिया था और उसने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था और वह बड़े शौक से पढ़ने लगी थी। उसकी अध्यापिका का कहना था कि उसने अत्यन्त प्रखर बुद्धि पायी है। चन्दा को स्वयं भी पढ़ने का बहुत शौक हो गया था और जो भी समय उसे मिलता, उसमें वह पढ़ने में लगी रहती। वह जब दाखिल हुई तो लड़कियों ने एक बार सारी पुस्तकें समाप्त कर ली थीं, पर उसकी अध्यापिका ने विश्वास दिलाया था कि यदि चन्दा जी लगा कर पढ़ेगी तो वह तीन महीने ही में हिन्दी-रत्न की परीक्षा दे लेगी। यद्यपि अध्यापिका ने यह भी आश्वासन दिलाया था कि यदि वह फ़ेल हो गयी तो भी दूसरे वर्ष उसे 'भूषण' में दाखिल कर लिया जायगा, पर चन्दा असफल न होना चाहती थी। 'रत्न' में पढ़ने वाली छोटी-छोटी लड़कियों में बैठते हुए उसे पहले ही बड़ी लज्जा आती थी, असफल हो कर वह उनमें कहाँ बैठ सकेगी? और उसने जी-जान से पढ़ना शुरू कर दिया था।

यही कारण है कि उसे निमन्त्रण मिला तो वह स्वयं इलावलपुर जाने के लिए कुछ उतनी व्यग्र न थी। चेतन जब दफ़्तर से आया तो उसने अपने पति से अपने जाने का ज़िक्र नहीं किया। "कान्ता की शादी है" उसने कहा, "ताऊ जी का पत्र आया है। कान्ता और नीला ने आपसे आने का अनुरोध किया है।" चेतन को संक्षिप्त में उसने पत्र का सारांश बता दिया, पर अपनी ओर से किसी प्रकार की इच्छा प्रकट नहीं की।

चेतन का हृदय धक-धक करने लगा, पर अपने आन्तरिक उल्लास को छिपा कर उसने अत्यन्त संयत स्वर में बेपरवाही से कहा, "अच्छा लाओ तो देखें क्या लिखा है ?"

चन्दा ने पत्र अपने पति को दे दिया। वास्तव में यह निमन्त्रण हरमोहन की ओर से था। किन्तु एक अलग कागज़ पर कान्ता ने उससे आने के लिए कहा था। इस पर चन्दा के ताऊ और पिता की ओर से 'ताकीद' † थी और नीला के हाथ की लिखी हुई दो पंक्तियों में 'ताकीद मज़ीद' * थी, जिनमें उसने अपने इन प्यारे जीजा जी को सानुरोध बुलाया था।

"आजकल दफ़्तर में बड़ा काम है," चेतन ने पत्र पढ़ कर लौटाते हुए कहा, "दो सम्पादक तो बीमारी के कारण छुट्टी पर गये हैं, तीसरा बीमार होने के फ़िक्र में है। फिर भाई मैं तो ब्याह-शादी के झमेलों में बड़ा घबराता हूँ, फिर शादी नगर में हो तो बात भी है, यहाँ जाना होगा उनके गाँव में...."

"हाँ विवाह तो वे अपने यहाँ ही करेंगे!" चन्दा ने कहा, लेकिन इलावलपुर गाँव नहीं कस्बा है!"

"अरे यहाँ के गाँव और कस्बों में कौन-सा बड़ा अंतर होता है ? मैं तो अपने सम्बन्धियों तक की ब्याह-शादियों में शामिल नहीं होता फिर...."

बात काट कर उसकी पत्नी ने कहा, "फिर निकट-सम्बन्धी हों तो भी कुछ बात है, आप को दफ़्तर में काम है और मैं स्कूल से छुट्टी लेना पसन्द नहीं करती। कान्ता की बात ज़रूर है। उससे मिलने को जी चाहता है, किन्तु उसे एक बार यहाँ बुला लेंगे। वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं।"

अन्तिम बात सुन कर चेतन ज़रा बौखलाया। वह सोचता था उसकी पत्नी अनुरोध करेगी, वह 'न' 'न' करेगा और आखिर बड़ी मुश्किल से, उस पर एहसान का बोझ लादते हुए, जाने को तैयार हो जायगा। पर चन्दा की यह बात सुनकर क्षण भर के लिए वह अप्रतिभ-सा उसके मुँह की ओर

---

† ताकीद = अनुरोध। * ताकीद-मजीद = और भी अनुरोध।

तकता खड़ा रहा। फिर उसने शीघ्र ही पैंतरा बदला।

"दूर-निकट की बात नहीं," वह बोला, "प्रायः भाई-भाई भी इतने दूर चले जाते हैं कि शत्रु उनसे समीप जान पड़ते हैं। इसके विपरीत पराये कई बार इतने समीप आ जाते हैं कि अपने हो जाते हैं। प्रश्न समय का है। मेरे पास समय कम है।" फिर कुछ रुक कर वह बोला, "किन्तु मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे पिता और ताऊ तो उन्हें अपना-सा ही समझते हैं। इसलिए यह तो एक तरह से उन्हीं के यहाँ जाना है। निमन्त्रण भी तो उन्हीं की ओर से आया है, कहीं वे हमारे न जाने का बुरा न मानें?"

और वह कुछ क्षण चुप रहा ताकि चन्दा पर इस तर्क की प्रतिक्रिया जाने। पर उसका मुख भाव-शून्य था। चेतन ने फिर कहा—

"तुम इतने महीनों से इस ब्याह की बात कर रही थीं, मुझे साथ चलने को तैयार कर रही थीं, अब...."

"पहले मुझे कोई परीक्षा तो पास करनी न थी। शादी-ब्याह में शामिल होती रही तो दे चुकी परीक्षा और कहीं फ़ेल हो गयी तो आप ही जान खायेंगे।"

चेतन हँसा, "वहाँ कौन से इतने दिन लगेंगे, चार-पाँच दिन के लिए ही तो जाना होगा।"

चन्दा चुप रही। वह सोच में पड़ गयी। फिर लम्बी साँस ले कर चेतन ने कहा:

"और मैं सोचता हूँ इस बहाने तुम्हें भी कुछ आराम मिल जायगा और मैं भी समाचार-पत्र की इस चक्की से कुछ दिनों के लिए छुट्टी पा लूँगा।

अपने आराम की बात तो शायद चन्दा पर उतना असर न डालती, पर अपने पति के लिए हँसी-खुशी के दो दिन उपस्थित करने को वह झट से तैयार हो गयी।

२८ पाँच के बदले चेतन को वहाँ पन्द्रह दिन लग गये !

कई बार जीवन में कोई ऐसी छोटी-सी घटना घटती है जो हमारे जीवन की समस्त धारा को बदल देती है। न केवल यह, बल्कि कई बार वह छोटी, नित्य प्रति घटने वाली असंख्य साधारण घटनाओं में से एक घटना हमारे सम्पर्क में आने वालों की जीवन-धाराओं को भी पलट देती है और हमारे जीवन की ऐसी महत्वपूर्ण घटना बन जाती है कि उसका प्रभाव जीवन-पर्यन्त हमारे मन पर रहता है।

चेतन के ससुर के मामा की इस पोती का विवाह भी चेतन, चन्दा और नीला के जीवन में एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना बन गया।

वसन्त के आरम्भ की सुन्दर सन्ध्या थी; सूरज पश्चिम की सुनहरी झील में धीरे-धीरे उतर रहा था; उसकी सुनहरी किरणें नाचते हुए मोर पंखों-सी आकाश में गोलाकार फैल रही थीं, और चेतन अपने साले रणवीर के साथ इलावलपुर को चला जा रहा था।

चन्दा को उसने पहले भेज दिया था और स्वयं एक कवि-सम्मेलन में भाग लेने के लिए जालन्धर रुक गया था। वहाँ उससे जाने क्या बदपरहेज़ी हो गयी कि इलावलपुर के लिए गाड़ी में सवार होते समय तक उसके सिर में तीव्र पीड़ा होने लगी। इलावलपुर के स्टेशन पर जब वह उतरा तो उसका शरीर बुरी तरह काँप रहा था।

अपना हाथ रणवीर की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "रणवीर ज़रा मेरा हाथ तो देखो, मुझे बेहद जाड़ा लग रहा है।"

"जीजा जी आप का शरीर तो तवे की तरह गर्म है।" रणवीर ने उसकी कलाई छूते ही दुश्चिन्ता से कहा।

"ज़रा तेज चलो, मेरा जी घबरा-सा रहा है।"

दोनों और तेज़ चलने लगे।

रास्ते की धूल से चेतन का सफ़ेद पायजामा मैला हो रहा था और मन-ही-मन वह सोच रहा था कि उसके पास तो कोई दूसरा पायजामा भी नहीं।

कस्बे के बाहर एक जौहड़ में अत्यन्त दुर्गन्ध भरा पानी इकट्ठा हो रहा था। उसमें एक-दो बेडौल-से सूखे पेड़ों के तने थे। किनारे पर कुछ टूटी हुई बैल-गाड़ियों के पहिए, जुए, ऊंठने, उलारू आदि इधर-उधर बिखरे पड़े थे। एक बे-पहिए की पूरी-की-पूरी लँडूरी बैल-गाड़ी भी एक ओर पड़ी थी। इर्द-गिर्द कूड़े के ढेर थे। एक सूखा टेढ़े-मेढ़े तने वाला पीपल का पेड़, जिसके सिर पर ही केवल चन्द हरी टहनियाँ लहरा रही थीं, इस सारे दृश्य को एक दार्शनिक की उदासीनता से निरख रहा था।

तीव्र गति से चलते और ज्वर के वेग से काँपते हुए चेतन को यह सब अत्यन्त नीरस और उदास प्रतीत हुआ। उसका जी मतलाने लगा और जब वह तीन-चार सँकरी दुर्गन्धयुक्त, गन्दी-मैली, गलियों से गुज़र कर मामा चिरंजीतलाल के पक्के तिमंज़िले मकान के बालाखाने पर पहुँचा तो उसे ज़ोर की क़ै हुई।

रणवीर ने नीचे जा कर बताया कि जीजा जी को ज्वर हो आया है और वह पानी ले कर फिर ऊपर को भागा।

अतीव पीड़ा से फटे जाते-से सिर को थामे, नाली पर बैठे-बैठे, ज्वर के वेग से जलती-तपती आँखों से चेतन ने देखा कि एक लड़की भागती-भागती आयी और देखते-देखते उसने अन्दर चौबारे में बिस्तर बिछा दिया और रणवीर से कहा कि जीजा जी को वहाँ लिटाये।

कुल्ला करके, वैसे ही सिर थामे, रणवीर के सहारे जब वह बिस्तर पर जा लेटा और जब उस पर लिहाफ़ डाल दिया गया तो उसने अपने मस्तक पर ठंडा, प्यार भरा हाथ फिरता हुआ महसूस किया और उसके कानों में आवाज़ आयी—मधुर और स्नेह भरी—"जीजा जी!"

चेतन को बड़े ज़ोर का कम्पन को रहा था। ज्वर की तीव्रता के कारण उसकी आँखें भट्टी की तरह तप रही थीं। उससे बोला न जाता था लेकिन नीला का स्वर पहचान कर उसे बड़ी ही सान्त्वना मिली। लिहाफ़ के अन्दर उसकी आँखें भर-सी आयीं। पुनः जब नीला ने प्यार से उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसे आवाज़ दी तो उसने लगभग गीले, थरथराते

स्वर में कहा :

"नीला, सिर फटा जा रहा है।"

इस बीमारी में चन्दा अपने पति के पास ज्यादा नहीं आयी। जब सिर-दर्द से व्याकुल हो कर चेतन ने उसका नाम ले कर पुकारा तो वह एक बार आयी और सहमे हुए स्वर में उससे कहा—

आप मेरी माँ को यहाँ मुँह दिखाने योग्य न रहने देंगे। यह जालन्धर या बस्ती नहीं, यह गाँव है। बड़े पुराने विचारों के लोग रहते हैं यहाँ। आपको जिस चीज़ की ज़रूरत होगी उसका मैं पूरा-पूरा ख़याल रखूँगी। मैं नीला से कहे देती हूँ कि आपकी आवश्यकताओं की ओर वह पूरा-पूरा ध्यान देगी। मेरे माता-पिता की इज्ज़त का ख़याल रखें—मुझे नाम ले कर न पुकारें!"

और अत्यन्त अनुनय के स्वर में यह सब कह कर वह भाग गयी थी। नीला से कुछ कहने की आवश्यकता ही चेतन को न पड़ी थी, क्योंकि अपने जीजा जी की आवाज़ सुनकर वह चन्दा के पीछे ही भाग आयी थी।

चेतन के कमरे में उस समय बच्चे शोर मचा रहे थे और उसका सिर फटा जा रहा था। "भगवान के लिए इनको यहाँ से भगाओ!" चेतन ने सिर थामते हुए किसी-न-किसी तरह कहा।

नीला ने बच्चों को झिड़क-डाँट कर भगा दिया, किवाड़ भेड़, कुंडी चढ़ा दी और चेतन के सिरहाने आ बैठी। चेतन उस समय पीड़ा से कराह रहा था। नीला धीरे-धीरे उसका सिर दबाने लगी।

इसके बाद चेतन पर कुछ बेहोशी-सी छा गयी। नीला का स्वर जैसे कहीं बहुत दूर से आते हुए, मीठे मद-भरे संगीत की शांति-प्रद तान-सा उसके कानों में आता रहा। नीला क्या-क्या बातें करती रही, उसे यह सब याद नहीं। लेकिन उस अर्ध-चेतनावस्था में भी उसकी कुछ बातें चेतन के मानस-पट पर अमिट रूप से अंकित हो गयीं।

....उसके लम्बे-लम्बे घुँघराले बालों में अपनी कोमल अँगुलियाँ फेरते

हुए नीला ने कहा था, "जीजा जी तुम्हारे बाल कितने सुन्दर हैं ! लम्बे, काले घुँघराले...."

....और फिर पूछा था, "क्यों जीजा जी ! ये घूँघर आप ने कैसे बनाये हैं, या अपने आप बन गये हैं ? मेरे तो बाल ऐसे नहीं बन पाते। लम्बे तो हैं, पर घुँघराले नहीं।"

और उसने अपनी वेणी ले कर जीजा जी को अपने बाल दिखाये थे कि वे कैसे कोमल और लम्बे हैं, पर घुँघराले नहीं।

...."जीजा जी मैं तो ब्याह न करूँगी। कोई मेरी शादी बरबस थोड़े ही कर देगा।"

...."क्यों जीजा जी, जब लोग ब्याह के बाद ब्याह को कोसते हैं तो वे क्यों करते हैं शादी ? न करें ! सुख से रहें। मैं तो कभी न करूँगी। मैं तो साफ़-साफ़ कह दूँगी पिता जी से।"

और उसने अपनी बड़ी बहन की कहानी सुनायी थी।

....मीला बहन क्या सुखी है ? विवाह के पहले जाने क्या-क्या सोचती होगी ? हवा में कितने दुर्ग बनाती होगी ? किन्तु अब तो उसकी आँखों का पानी ही नहीं सूखता। बड़े जीजा जी इंजीनियर हैं, सात-आठ सौ वेतन पाते हैं। ससुर धनी-मानी हैं, किन्तु फिर भी सुख नहीं। जब विवाह हुआ था तब बड़े जीजा जी पढ़ते थे। सास ने तीन वर्ष तक उसे पति के पास नहीं फटकने दिया। फिर सास के साथ बहन की बनी नहीं, इसलिए सास ने शोर मचाया कि यह तो बाँझ है, मैं अपने लाल का दूसरा ब्याह कर दूँगी।

और नीला कुछ क्षण चुप शून्य में तकती रही थी। फिर उसने कहा था :—

...."उस समय जीजा जी दूसरा ब्याह करने को तैयार न हुए। बाद में बहन के एक छोड़ तीन बच्चे हुए, पर उसका वैवाहिक जीवन सफल न हुआ। अब जीजा जी को शिकायत है कि जीजी कुरूप है, फूहड़ है, शिक्षित नहीं, संस्कृत नहीं !"

"ज़बरदस्ती कौन करेगा जीजा जी ? मैं विवाह करूँगी ही नहीं।"

...."बच्ची नहीं हूँ, चौदह वर्षों की होने आयी हूँ।"

और मस्तक दबाते-दबाते नीला ने उसके गालों पर हाथ फेरा।

"....जीजा जी दाढ़ी आपके बहुत बढ़ आयी है। आप हजामत क्यों नहीं बनवा लेते?" और वह हँसी थी, "मैं बना दूँ उसतरा ले कर?"

"....जीजा जी आपके ओठों पर पपड़ियाँ जम गयी हैं। इन पर ज़रा-सा मक्खन लगा दूँ।"

चेतन से कुछ बोला न गया था। उसका गला सूज गया था। उसे बड़ी तकलीफ़ थी, पर उस समस्त कष्ट और पीड़ा के होते भी उसे बड़ी पुलक और शांति मिली थी।

रात को नीला ने दूध में बनफशा उबाल कर उसके गले पर बाँध दिया।

दूसरे दिन गाँव के अस्पताल का कम्पाउंडर आया जो अपने आपको डॉ० विधानचन्द्र राय से कम न समझता था। कुनीन मिक्सचर और फ़ीवर मिक्सचर की खुराकें वह उसे पिलाता रहा, किन्तु चेतन को आराम न हुआ। हार कर उसने एक देहाती हकीम से, जो अत्तार भी था, 'अत्तरीफल ज़मानी'* मँगाया। दूध के साथ उसे पिया और जब पेट साफ़ हुआ तो वह कुछ ठीक ढंग से सोचने योग्य बना। उसने हज़ामत बनवायी, मुँह-हाथ धोया और चारपाई पर आराम से लेट गया।

एक-एक करके सारी बातें उसके मस्तिष्क में घूमने लगीं....

गले में शोथ होने के कारण वह अधिक न बोल पाया था और बातें अधिकतर नीला ही करती रही थी। लेकिन जितनी देर वह पास बैठी बातें करती रही थी, चेतन को एक अपार तुष्टि, एक अपार आनन्द का आभास मिलता रहा था।....उसके लम्बे, काले, सुकोमल, सुगंधित बाल; पतली पर मांसल अँगुलियाँ....हृदय को भेद कर, सोयी हुई भावनाओं को जगाने वाली उसकी दृष्टि....लेकिन चन्दा....

और अचानक अपनी पत्नी का ध्यान आ जाने से उसने उसे आवाज़ दी।

---

*एक यूनानी दवाई।

भाग कर नीला ऊपर आ गयी ।

बिना उसकी ओर देखे; बिना उससे दृष्टि मिलाये चेतन ने कहा, "तुम ज़रा अपनी बहन को भेज दो ।"

"क्या काम है जीजा जी ?" जैसे उसकी नाचती हुई वाणी ने पूछा ।

"तुम ज़रा उसे भेज दो ।"

और कुछ चकित-सी नीला चुपचाप चली गयी । दूसरे क्षण चन्दा उसके पास खड़ी थी ।

"कहिए !"

चेतन चुप रहा । वह सोच रहा था कि अभी जो बात उसके मन में अचानक उठी थी, उसे कहे या न कहे ।

चन्दा उसके पास बैठ गयी और उसके लम्बे-लम्बे बालों पर हाथ फेरते हुए उसने कहा :

"आपने मुझे बुलाया था, क्या हाल है अब तबीयत का ?" और एक स्निग्ध मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी ।

"तुम्हारी बला से !" चेतन ने रुखाई से कहा, "तुम्हारी ओर से कोई मरे या जिये, तुम अपनी सखी-सहेलियों और गाने-बजाने में मस्त रहो ।"

"क्यों क्या बात है ?" चन्दा का गला भर आया । उसकी मुस्कान विषाद में विलीन हो गयी और उसकी चकित आँखें पति के क्षीण और तनिक पीले चेहरे पर जम गयीं !

"मैं आज चार-पाँच दिन से बीमार हूँ । इतना ज्वर चढ़ आया तुमने पूछा भी आ कर ?"

"क्यों मैं तो बराबर आपकी ख़बर रखती हूँ । आपको किस बात का कष्ट हुआ है, नीला जो थी....।"

"नीला जो थी....नीला जो थी....नीला...." झल्ला कर चेतन ने लगभग चीखते हुए कहा, "तुम मेरे पास बैठो !"

अत्यन्त विनीत और आर्द्र स्वर में चन्दा बोली, "आप नहीं जानते, मैं आपके पास आ बैठी तो बीस तरह की बातें होंगी । कुटुम्ब की स्त्रियाँ जो

मुँह में आया बकूँगी। नीला...."

"मैं कहता हूँ चन्दा तुम पागल हो," चेतन ने खीज कर कहा, "नीला अब बच्ची नहीं, चौदह वर्ष की हो गयी है वह और मैं—देखती नहीं हो—पुरुष हूँ, दुर्बल पुरुष...."

चन्दा ज़ोर से हँस पड़ी, "आपने तो मुझे डरा ही दिया था। मुझे इस बात का डर नहीं। वह मेरी छोटी बहन है। ताऊ की लड़की हुई तो क्या, मैंने उसे बहन ही की भाँति समझा है। उसकी इज़्ज़त आपके हाथ में है। वह चंचल है, बालिका है, छोटी-मोटी ग़लती कर सकती है, पर आप तो नहीं कर सकते।"

और एक असीम, अपार, उदार विश्वास से अपने पति को देखते हुए उसने उसके मस्तक पर हाथ फेरा।

"यदि तुम मेरे पास नहीं बैठना चाहती तो फिर मुझे यहाँ से ले चलो।"

उस दृष्टि से जो स्निग्ध-स्नेह से भर कर एक बच्चे के चंचल भोलेपन को देखती है, चन्दा ने अपने पति की ओर देखा और उसके कन्धे को प्यार से थपथपा कर उसने कहा, "मैं कहीं जा तो नहीं रही, सदा आपके पास ही तो मुझे रहना है। आप ही के कहने पर मैं यहाँ आयी थी। अब ज़िस काम से आयी हूँ, उसकी समाप्ति के पहले कैसे चली चलूँ? इस तरह जाना तो बचपना होगा। बस दो-चार दिन और किसी तरह काट लें। मैं तो दिन-रात आपके पास बैठी रहूँ, किन्तु रिश्तेदारों का डर है। यों कहने को मैं चाहे नीचे आँगन में बैठी रहती हूँ, पर मेरी सारी वृत्तियाँ आप ही की ओर लगी रहती हैं।"

चेतन ने अपनी दृष्टि अपनी पत्नी की आँखों में जमा दी। इस सरल-हृदय पत्नी से कभी वह विश्वासघात कर सकता है? एक असीम दया और निर्मल प्रेम से उसके मन-प्राण प्लावित हो उठे। कितना बड़ा दिल पाया है इस नारी ने? फिर कितना भोला! नहीं जानती कि मानसिक सम्बन्ध के अतिरिक्त शारीरिक सम्बन्ध भी कोई चीज़ है। मन से मनुष्य अपने संगी का

बना रहना चाहता है, शरीर नहीं रहने देता। मन शरीर को अपने अधिकार में; अनुशासन में रखना चाहता है, किन्तु वह प्रायः बिदके हुए घोड़े की तरह भाग खड़ा होता है।

उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि इस घोड़े को ज़रा बिदकने न देगा। वह उस पर पूर्ण अधिकार रखेगा।

नीला उसके बाद कई बार आयी, पर वह तना रहा। उसे किसी चीज़ की आवश्यकता हुई तो उसने नीला को नहीं, उसकी छोटी बहन शीला को बुलाया और साँझ को जब पंडित वेणीप्रसाद अपने हिलते हुए शरीर को लिए हुए उसका हाल चाल पूछने उसके पास आ कर बैठे तो लैम्प के उस धीमे प्रकाश में, उसने धीरे-धीरे, एक-दो बातों को छोड़ कर, संकेत रूप से सब कुछ उन्हें बता दिया और सलाह दी कि नीला अब युवती हो गयी है, अब उसका विवाह कर देना चाहिए। माँ सिर पर नहीं और आप भी उतना ध्यान नहीं दे सकते....और ज़माना अच्छा नहीं....बस्ती में अपढ़ लड़कियों की संगीत...और व्यस्त रहने के लिए उसके पास कुछ है नहीं....आदि.... आदि...

इसके बाद नीला उसके पास न आयी थी। यदि चेतन को कुछ आवश्यकता भी हुई तो उसकी छोटी बहन शीला ही आयी। चेतन का दम घुटने लगा। वह चाहने लगा कि उसी क्षण उठ कर भाग जाय, सीधा लाहौर चला जाय, फिर कभी जालन्धर अथवा इलावलपुर न आये।

लेकिन इसके बाद भी उसे चार दिन वहाँ रहना पड़ा। वे चार दिन जैसे चार वर्षों-से बीते। चारपाई पर वह अकेला लेटा छत की कड़ियाँ गिनता रहा। उसे पहली बार अनुभव हुआ जैसे कमरे में से रूह उड़ गयी है और वह एक मृत-व्यक्ति-सा मुँह बाये उसके पास पड़ा है। एक ही दिन में उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया। वह योंही चन्दा को आवाज़ें देता और जब हर आवाज़ पर नन्हीं शीला फुदकती हुई आती तो मन-ही-मन झल्ला कर रह जाता।

अन्त में तीसरे दिन शीला को अपने पास बैठा कर, उसके सिर पर प्यार

से हाथ फेरते हुए, उसने पूछा था, "क्यों शीला, नीला को इधर नहीं देखा, क्या करती रहती है वह ?"

"रोती रहती है !"

"रोती रहती है, पर क्यों ?"

किन्तु इस क्यों का उत्तर वह निरीह बालिका क्या देती ? चेतन को लगता जैसे कोई उसका हृदय कचोट रहा है।

चौथे दिन भी नीला न आयी। चेतन के लिए अब पल भर भी उस कमरे में बिताना कठिन हो गया। कान्ता अपनी ससुराल से एक दिन के लिए आ कर जा चुकी थी, विवाह पर आये हुए सगे-सम्बन्धी जाने लगे थे। उसने चन्दा को बुलाया और आग्रह किया कि उसे उसी क्षण यहाँ से ले चले। कान्ता की माँ और उसकी सास ने बहुतेरा कहा कि अभी तुम्हारा जी ठीक नहीं, अभी दो-चार दिन और यहाँ रहो, पर वह न माना। आत्म-ग्लानि से उसके मन-प्राण जल रहे थे ! विवश हो चन्दा उसे ले कर चल पड़ी।

मामा चिरंजित लाल के तिमंज़िले मकान से उतरते हुए उसके मन में प्रबल आकांक्षा हुई कि यदि नीला कहीं मिल जाय तो वह उससे फिर एक बार माफ़ी माँग ले। पर उसे उतरते देख वह भाग कर कमरे में जा छिपी। चेतन को ऐसा लगा था जैसे किसी ने ज़ोर से उसके मुँह पर थप्पड़ दे मारा हो।

●

३०

कल्लोवानी के अपने उसी कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ चेतन अन्यमनस्क-सा खिड़की के बाहर देख रहा था। जिस दिन वह इलावलपुर से जालन्धर लौटा था, उसी दिन घर पहुँचते ही उसे मालूम हुआ था कि उसके दादा का देहान्त हो गया है और ग्यारह दिन तक उसके लिए वहीं रहना अनिवार्य है। यद्यपि इलावलपुर में उसका ज्वर उतर गया था, किन्तु रास्ते की थकन, गर्मी और दादा के देहान्त के बाद घर में खाने की असुविधा हो जाने के कारण वह फिर बीमार

पड़ गया था।

चेतन के दादा को मरे आज पूरे ग्यारह दिन हो गये थे और ग्यारह दिन तक उनके घर में एक प्रकार की चहल-पहल रही थी। रोना और पीटना भी हुआ था। पर चेतन के दादा ७० वर्ष के हो कर अपनी आयु पूरी भोग कर, एकादशी के शुभ दिवस परलोकगामी हुए थे। ऐसी अच्छी मौत तो सबको आये। क्योंकि पुराने खयाल के हिंदुओं में ऐसे दिन परलोक वासी होने वाला सीधा स्वर्ग जाता है, इसलिए रोने-पीटने के साथ हास-परिहास भी होता रहा था। 'सियापे' में भी दादा को (यद्यपि जीवन में वे पटवारी से गिरदावर तक न बन पाये थे) 'पंजाब का राजा' बना दिया गया था। जब सियापे की परेड के लिए घेरा बाँध कर खड़ी हुई स्त्रियों के मध्य बैठी हुई रानी (नाइन) ने अपने बारीक सानुनासिक स्वर में बैन गाया था :

"हाय हाय वे पंजाब देया राजिया !"

और मुहल्ले की स्त्रियों ने छातियाँ पीटते हुए उसका अनुकरण किया था तो बड़ी-बूढ़ियों ने सियापे के सुरताल में किसी प्रकार की रुकावट डाले बिना, उसी समान-गति से छातियों पर हाथ जमाते हुए, कहा था : "राजा, सच्च राजा !"

बूढ़े लोगों के मरने पर दुख के बदले सुख अधिक मनाया जाता है। चेतन के दादा की अरथी भी बाजे-गाजे के साथ निकली थी; गुलाल से सिर-मुँह रँगे गये थे; छोहारों, तालमखानों और भुने हुए चावलों की वर्षा अरथी पर की गयी थी। लेकिन उनकी मृत्यु पर घर में दुख भी कम न था। एक तो वे इतने बूढ़े न दिखायी देते थे, फिर वे इतने बीमार न पड़े थे और फिर उनकी उपस्थिति पंडित शादीराम के हाथों दुखी उस घर की आत्मा पर एक शांत, सुखद लेप का काम देती थी। इन ग्यारह दिनों में स्वयं चेतन की आँखों के सामने कई बार दुनिया के तीन-पाँच से बेखबर, भोले, उदार धर्मपरायण दादा का चित्र घूम गया था। रह-रह कर चेतन को उन दिनों की याद आ जाती, जब उनके दादा ने अपनी कमज़ोर आँखों से महीनों चूल्हा झोंका था।

'कलायत' के स्टेशन पर रामानन्द को और 'सैला खुर्द' के स्टेशन पर चेतन को पं० शादीराम ने जिस निर्दयता से पीटा था, उसकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए (ज्योंही पंडित जी की बदली रिलीविंग में हुई) माँ अपने सब लड़कों को जालन्धर ले आयी थी। (बहाना सीधा था कि रिलीविंग में जब पंडित जी स्टेशन घूमेंगे, बच्चों की पढ़ाई खराब होगी।) चेतन के बड़े भाई को भी माँ ने अपने मायके से, जहाँ पिता की मार के डर से उसने उसे भेज रखा था, वहाँ बुला लिया था और वे सब स्थानीय स्कूल में शिक्षा पाने लगे थे। इसके बाद यद्यपि दो-तीन साल रिलीविंग में रहकर चेतन के पिता मकेरियाँ पर पक्के नियुक्त हो गये थे और मकेरियाँ में एक छोड़ दो हाई स्कूल थे, लेकिन माँ बच्चों को वहाँ न ले गयी थी। जब चेतन और उसके भाइयों को जालन्धर ही में छोड़, महीने के वेतन को शराब अथवा जुए की भेंट होने से बचाने के लिए, माँ अपने पति के पास मकेरियाँ चली जाती तो चेतन के दादा ही सबको खाना पका कर खिलाते। अपने बूढ़े दादा के स्नेह-सौहार्द, सरलता, सहृदयता का ध्यान आ जाने से चेतन की आँखों में आँसू छलक आते। यद्यपि स्वभाव उनका भी कर्कश था, किन्तु हृदय इतना कोमल था कि उनकी सब कर्कशता भूल जाती थी। वे दुर्गा के उपासक थे। बच्चों को खाना खिला, स्कूल भेज, वे स्वयं कुएँ पर जा कर स्नान करते और फिर दो-अढ़ाई घंटे तक चण्डी का पाठ करते। पाठ-पूजा से निवृत्त हो कर वे अपने लिए खाना तैयार करते और कई बार दो बजे और कई बार ढाई-तीन बजे जा कर खाना खाते। वे पीटते थे, लेकिन प्यार भी करते। पीटने पर पश्चात्ताप भी करते। वे चण्डी के उपासक हैं, इसलिए उनके स्वभाव में कठोरता और कर्कशता आ गयी है—ऐसा उनका विचार था। किन्तु यह कठोरता उनके हृदय को कठोर न बना सकी थी। वे बच्चों पर नाराज़ होते, पर जब वे रोने लगते तो उन्हें मिठाई के लिए पैसे भी दे देते। जब चेतन के पिता सब कुछ गँवा देते, वेतन तक न भेजते, तो वे उन्हें गालियाँ देते, किन्तु यदि कहीं ऐसे समय पंडित शादीराम स्वयं वहाँ आ पहुँचते और अपने पिता के पाँव पर सिर रख देते तो चेतन के दादा

उनके सब दोष क्षमा कर देते और पेन्शन से जोड़-जोड़ कर रखे हुए रुपये उन्हें ला कर दे देते। चेतन के पिता प्रायः उनसे इस प्रकार रुपये हथिया ले जाते। किन्तु जानते हुए भी उसके दादा हर बार ठगाई खा जाते।

वहीं चारपाई पर लेटे-लेटे दादा का समस्त जीवन चेतन के सामने घूम गया। अपने इस पुत्र के लिए उन्होंने कितने कष्ट न उठाये थे ? चेतन के पिता तीन वर्ष के थे जब उनकी माँ मर गयी थी। तब उसके दादा ने जिस कठिनाई से उन्हें पाला, महामारी के उन दिनों में, जिस प्रकार वे शिशु को पीठ से लगाये हुए घूमते थे, इसका ज़िक्र कई बार आँखों में आँसू भर कर दादा ने किया था। और इस सब तपस्या का फल उन्हें क्या मिला ? सदा की जलन, दुःख और पीड़ा ! पेन्शन ले कर वे इसलिए घर आये थे कि उनकी आँखों की ज्योति मंद पड़ गयी थी और उनका विचार था कि उनका बेटा, जो अब स्टेशन-मास्टर हो गया था, उन्हें जीवन के शेष दिन आराम से बिताने में सहायता देगा। उनके इस बेटे ने उन्हें यह विश्वास भी दिलाया था। पर क्या उन्हें कभी एक घड़ी को भी सुख मिला ? एक घड़ी को भी शांति नसीब हुई ? वे अपने इस पुत्र की करतूतों पर सदैव जलते-भुनते रहे। बुढ़ापे में प्रायः अपनी अंधी आँखों से अपने पोतों के लिए खाना पकाते रहे। और बड़ी मितव्ययिता से जोड़ा हुआ (आठ रुपये प्रति मास) पेन्शन का धन सदैव अपने इस स्टेशन-मास्टर पुत्र और उसके बेटों पर खर्च करते रहे।

चेतन को लगा जैसे उसके दादा सदैव एकाकी रहे। अपने इस पुत्र के हाथों (अपने पौत्र ही की भाँति) उन्होंने भी कम यातनाएँ नहीं सहीं। अपने इकलौते पुत्र को वे सदैव धर्मपरायण, सत्यवादी, साधु-सन्तों, गौ-ब्राह्मणों की सेवा करने वाला, धन का यथेष्ट भाग दान-पुण्य तथा अन्य सत्कार्यों में लगाने वाला देखना चाहते थे। उसे शराबी, जुआरी, वेश्यागामी, धन को पाप के कामों में गँवाते देख कर, उन्हें कितना दुःख, कितना क्लेश, कितनी आन्तरिक व्यथा होती होगी ? किन्तु इतने पर भी जब यही दुराचरी पुत्र उनके सामने आ कर अपनी विपत्तियों का रोना रोता तो उस वृद्ध का

सरल-हृदय द्रवित हो उठता और वे अपना तन-मन तक उसके अथवा उसके बच्चों के हेतु अर्पण करने को तत्पर हो जाते।

माँ ने चेतन को बताया था कि मरने से चार दिन पहले तक वे स्वयं कुएँ पर जा कर स्नान और पाठ-पूजा करते रहे थे। अचानक उनके मूत्राशय में कुछ तकलीफ़ हो गयी। वे स्वयं जा कर हकीम नबीजान को दिखा आये और एक दिन उन्होंने उसका जोशाँदा भी पिया। फिर जब कष्ट बढ़ा तो डाक्टर बस्तीराम को बुलाया गया। फिर ऐसा दिखायी दिया कि आराम आ जायगा। पर रात को उनकी तबीयत कुछ ज़्यादा खराब हो गयी। वे अचेत हो गये। पंडित शादीराम को तार दिया गया। वे उन दिनों बहरामपुर स्टेशन पर नियुक्त थे। तार जब पहुँचा तो उस समय शायद वे पी-पिला कर बेहोश पड़े थे। सुबह उनको फिर तार दिया गया और उधर भैरों बाज़ार से कैप्टन डाक्टर लहना सिंह को बुलाया गया। पर दोनों उस समय पहुँचे जब दादा की सरल निरीह आत्मा पिंजर छोड़ चुकी थी।

पंडित शादीराम ने उसी समय शपथ खायी कि मैं अब कभी शराब न पिऊँगा और आज क्रिया-कर्म के दिन तक उन्होंने उसे मुँह न लगाया था।

"यह कम्बख्त कहता है कि इसे विश्वास नहीं आता।" उसके पिता की गरज फिर सुनायी दी। "मुझे अभी बनारसीदास ने बताया है। सब मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। और मैंने ग्यारह दिन तक शराब को हाथ तक नहीं लगाया।"

"यदि इतने दिन नहीं लगाया तो अब जो लगा लिया, अभी आज ही तो क्रिया समाप्त हुई है!" माँ ने कहा।

"तूने ही तो लड़कों को भड़काया है जो बाहर जा कर मेरी निन्दा करते हैं।" चेतन के पिता गरजे और चेतन को ऐसा लगा जैसे यह कहते-कहते उन्होंने एक लात माँ को जमा दी और वह गिर पड़ी। भाग कर वह ऊपर गया।

उसके पिता और उसका छोटा भाई गुत्थमगुत्था हो रहे थे, उसकी माँ

गिरी पड़ी थी और उसकी भाभी (जो भाई साहब के साथ उसी सुबह क्रिया-कर्म में भाग लेनेआयी थी) एक ओर सहमी खड़ी थी और क्रोध से लाल आँखें किये भाई साहब माँ को उठा रहे थे।

"मैं तुम सब को कत्ल कर दूँगा।" और अपने लड़के से अपने आपको छुड़ा कर उसके पिता लकड़ी चीरने की कुल्हाड़ी उठाने बढ़े।

जल्दी से भाई साहब ने एक हाथ से माँ को और दूसरे से छोटे भाई को पकड़ा और बाहर हो कर सीढ़ियों का दरवाज़ा लगा दिया।

दूसरे क्षण चेतन के पिता खाली हाथ लौटे। कुल्हाड़ी उन्हें नहीं मिली। उन्होंने दरवाजा खोलना चाहा। वह बाहर से बन्द था। "अच्छा !" उन्होंने अपने आप से कहा, "जैसे मैं यह दरवाजा नहीं खोल सकता ! मैं इसे तोड़ दूँगा।" और उन्होंने रसोई-घर से पीतल की गागर उठा ली। उसे सिर से ऊपर उठा कर दरवाज़े पर दे मारा। किवाड़ नये थे। एक ही चोट से क्या टूटते। तब वे गागर-पर-गागर, उन्मादी की भाँति वे किवाड़ों को तोड़ने लगे।

रात का अन्तिम पहर था। उसके पिता ऊधम मचा कर सो गये थे। उन्होंने किवाड़ तोड़ दिये थे, लेकिन भाई साहब ने नीचे डेवढ़ी के किवाड़ लगा दिये थे और वे सूखे शीशम के मोटे तख्तों के किवाड़ ! उनके सामने गागर बेचारी की क्या बिसात थी। आखिर मुहल्ले वालों ने आ कर बीच-बचाव कर दिया। भाई साहब और छोटे भाई ने माफ़ी माँग ली, पंडित जी का नशा भी टूट गया और रो-रुला कर सब सो गये। लेकिन चेतन को ज़रा भी नींद न आयी।

पास के किसी घर में घड़ी ने चार बजाये। चेतन उठा। उस ने भाई साहब और अपनी पत्नी को जगाया और आध घंटे के बाद तीनों सामान उठायें स्टेशन की ओर चल दिये।

रास्ते में भाई साहब ने कहा, "तुम्हारी भाभी साथ चलने के लिए बड़ा

आग्रह कर रही थी। मैंने कहा—'चार-छै महीने और सब्र करो, ज़रा आय बढ़ जाय तो ले चलूँ। कहने लगी—'आप तो अपनी सब कमाई छोटे भाई और भावज को खिला रहे हैं। भला उनमें कौन-से लाल लगे हैं!'—"कमाई!" भाई साहब व्यंग्य और अवसाद से हँसे, "यहाँ दुकान का किराया ही निकल जाय तो बड़ी बात है।"

रात यद्यपि बीत चली थी, पर कर्तव्यपरायण प्रहरियों की भाँति तारे अभी तक जमे खड़े थे। ऊपर की दुनिया धीरे-धीरे मन्द पड़ रही थी, नीचे का संसार जैसे अंधकार के सागर से डूब कर निकल रहा था। सड़कों पर भंगी झाड़ू दे रहे थे और प्रातः की अमल पवित्रता उड़ती हुई धूल से मैली हो रही थी। भीगी, ठंडी हवा चल रही थी, जिसे खुलती हुई दुकानों की गर्म साँसें कहीं-कहीं दम घोटने वाली बना देती थीं। भाई साहब की व्यंग्य-मयी हँसी सहसा एक अभेद्य मौन में परिणत हो गयी और वे शून्य में देखने लगे।

चेतन ने ट्रंक को दायें कन्धे से हटा कर बायें कन्धे पर कर लिया और चन्दा ने कहा, "थक गये हों तो मुझे दे दीजिए।"

●

३१

उस रात को भाई साहब किसी-न-किसी तरह भाभी से पिंड छुड़ा आये थे, लेकिन अभी उन्हें लाहौर आये महीना भी न बीता था जब भाभी के पत्रों की बढ़ आ गयी कि उसे जालन्धर के नरक से शीघ्रातिशीघ्र निकाल कर लाहौर के स्वर्ग में (जिस पर उनकी पत्नी होने के नाते उसका सहज-अधिकार था) बैठाया जाय। न केवल यह, बल्कि माँ चिट्ठी-पर-चिट्ठी लिखने लगी कि अब जब तुम कमाने लगे हो तो अपनी इस लड़ाकी बहू को बुला लो ताकि रोज़ की किल-किल से मेरा पिंड छूटे।

यह एक विचित्र बात थी कि चेतन की भाभी ने पढ़ना आरम्भ कर दिया था। माँ ने लिखा था कि काम-धन्धा छोड़ कर सारा दिन कापियाँ काली करती रहती है और पूछा था कि आखिर यह बूढ़ा तोता पढ़ कर

करेगा क्या ?—ऐसे सब पत्रों के उत्तर में भाई साहब 'एक चुप सौ सुख' के सुनहले सिद्धान्त से काम लेते थे। उस महान तितिक्षावादी को तो माँ अथवा पत्नी के पत्र क्या विचलित करते, किन्तु चेतन को ही स्वयं कुछ आत्म-ग्लानि-सी होने लगी थी। वह सोचता था—मेरे भाई अकेले रहते हैं और मैं अपनी पत्नी के साथ मौज उड़ाता हूँ, यह तो निरा स्वार्थ है। अन्त में एक दिन जब रणवीर लाहौर आया तो उसने सहसा अपनी पत्नी को उसके साथ भेजने का निश्चय कर लिया और भाई साहब से कह दिया कि आप भाभी को आने के लिए पत्र लिख दें।

चन्दा ने स्वयं तो चेतन से कुछ नहीं कहा। उसने परीक्षा पास कर ली थी और उसे छुट्टियाँ ही थीं। पर जब शाम को चेतन घर लौटा तो बाहर गली ही में मेहतरानी ने (जिसे वह सहृदयतावश अथवा मानवता के नाते आदर से चौधरानी कह कर पुकारता था) उसे रोक लिया। "बीबी जी आज रो रही थीं," उसने कहा। "उनसे क्या अपराध बन आया जो आप उन्हें भेज रहे हैं? कहती थीं—चौधरानी तू उनसे कहना मेरा यहाँ से जाने को जी नहीं चाहता।"

चेतन कुछ उत्तर दिये बिना तनिक-सा हँस कर घर चला आया था। मन-ही-मन उसे अपनी पत्नी पर बड़ी दया हो आयी। वह उसे बराबर की संगिनी कहने का दम भरता है, पर उसकी इस बराबर की संगिनी में इतना साहस भी नहीं कि अपनी इस तनिक-सी स्वाभाविक इच्छा को उसके सामने रख सके। एक बार उसके जी में आया कि यदि किसी तरह बन पड़े तो अपनी पत्नी का जालन्धर जाना रोक दे। यह वह रणवीर और भाई साहब से कह चुका था और भाई साहब ने जोश में उन दोनों को पत्र भी लिख दिये थे। माँ को उन्होंने लिखा था—मैंने प्रबन्ध कर लिया है, चम्पा को तत्काल लाहौर भेज दीजिए, और पत्नी को आदेश दिया था—पत्र देखते ही लाहौर चली आओ!

चेतन ने चुपचाप आ कर अपनी पत्नी को तैयार कर दिया, पर न जाने

क्यों उसे तैयार कर देने के बाद वह अपने आपको इतना खिन्न और क्लान्त पा रहा था कि उसने उन्हें वहीं से विदा कर दिया। अपनी पत्नी की मूक-अभिलाषा के होते भी वह उन्हें स्टेशन तक छोड़ने नहीं गया।

उनके चले जाने के बाद वह चुपचाप नाली पर बिछी हुई खाली चारपाई में धँस गया और फिर लेट गया और उस तिमंज़िले मकान के ऊपर छाये हुए खुले, निखरे, नीले आकाश के शून्य को अपलक निरखने लगा। सहसा उसका अपना मन विशाल शून्य से भर गया। एक अज्ञात, अकथ, अनाम अवसाद उसके मन-प्राण पर छा कर उसकी आत्मा को अनायास मसलने लगा। चेतन ने अनुभव किया जैसे इस अवसाद के सामने वह नितान्त बेबस है। अपने निर्जीव-से शरीर को उसने और भी ढीला छोड़ दिया और निस्पन्द लेटा रहा।

दो दिन निरन्तर वर्षा होते रहने के बाद आकाश कुछ खुला था। कच्ची, गीली दीवारों, उनसे बेतरह चिमटे हुए भीगे-भीगे उपलों, कीचड़ से भर कर बह निकलने वाली नालियों, चंगड़ों के आँगनों में पशुओं के खुरों से बन जाने वाले गोबर और कच्ची मिट्टी के तगारों और न जाने किन-किन रासायनिक द्रव्यों की मिली-जुली दुर्गन्ध सारे वातावरण पर छा रही थी; नाक में घुस कर जैसे नस-नस में चुभी जा रही थी; अनुभूति को, चेतना को, मानो शिथिल कर रही थी और चेतन एक प्रकार की अचेतावस्था में दीवार के उस पार चंगड़ानियों का शोर सुन रहा था।

साँझ के सूरज की कुन्दन-धूप गली के सिरे पर बने सरदई खिड़कियों वाले तिमंज़िले मकान के शिखर को दीपित कर रही थी और ऊपर आकाश में बिखरे हल्के सफ़ेद बादलों के टुकड़ों में आग लग आयी थी। उस ऊँचे मकान और उसके सुनहरे शिखर को देखते-देखते, चेतन को उस मकान के पैरों में किलबिलाने वाली सृष्टि का ध्यान हो आया—उस साधनहीन सृष्टि का, जिसका एक अंग वह भी था। उसने लम्बी साँस ली। जीवन....! इसके पैरों में कितनी गन्दगी, कूड़ा-कर्कट, बीमारी, ग़रीबी दुर्गन्ध, कुरूपता

बिखरी रहती है, परन्तु अपने सिर पर यह सदैव उस मकान के शिखर की भाँति स्वर्ण-मुकुट पहने रहता है। और चेतन की आँखों के सामने अपना अतीत, वर्तमान और भविष्य घूम गया और उसने सोचा—क्या वह सदैव जीवन के पैरों ही में पड़ा रहेगा? उसके ताज का मोती बनना क्या उसे कभी नसीब न होगा?

इन उदास विचारों से वह घबरा-सा उठा। उसने चाहा कि उठे और सैर करता गोल बाग तक हो आये। पर वातावरण की उदासी और सील-भरी बू कुछ इस प्रकार उसकी चेतना पर छा गयी थी कि वह अपने इन असम्बद्ध, असंगत, अस्त-व्यस्त विचारों की उलझन में फँसा वहीं लेटा, आकाश की ओर तकता रहा और मकान के शिखर पर दमकती हुई कान्ति किसी मरणासन्न रोगी के नयनों की दीप्ति-सी धीरे-धीरे अंधकार में विलीन हो गयी।

●

३२

एक सप्ताह के बाद भाभी आ गयी। और उसके आगमन के एक सप्ताह बाद ही चेतन को दूसरे मकान की खोज में रत हो जाना पड़ा।

भाभी एक बार पहले भी आयी थी। पर तब चेतन विवाहित न था और वह सब कष्ट सहता हुआ दुकान पर रहने लगा था, पर अब उसे ऐसा करना कठिन दिखायी देता था।

अपनी पत्नी को जालन्धर भेज कर, चेतन ने अपने अवकाश के समय में कुछ साहित्य-सृजन का निश्चय कर लिया था। चन्दा को वह एकदम भूल गया हो, अथवा वह अवसाद जो उस बेबसी के क्षण में, चन्दा को जालन्धर भेजने के बाद, उसके मन-प्राण पर छा गया था, सर्वथा मिट गया हो, ऐसी बात न थी। पर स्थिति कैसी भी क्यों न हो, उसे अपने अनुसार बना कर उसका अधिकाधिक लाभ उठाना, उसने बहुत पहले सीख लिया

था। अपने अवकाश और अवसाद को उसने रचनात्मक काम में लगाने का निश्चय कर लिया। उसका विचार था कि कम-से-कम पाँच-छै महीने अपनी पत्नी को नहीं बुलायेगा और इसलिए मन-ही-मन उसने एक बड़ा उपन्यास लिखने का प्रोग्राम बना लिया। किसी महान लेखक के सम्बन्ध में उसने पढ़ा था कि जब वह सैर को जाता तो अपनी कहानियों की अध-कच्ची, अस्पष्ट रेखाओं में रंग भरता और उनको उभारता-सँवारता था। चेतन ने भी यह नियम बना लिया कि सन्ध्या को आ कर खाना खाने के बाद अकेला सैर को चला जाता और अपने उपन्यास का ढाँचा तैयार करता।

उपन्यास और उसकी कला के सम्बन्ध में उसका ज्ञान नहीं के बराबर था। पुस्तकें ख़रीदने के लिए पैसे का और पुस्तकालयों में जा कर उनकी अलमारियों में भरी हुई सम्पत्ति से लाभ उठाने के लिए समय का उसके पास नितान्त अभाव था। अपने कॉलेज के पाठ्य-क्रम में उसने जो दो-एक उपन्यास पढ़े थे, उनकी कुछ धुँधली-सी ही स्मृति उसे थी। रही भाई साहब के लाये हुए उपन्यासों को पढ़ने की बात, सो अव्वल तो वे एक उपन्यास पढ़ने के बाद शीघ्र ही दूसरा लाने के विचार से उसे तत्काल लौटा दिया करते थे, फिर चेतन को पढ़ाई का शौक था और परीक्षाओं के दिनों में वह उपन्यासों को हाथ न लगाता था। इसके अतिरिक्त भाई साहब की रुचि कुछ वैसी स्पष्ट अथवा संस्कृत न थी। वे किसी तमीज़ के बिना उपन्यास पढ़ते। कई बार ऐसा हुआ कि वे कोई अच्छा उपन्यास पढ़ रहे होते, पर चेतन के पास समय न होता। फिर जब उसके पास समय होता तो वे ऐसा उपन्यास पढ़ रहे होते जिसे पढ़ना उसके विचार में समय नष्ट करने के बराबर होता।

किन्तु उपन्यास-कला के सम्बन्ध में अपनी इस अज्ञता के होते भी उसने एक बड़ा उपन्यास लिखने का प्रोग्राम बना लिया और मन-ही-मन उसका ढाँचा बना कर उसके कुछ पहले परिच्छेदों की रूप-रेखा भी तैयार कर ली :—

१. नायक अभिजात कुल का दीपक है। भोला-भाला और माता-पिता के लाड़-प्यार में पला। अभी-अभी उसने कालेज से डिग्री ली है। उसकी माँ चाहती है कि वह एक बड़े सम्पन्न घराने में विवाह करे, पर वह इनकार

कर देता है। वह कुछ और आगे पढ़ता चाहता है और इतनी जल्दी विवाह के बन्धन में बँधना उसे पसन्द नहीं ।

२. उसके पिता को रुई के सट्टे में हानि उठानी पड़ती है। यद्यपि उसका पिता उसे कुछ नहीं कहता, पर वह प्रातः-सायं उसके मुरझाये हुए चेहरे को देखता है। अपनी माँ से उसे पता चलता है कि स्थिति न सुधरी तो उन्हें दीवालिया होना पड़ेगा और उसका पिता इतना चुप है कि आशंका से उसका दिल दहल जाता है। उसे डर है कि कहीं उसका पिता अपने प्राणों पर न खेल जाय और एक दिन जब फिर उसकी माँ उससे उसी सम्पन्न घराने में विवाह करने का अनुरोध करती है तो वह मान जाता है। इस विचार से कि इससे पहले कि उसका पिता दीवालिया हो और शादी की मंडी में उसका मूल्य घट जाय, वह शादी कर ले और दहेज के आभूषणों से अपने पिता की सहायता करे।

३. वह अपने मन में भविष्य के आचरणों की एक रूप-रेखा बना लेता है। उसका विवाह हो जाता है। उदास-उदास-सा वह उसमें भाग लेता है। उसे लगता है जैसे वह शादी उसकी नहीं किसी दूसरे की है और वह दूल्हा नहीं केवल बाराती है।

४. वह अपनी दुल्हन को देखता है। उसकी सुन्दरता खड्ग की नोक-सरीखी उसके अन्तर में खुब जाती है। वह उससे प्यार भी करता है और उससे दूर भी हटता है। उस अपनी सोची हुई स्कीम को कार्य-रूप में परिणत भी करना चाहता है, पर जब वह अपनी वधू को देखता है तो उसे साहस नहीं होता। इसी द्वन्द्व में दिन बीत जाते हैं और उसके संकल्प के पाँव डगमगाते-से दीखते हैं। तभी एक दिन अपने पिता से उसका साक्षात्कार होता है। वह उनका दिन-प्रति-दिन पीला होता हुआ मुख देखता है और उसका मन एकदम कठोर हो जाता है। द्वन्द्व मिट जाता है। वह निश्चय करता है कि जो कुछ उसे करना है जल्दी करेगा।

५. वह एक झूठा पत्र अपनी पत्नी को दिखाता है। उस पत्र में उसकी पत्नी के विश्वासघात का उल्लेख है कि वह अपने ट्यूटर से प्रेम करती

थी; कि उससे विवाह करने का वचन उसने अपनी अँगुली के रक्त से लिख कर दिया था और उसने धन के लालच में उस वचन को तोड़ दिया आदि ....आदि....।

६. उसकी पत्नी यह अभियोग सुन कर भौंचक्की रह जाती है। वह इनकार करती है, पर वह नहीं सुनता और कृत्रिम क्रोध का अभिनय करते हुए, उसके गहने उतरवा लेता है और उसे साथ ले कर अपनी ससुराल जाता है और अपनी पत्नी को उसके घर के दरवाज़े पर छोड़ आता है। वह अपने पिता के नाम एक चिठ्ठी लिख देता है और हरिद्वार को चल देता है।

इसके बाद चेतन ने सोचा था कि नायक (शरत बाबू के देवदास की भाँति) मारा-मारा फिरेगा! हरिद्वार में एक लड़की उससे प्रेम करने लगेगी। पर वह उसके प्यार का प्रतिदान न देगा। अपनी भोली-भाली पत्नी और उसके प्रति किये गये पाप की याद एक दुर्धर-चट्टान बन कर उस प्रेम के मार्ग में आ खड़ी होगी। पर वह उस बाला से जितना खिंचेगा उतना ही वह उस पर मिटेगी। अन्ततोगत्वा वह उसे छोड़ कर चल देगा। इस बीच में उसके पिता की स्थिति अचानक अच्छी हो जायगी। वह अपने समधी के घर जा कर अपनी बहू को सान्त्वना देगा और नायक को खासी दयनीय दशा में खोज निकालेगा। नायक का पिता, उसकी माँ, उसका ससुर, यहाँ तक कि उसकी पत्नी तक उसे क्षमा कर देगी, पर वह अपने आपको माफ़ न करेगा। फिर कभी उसके ओठों पर हँसी न आयेगी। उसकी प्रेमिका उसके विरह में चारपाई पकड़ लेगी। वह उससे मिलेगा, पर कब? —जब उसकी अन्तिम हिचकी अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में उसके कंठ में अटकी होगी।

यह रूप-रेखा बना कर वह मोहनलाल रोड से एक मोटी कापी ले आया था। वह मैली न हो जाय, इस विचार से उसने उस पर काग़ज़ भी चढ़ा दिया था और उसके पहले पृष्ठ पर उपन्यास और उसके लेखक का नाम सुन्दर मोटे अक्षरों में लिख, नीचे-ऊपर सुन्दर बेल बना दी थी।

अवकाश रहने पर वह घर पर भी काम करता था और इस कापी को

दफ़्तर भी ले जाता था। जब रात को एक बजे के बाद काम अपेक्षाकृत कम होता तो वह कुछ लिखने का प्रयास करता।

...

भाभी के आने पर उसका यह उपन्यास धरा-का-धरा रह गया और घर में रहना अथवा वहाँ बैठ कर काम करना उसके लिए कठिन से कठिनतर होता गया।

बात यह थी जब उसकी पत्नी वहाँ थी तो भाई साहब दुकान पर सो जाते थे। अब उनकी पत्नी आ गयी तो वे घर में उठ आये थे और दुकान पर सोने की बारी चेतन की थी। परन्तु उसे अब वहाँ सोना बड़ा कठिन लगता था। जब रात के एक-दो बजे वह दफ़्तर से चलता तो उसे इतनी दूर दुकान पर जाना दूभर मालूम होता।

रहा घर, सो वहाँ इतनी जगह ही न थी कि भाई, भाभी और उनके दो बच्चों के साथ वह भी सो सके। या सो सके तो उन चंचल बच्चों की उपस्थिति में सुबह नौ बजे तक सोया रह सके। फिर सबसे बढ़ कर यह बात थी (और इसी ने वास्तव में उसके लिए उस मकान का निवास असह्य बना दिया था) कि भाई साहब जितने सुस्त, और शान्त स्वाभाव के थे, उनके बच्चे उतने ही चंचल और उद्दंड थे। इतना लड़ते-भिड़ते और शोर मचाते कि अवकाश के समय किसी प्रकार का आराम अथवा रचनात्मक काम करना नितान्त असम्भव हो जाता।

एक दिन शाम को जब वह वापस आया तो उसने देखा कि उसका प्रिय शीशे का क़मलदान (जो उसने कबाड़ी की दुकान से नगद एक रुपये में खरीदा था और जो उसकी उस थर्ड-हैंड मेज़ को सुशोभित करता था) देहरी में रखा हुआ है और भाई साहब के सपूत सुरेश महाशय उसकी लाल-नीली स्याही से अपनी छोटी बहन के मुँह पर बेल-बूटे बना रहे हैं, ताकि वह पूर्ण रूप से सीता बन जाय और वे रामलीला का खेल खेल सकें।

चेतन ने क़लमदान छीन कर मेज़ पर रखा; बका-झका; अपने भतीजे को पीटा और इसके फलस्वरूप भाभी से लड़ा, किन्तु इसका परिणाम कुछ

भी न निकला। दूसरे दिन जब वह सन्ध्या को दफ़्तर से आया तो उसने देखा कि सुरेश महाशय उसकी मेज़ पर चढ़े दीवार से चिपटी एक मकड़ी को पकड़ने के प्रयास में तल्लीन हैं और उसके लेखों, कहानियों तथा कविताओं की मोटी फ़ाइल उनके पाँवों के नीचे बेतरह कुचली जा रही है। चेतन को देख कर जो वे चौंके तो मेज़ समेत सब कुछ धड़ाम से नीचे आ रहा। क़लमदान टूट गया, कागज़ बिखर गये और जब रोते-झींखते उसने सब कुछ फिर से सजाया तो उसे मालूम हुआ कि मेज़ की वह टाँग, जिसे कबाड़ी ने बड़ी चतुराई से जोड़ रखा था, टूट गयी है।

और वह अपना समस्त रचनात्मक कार्य छोड़, मकान ढूँढ़ने की मुहिम पर निकल पड़ा।

और गर्मियों की एक सुबह वह अनन्त को पत्र लिख रहा था :

"....हमने मकान बदल लिया है। यह नया मकान भी यद्यपि चंगड़ मुहल्ले ही में है, पर यही यथेष्ट है कि पीपल वेहड़ा में नहीं।

तुम सोचोगे कि चंगड़ मुहल्ले में ऐसा सुन्दर मकान मुझे मिल कैसे गया? वास्तव में यह मकान सरदार जगदीश सिंह (लैंड लार्ड ऐंड हाउस प्रोप्राइटर) का निजी मकान है। यह सरदार जगदीश सिंह वही महाशय हैं जिन्होंने अपनी अधिकांश जायदाद पार्टियों, कंसर्टों और यार-दोस्तों की भेंट कर दी। जायदाद खा-उड़ा कर अब उन्होंने अपने निवास-स्थान को विभक्त कर, उसमें किरायेदार बसा लिये हैं। उनके साथ वाले भाग में हम आ गये हैं। तुमने शायद समाचार-पत्र में यह ख़बर पढ़ी होगी कि अब इन सरदार महोदय ने अदालत में श्रीमती राधारानी के पति और अपने तीन मित्रों के विरुद्ध सोलह हज़ार रुपया ठग लेने के अभियोग में मामला चलाया है....

मकान बहुत अच्छा है। जिस तरह चीकू के खुरदरे असुन्दर

छिलके के अन्दर सुन्दर गूदा होता है, उसी प्रकार इस मैले, गंदे इलाके में यह सुन्दर, सुनिर्मित मकान है। जगह बहुत नहीं—एक बड़ा कमरा है जिसे एक लकड़ी के पार्टीशन द्वारा दो कमरों में बाँट दिया गया है, स्नान-गृह नहीं है, पर रसोई-घर इतना खुला है कि उसके एक कोने में बने हुए चबूतरे से स्नानागार का काम लिया जा सकता है। कमरों की पिछली दीवार में खिड़कियाँ हैं, दीवारों पर सफ़ेदी और किवाड़ों पर बेहद अच्छा सरदई रंग का वारनिश है। इसके अतिरिक्त बड़े कमरे की छत में बिजली का पंखा भी लगा हुआ है। अनन्त! जब कभी मैं खिड़कियाँ खोल कर पंखा चला, चारपाई पर लेटता हूँ तो मन एक अनिर्वचनीय आनन्द से विभोर हो उठता है। एक अत्यन्त गन्दी सील भरी, अँधेरी कोठरी के बाद एक खुले, रोशन, हवादार कमरे में साँस लेने का आनन्द शायद तुम नहीं जान सकते।....

●

२३

रात अत्यधिक अँधेरी थी। वर्षा अपना वेग दिखा कर नन्हीं-नन्हीं बूँदों में बरस रही थी। चेतन ने घड़ी की ओर देखा, अढ़ाई बज गये थे। सामने सम्पादक महोदय प्रेस-कापी तैयार कर के वहीं कुर्सी पर टाँगें सिकोड़े सो गये थे। चेतन उपन्यास लिख रहा था, किन्तु प्रयास करने पर भी उससे अब आगे न लिखा जाता था। उसका श्रान्त मस्तिष्क थके हुए घोड़े की भाँति अड़ गया था और बार-बार पानी के छींटों के रूप में चाँटे मारने पर भी आगे न बढ़ रहा था। उसने कापी बन्द की, सम्पादक को जगा, उससे छुट्टी ली, छाता उठाया और चल दिया।

बाहर ड्योढ़ी की चौखट पर खड़े हो कर उसने गली में दृष्टि डाली। शुक्ल-पक्ष होने के कारण बिजली की बत्तियाँ बन्द थीं। यद्यपि काजल-काली घटाओं ने शुक्ल-पक्ष को कृष्ण-पक्ष से भी अधिक काला बना दिया था, पर कानून तो कानून ठहरा, बादलों के छा जाने से उसमें कैसे परिवर्तन हो, गहन

अंधकार के बावजूद बत्तियाँ बन्द थीं। गली के तिमंज़िले मकान इस अंधकार को और भी निबिड़ बना रहे थे। नीचे पानी की नदी ठाठें मार रही थी और ऊपर से परनालों का पानी शोर मचाता हुआ उससे मिल रहा था।

चेतन ने सोचा कुछ क्षण और प्रतीक्षा कर ले। किन्तु यह विचार कि अढ़ाई बज गये हैं, जैसे बरबस उसे आगे ढकेलने लगा। एक हाथ में छाता और उपन्यास की कापी थाम कर दूसरे से तहमद को ऊपर उठाता हुआ वह सीढ़ियाँ उतर गया।

गली में घुटनों तक पानी था। रोशनी से सहसा अँधेरे में आने के कारण उसे कुछ दीख न रहा था। माप-माप कर पग धरता हुआ वह आगे बढ़ा।

वह लाख चाहता था कि परनालों की निरन्तर बहती धाराओं से बच जाये, पर वे सब 'हरर-हरर' करते ठीक गली के मध्य गिर रहे थे। दीवार के साथ चलने में पाँव के नाली में फँस जाने का भय था। उसका छाता दो-तीन वर्ष उसकी सेवा करने के उपरान्त जर्जरप्राय हो गया था इसलिए वह भगवान शिव की भाँति उन अनगिनत धाराओं को अपने सिर पर वहन करने को विवश था।

अभी कठिनाई से उसने आधी गली पार की होगी कि उसे अचानक ऐसा लगा जैसे किसी ने निचुड़ता हुआ कोड़ा पूरे ज़ोर से उसकी गर्दन पर दे मारा हो। उसे एक 'शूँ' की आवाज़ सुनायी दी और अँधेरे में कोई भयानक-सी चीज़ उसकी ओर बढ़ी। वह उछला। उसका हृदय धक-धक करने लगा और पानी की एक गर्म-गर्म धारा उसे अपनी गर्दन से वक्ष की ओर बहती प्रतीत हुई।

जब वह गली के सिरे पर पहुँच गया तो उसने पीछे मुड़ कर देखा। उसकी आँखें अंधकार से अभ्यस्त हो चुकी थीं। तब उसे पता चला कि वह तो पड़ोस में रहने वाले प्रोफ़ेसर साहब की उद्दंड, मरकही गाय है जिसकी गीली दुम उसके गले से बेतरह लिपट गयी थी।

वहीं गली के सिरे पर खड़े उसने पहले प्रोफ़ेसर साहब, फिर उनकी

गाय और फिर म्युनिसिपेल कमेटी को कोसा। फिर वह धीरे-धीरे चल पड़ा।

बाज़ार में गली की अपेक्षा अंधकार कुछ कम था और यद्यपि वर्षा फिर होने लगी थी, पर बादलों की तह शायद हल्की हो गयी थी, डूबा हुआ चाँद उभर आया था और उसकी मध्यम-ज्योत्स्ना बादलों में-से छन कर उस सूचीभेद्य अंधकार को कम कर रही थी।

और वह चलता-चलता महान लेखक के कथनानुसार समय का लाभदायक उपयोग करने के विचार से मन-ही-मन उपन्यास के कथानक पर विचार करने लगा।

एस० पी० एस० के हाल के पास पहुँच कर उसने देखा कि मोहनलाल रोड और चंगड़ मुहल्ले का संगम प्रयाग का संगम बना हुआ है। उसके सामने पानी में डूबी हुई चंगड़ मुहल्ले की सड़क घूम गयी। यदि वह उधर से जायगा तो दीवानचन्द हलवाई की दुकान तक उसे पानी में चलना पड़ेगा और चंगड़ मुहल्ले के बाज़ार का पानी—ध्यान मात्र ही से उसका जी मतलाने लगा। तब उसने सोचा कि वह वन्देमातरम प्रेस के पास से होकर जाने वाली गली से घर जायगा। और वह उधर को चल पड़ा।

गली के आरम्भ में नाली की छोटी-सी लोहे की पुली टूटी हुई थी और पानी बड़े वेग से बह रहा था। दस-बारह कदम चलने के बाद गली ऊँची थी। पैरों से टटोलता-टटोलता चेतन बढ़ा जा रहा था और अनजाने ही उस महान लेखक के कथन का भी पालन कर रहा था और उसके मस्तिष्क में उपन्यास का कथानक बन-सँवर कर अपना पूरा आकार पा रहा था कि उसे लगा जैसे उसके हाथ से कोई चीज़ फिसली जा रही है। कथानक के निर्माण में तल्लीन उसने उसे थामा भी, पर तभी नाली में उसका पाँव फँस गया और वह चीज़ फिसल कर छप से पानी में गिर गयी।

वह चौंका। नाली बहुत गहरी न थी, इसलिए उसका पाँव टूटने से बच गया। पर यदि उसका पाँव टूट जाता तो शायद उसे इतना दुख न होता जितना उसे यह जान कर हुआ कि वह चीज़ उसके उपन्यास की कापी थी।

उसने बेतहाशा पानी में इधर-उधर हाथ मारा। पर फिर वह अपनी इस मूर्खता पर स्वयं ही हँसा—कापी यहाँ कहाँ ? वह तो पानी के प्रवाह में मोहन लाल रोड के संगम तक चली गयी होगी—उसने सोचा और कुछ क्षण तक वहीं मूक-मर्माहत-सा भीगता खड़ा रहा। चारों ओर निबिड़ अंधकार छाया था। वर्षा की रिमझिम, परनालों और बहते हुए पानी का शोर रात की निस्तब्धता भंग कर रहा था। एक ताँगा 'छप' 'छप' करता हुआ उसके पीछे से निकल गया। चेतन ने सोचा कि वह दूसरी सुबह आ कर अपनी कापी ढूँढ़ेगा, किन्तु चलते समय उसने फिर अनायास पैर से इधर-उधर टटोल कर देख लिया।

नाली को पार करके वह चुपचाप चलने लगा। यद्यपि उस महान लेखक ने कहा था कि चलते समय का उचित उपयोग लाभदायक तौर पर सोचना है, किन्तु निरन्तर प्रयास करने पर भी वह इस अमूल्य कथन का पालन न कर सका। वह सोचता तो रहा, पर वह सब लाभदायक था, इसमें सन्देह है। जब वह घर पहुँचा तो उसका मन खिन्न, शरीर क्लान्त और पलकें भारी थीं। रह-रह कर उसके सामने वह मोटी कापी, उसके सुन्दर पृष्ठ, नीली-नीली लकीरें और उन पर बड़े यत्न से सुन्दर लेखनी में लिखे हुए उपन्यास के परिच्छेद घूम-घूम जाते। उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह उपन्यास वह फिर न लिख सकेगा—इतना संतोष वह कहाँ से लायेगा ? यह सोचते-सोचते वह सीढ़ियाँ चढ़ गया और दरवाज़े पर पहुँच कर उसने दस्तक दी।

सरदार जगदीश सिंह के नौकर ने (जो पार्टीशन के इस ओर बरामदे में सोता था) आ कर दरवाज़ा खोला और कहा :

"बीबी जी आ गयी हैं ?"

"बीबी जी ! कौन बीबी जी ?"

"आप की बीबी ?"

"माँ ?"

"नहीं जी आप की बीबी," नौकर ने तनिक हँसते हुए कहा ।

तभी चन्दा ने आ कर रसोई-घर का दरवाज़ा खोला । वह शायद अब तक जाग रही थी । उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । चेतन के मन में उल्लास की लहर दौड़ गयी और कापी के खो जाने का दुख निमिष-मात्र में हवा हो गया ।

नौकर चला गया था । वहीं सीढ़ियों पर खड़े-खड़े वे कितनी देर तक बातें करते रहे । चन्दा ने उसे बताया कि उसका जी वहाँ ज़रा भी न लगता था । वह बहुतेरा हँसने, प्रसन्न रहने का प्रयास करती थी, पर उदासी अनायास ही उसके मन-प्राण पर छा जाती थी । माँ ने उसे बस्ती भेज दिया, पर वहाँ भी उसका मन न लगता था—रोने-रोने को हुआ करता था । आखिर जब रणवीर लाहौर आने लगा तो माँ ने क्रुद्ध हो उसे उसके साथ चले जाने को कहा और वह चली आयी । "मुझे आपका डर था...." उसने कहना चाहा, किन्तु चेतन उनकी बात काट कर बोला, "बड़ा अच्छा किया, मेरा अपना मन बड़ा उदास है ।"

और उसने चन्दा को कापी के खोने की घटना सुनायी ।

चन्दा ने उसे सान्त्वना दी ।

कुछ क्षण दोनों वहीं चुप खड़े रहे । फिर चन्दा ने कहा, "चल कर कपड़े बदल डालिए । सर्दी न लग जाय !" और वे दोनों रसोई-घर में आ गये । कमीज़ उतार कर चेतन ने खूँटी पर फेंक दी और बदन पोंछ कर तह-मद बदल, वहीं रसोई-घर में एक बाल्टी को उलट कर उस पर बैठ गया । चन्दा उसके पास धरती पर बैठ गयी ।

वहीं बैठे-बैठे चन्दा ने बताया कि माँ ने एक चिट्ठी भी दी है । और उसने अपने ब्लाउज़ से एक चिट्ठी निकाल कर चेतन को दी । चेतन उस समय ज़रा भी चिट्ठी पढ़ने के मूड में न था ! उसने अन्यमनस्कता से पत्र को पढ़ना आरम्भ किया—माँ ने चन्दा के व्यवहार की शिकायत की थी और ताने दिये थे—किन्तु चेतन ने दो-चार पंक्तियाँ पढ़ कर ही पत्र को अलग रख दिया ।

चन्दा आयी थी तो डरती थी कि कहीं इस प्रकार बिना पूछे चले आने पर चेतन गुस्सा न हो, पर उसके व्यवहार ने उत्साह पा कर, उसके पास बैठी-बैठी वह अनवरत बातें सुनाती चली गयी—सोहनी, केसरी, लक्ष्मी, पारो, शीला, करतारी—अपनी सभी सहेलियों की बातें....।

कई बार चेतन को इच्छा हुई कि वह चन्दा से नीला की बात भी पूछे, पर हर बार वह अपनी इच्छा को बरबस दबा कर रह गया।

सामने रसोई-घर की खिड़की से प्रातः का झुटपुटा दिखायी देने लगा था जब भाई साहब ने जग कर पार्टीशन के दूसरी ओर से लगभग पितृ-स्नेह से भरी आवाज़ में कहा :

"अब सो जाओ चेतन, दोपहर को तुम्हें फिर दफ़्तर जाना है।"

●

३४ देवरानी और जेठानी के इकट्ठे रहने से चेतन को नित्य किसी-न-किसी नयी समस्या से दो-चार होना पड़ता। सबसे पहली समस्या खाना पकाने की थी। चन्दा पढ़ती थी, इसलिए खाना पकाने का काम भावज ही को अधिक करना पड़ता था। यद्यपि चन्दा को शिकायत रहती थी कि उसकी जेठानी चेतन की तरकारी में तड़का कम लगाती है और उसके दूध में मलाई नहीं डालती, पर चेतन संतुष्ट था कि चन्दा को पढ़ने-पढ़ाने के लिए समय तो मिल जाता है। और वह उसे समझा देता था कि ऐसी ज़रा-ज़रा सी बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

वास्तव में जब चन्दा ने कुछ ही महीनों के परिश्रम से अच्छे नम्बरों से हिन्दी रत्न की परीक्षा पास कर ली तो चेतन की दृष्टि में उसका महत्व बढ़ गया था। वह न चाहता था कि उसे खाना पकाना पड़े, किन्तु उसकी भाभी को अपनी देवरानी का यों रानी बने बैठना एक आँख न भाता था और वह भाई साहब से रोज़ तगादा करती थी कि उसे भी स्कूल में दाखिल करा

दिया जाय। भाई साहब हँस देते—"अब तुम पढ़ कर क्या करोगी?" वे कहते; "बच्चे पालो और राम का नाम जपो।" और वे छड़ी उठा कर सैर को निकल जाते।

दिन-प्रति-दिन भाभी के तगादे और भाई साहब की बेपरवाही बढ़ने लगी। आखिर जब भाभी का अनुरोध बढ़ कर क्रोध और भाई साहब की बेपरवाही चुप की सीमा को पहुँच गयी तो एक दिन भाभी स्वयं मोहनलाल रोड गयी और कैलीग्राफ़ी* की दो-चार कापियाँ ख़रीद लायी। सारा दिन बैठी, एकनिष्ठ हो, वह उन्हें रँगती रही। जब शाम को भाई साहब ने खाना माँगा तो उसने इनकार कर दिया। "वह यदि पढ़ती है, तो क्या मैं नहीं पढ़ती," उसने अँगूठा मटका कर कहा, 'वह तो पढ़ने के बहाने खाट पर टाँगें फैलाये लेटी रहे और मैं बाँदी बनी घर का सब काम करूँ!"

जब भाई साहब का समझाना-बुझाना, अनुनय-विनय, सब वृथा गया तो आखिर चेतन ने फैसला किया कि भाभी सुबह और चन्दा शाम को खाना पकाये। यह भी तै हो गया कि छुट्टी के दिन चन्दा सुबह पकायेगी ताकि वे शाम को सैर के लिए जा सकें।

इस समस्या से छुटकारा मिला तो बाजे की समस्या भयावह रूप धारण कर सामने आ गयी।

पहले तो भाभी को इस बात की जलन थी कि चन्दा अपने जेठ के सामने क्यों गाती है। जब चेतन ने उसे रोक दिया तो भाभी ने स्वयं बाजा सीखने की रट लगा दी। जब भी भाई साहब शाम को घर आते तो खाना परोसते समय भाभी बाजा सीखने की इच्छा प्रकट करती।

इन तगादों के उत्तर में भाई साहब दुख और व्यंग्य से हँसते। दुकान में अभी कितने ही औज़ार कम थे; कुर्सी भी सस्ती और पुरानी किस्म की थी; बाहर का बोर्ड भी छोटा था; दुकान में लकड़ी और शीशे के पर्दों की सख्त ज़रूरत थी; बिजली का पंखा तक न था—वे पत्नी को समझाने की कोशिश करते, पर भर्तृहरि ने कहा है कि न सागर को कण भर मधु से मीठा

*कैलीग्राफी (Caligraphy) सुलेख-विद्या, ख़ुशनवीसी

किया जा सकता है, पर मूर्ख को....और भाभी चीख उठती, "आप तो डाक्टर हैं और वह चालीस रुपये का क्लर्क ! उसकी बीवी तो स्कूल में पढ़े, बाजे बजाये और मैं बैठी मुटर-मुटर तका करूँ। उनको सब कुछ ले कर देने के लिए तो आपके पास पैसे आ जाते हैं और मेरे लिए...."

ऐसे समस्त अवसरों पर डाक्टर साहब के लिए भोजन विष बन जाया करता। किसी-न-किसी तरह दो-चार कौर निगल कर वे उठ खड़े होते। छड़ी उठाते और चुपचाप बाहर निकल जाते।

अपनी भाभी की इस ईर्ष्या से तंग आ कर चेतन ने अपनी पत्नी से कह दिया कि वह अपनी जेठानी को भी बाजा सिखा दिया करे।

चन्दा ने उसी दिन से श्रीमती चम्पावती को गाना सिखाना आरम्भ कर दिया। भाभी के गले में रस का सर्वथा अभाव था। स्वर उसका कौवे का-सा था, किन्तु इससे वे तनिक भी हतोत्साह न होती थीं और गला फाड़े सुर-बेसुर गाये जाती।

उन्हीं दिनों एक और घटना घटी जिसने भाभी की ईर्ष्याग्नि पर तेल का काम किया।

बात यह हुई कि चेतन के पास उसके वेतन के अतिरिक्त कुछ और रुपये आ गये। कृषकों के हितचिन्तक, पूँजीपतियों के एक साप्ताहिक-पत्र के स्वामी ने चेतन से प्रति सप्ताह एक कृषि सम्बन्धी कहानी लेने का वादा किया था और पहली कहानी के रुपये भी उन्होंने दे दिये थे। सर्दी ज़ोरों से पड़ने लगी थी और चन्दा के पास एक भी गर्म कपड़ा न था। इसलिए चेतन ने उसे एक स्वेटर-कोट ले दिया। जब चेतन घर से चला था तो उसका यही खयाल था कि एक सस्ता-सा स्वेटर-कोट वह चन्दा को ले देगा। परन्तु जब वह चन्दा को लिये हुए 'तिलक होज़री' के अन्दर जा बैठा और उसने सामने के बड़े शीशे पर दृष्टि डाली और अपनी आकृति दर्पण में निरख (मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करते हुए) अपने मुलायम बालों पर उसने हाथ फेरा

और देखा कि उसकी पत्नी की आँखों से एक सलज्ज मुस्कान निकल कर उसके ओठों पर फैलती हुई चेहरे को द्युतिमान कर रही है, तो न जाने उसे क्या हुआ कि वह सस्ता स्वेटर खरीदने की बात एक दम भूल गया। उसने ऐसे गर्व के स्वर में सेल्ज़मैन से स्वेटर दिखाने को कहा कि घटिया स्वेटर लाने का उसे साहस ही न हो।

पर उसके स्वर में जो गर्व था, उसकी ओर ध्यान न दे कर सेल्ज़मैन ने दो-अढ़ाई रुपये तक के स्वेटर उसके सामने ला कर रख दिये।

चेतन ने कहा, "कुछ और अच्छे दिखाओ!"

सेल्ज़मैन चार-पाँच तक के उठा लाया।

शायद चेतन को इसमें अपना अपमान लगा। कुछ असंतोष से उसने कहा, "और दिखाओ भाई, जो सबसे अच्छा हो वह दिखाओ!"

तब सेल्ज़मैन गुलाबाँसी रंग का एक स्वेटर-कोट लाया जिसके कालर पर श्वेत धारियाँ थीं।

"इसका क्या मूल्य है?" चेतन ने पूछा।

"आठ रुपये।"

चेतन की जेब में आठ ही रुपये थे। चार रुपये उसे मालिक मकान को किराये के हिसाब में देने थे और चार रुपये उसने स्वेटर-कोट के लिए रख छोड़े थे। चन्दा को यह बात मालूम थी, इसलिए जब उसने चन्दा से उस की पसन्द पूछी तो उसने साढ़े तीन रुपये के स्वेटर-कोट पर अँगुली रख दी।

तब हँसते हुए और शीशे में अपनी शक्ल देख कर बालों पर हाथ फेरते हुए गुलाबाँसी स्वेटर-कोट की ओर संकेत करके चेतन ने पूछा, "यह तुम्हें अच्छा नहीं लगता क्या?"

अरमान भरी आँखों से चन्दा ने स्वेटर-कोट की ओर देखा और फिर आँखें झुका लीं।

चेतन भूल गया कि चार रुपये उसे मालिक मकान को देने हैं। एक विचित्र प्रेम भरे दयामिश्रित भाव से उसने अपनी पत्नी की ओर देखा और

आठ रुपये जेब से निकाल कर सेल्ज़मैन के सामने रख दिये, "यह गुलाबाँसी स्वेटर बँधवा दो।"

भाभी ने इस स्वेटर को देखा तो ईर्ष्या की एक टीस उसके हृदय की गहराई में उठी।

"चन्दा को तो आठ रुपये के स्वेटर ले कर दिये जायँ और मैं सर्दी में ठिठरूँ?" भाई साहब के आने पर भाभी ने कहा।

"मुझे तो यह भी मालूम नहीं कि उसने क्या खरीदा है।" भाई साहब व्यंग्य और विवशता से हँसे। चन्दा को बुला कर उन्होंने स्वेटर-कोट देखा और एक दबी हुई साँस उन्होंने दिल में दबा ली। चेतन दफ़्तर जा चुका था। इस डर से कि उन्हें बहुत उल्टी-सीधी सुननी पड़ेगी, खाना खा, छड़ी उठा, भाई साहब सैर को चले गये।

दूसरे दिन उन्होंने अलग ले जा कर चेतन को समझाया कि तुम्हारी भाभी भी स्वेटर के लिए शोर मचा रही है। मेरे पास तो पैसा है नहीं। जब उसे बाहर जाना हो तो स्वेटर-कोट तुम उसे दे दिया करना।

यद्यपि पहले वह स्वेटर-कोट भाभी ही ने पहना और कुल मिला कर भी भाभी ही स्वेटर को ज़्यादा पहनती रही, फिर भी अपने निजी स्वेटर के लिए उसने भाई साहब का पीछा न छोड़ा।

वे लाख समझाते कि उनकी आय ज़्यादा नहीं, उनका ख़र्च बड़ा है, उन्हें बहुत सामान ख़रीदना है, वे स्वयं चेतन के सूट पहनते हैं, पर भाभी को विश्वास न होता और वह यही कहती कि आप उनको खिला रहे हैं और हमें कुछ नहीं देना चाहते।

इस रोज़-रोज़ की चख-चख से भाई साहब इतना तंग आ गये कि उन्होंने अपनी पत्नी को उसकी बुआ के पास भेज दिया। भाभी की यह बुआ लाहौर के पास ही श्रीरामपुर गाँव में रहती थी। उसका दामाद लाहौर में काम करता था। अपनी लड़की को देखने वह जब आती तो शिष्टाचार-वश चम्पावती को साथ ले जाने के लिए भाई साहब से अवश्य कहती। इस बार जब वह आयी और उसने भाई साहब से चम्पा को श्रीरामपुर भेजने के

लिए कहा तो इस अनुरोध के रस्मी होने का खयाल न करके भाई साहब ने भाभी को बरबस तैयार कर दिया।

●

३५ समाचार पत्र के दफ़्तर में काम करते हुए उसे साल भर होने को आया था पर चेतन के स्वभाव में अभी तक लड़कपन कम न हुआ था। भाई साहब ने कई बार उससे कहा, "चेतन तुम तो बिलकुल बच्चे हो!" वह उनसे लड़ने लगता। किन्तु जब कभी उसे अपनी ग़लती का पता चल जाता, वह हँस देता और कहता, "मैं बच्चा ही तो हूँ, शादी हो गयी तो क्या? मेरी उम्र ही अभी क्या है?" और कई बार वह हँस कर यह भी कहता, "भाई साहब मैं बच्चा ही बना रहना चाहता हूँ बूढ़ा बनना मुझे पसन्द नहीं।" लेकिन बचपन में कितने भी लाभ क्यों न हों, हानि भी कम नहीं और एक बार अपने इसी बचपन के फलस्वरूप वह और उसकी पत्नी बीमार पड़ गये।

बात कुछ भी न थी। चेतन सन्ध्या को दफ़्तर से आया था। उसे ज़ोर की भूख लगी हुई थी। भूख उसे जब भी लगती, वह कुछ न कर पाता। कई बार ऐसा भी होता कि चन्दा उसके लिए अलग तरकारी छौंक कर रख देती और कहती, "बस कुछ देर नहीं, आइए बैठिए, फुलका* अभी सेंके देती हूँ।" वह आ कर रसोई-घर में बैठ जाता और रोटी सिंकते-सिंकते सब्ज़ी खत्म कर देता और चन्दा जब फिर उस के लिए सब्जी छौंकती तो वह इस बीच में रूखा फुलका ही खा जाता।

कई बार ऐसा भी होता कि वह भूख के कारण कोई पुस्तक ले कर पढ़ने बैठता, पर पढ़ने में उसका मन न लगता और वह पुस्तक छोड़ कर नीचे चला जाता और घूम-फिर कर मन को दूसरी ओर लगाता।

उस दिन जब भूख से बेकल हो कर वह अपने मकान की सीढ़ियाँ उतरा तो उसने गोल बाग़ का एक चक्कर लगा आने की सोची। मोहन-

---

*फुलका = छोटी रोटी

लाल रोड से निकल कर वह लोअर माल पर हो लिया और ज़िला कचहरी के पास से होता हुआ गोल बाग़ में एक पेड़ के साथ बनी हुई गोल बैंच पर जा बैठा।

उसे इतनी भूख लग रही थी कि वहाँ बैठना और किसी दूसरी बात के सम्बन्ध में सोचना उसे दुष्कर प्रतीत होने लगा। एक उदासी-सी दृष्टि उसने अपने चारों ओर डाली—सन्ध्या का समय था और लोग. बाग़-की सैर को निकल आये थे। दायें ओर के लान में दो-एक काली मामाएँ लाल-लाल गोरे-गोरे बच्चों को खेला रही थीं। गोरे गुलगोथने, गुबले-गुबले, बच्चे अपनी नीली-नीली आँखों, सफ़ेदी-मिश्रित हल्के भूरे बालों और अपनी स्वस्थ स्फूर्ति के कारण चेतन को बड़े भले मालूम हुआ करते थे और कई बार वह गोल बाग़ से गुज़रता हुआ उनका खेल देखने को रुक जाया करता था। पर उस अनमनेपन में वे उसे अत्यन्त घिनौने दिखायी दिये। उसे लगा जैसे उनके शरीर का प्रत्येक लोथड़ा और उनके रक्त का प्रत्येक कण अगनित काले बच्चों के मांस और रक्त से बना है। उसे लगा जैसे समस्त काला संसार मामा बना दिन-रात गोरे संसार की सेवकाई कर रहा है और उसके मन में आयी कि वह उल्का बन कर इस गोरे संसार पर फट पड़े और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर उस भूखे काले संसार को मुक्त कर दे।

विकलता से वह उठा। सामने टेनिस-कोर्ट में खेल शुरू हो गया था। अपने गोरे-गोरे शरीर पर श्वेत टेनिस-शर्ट और नेकर पहने एक सुन्दर स्वस्थ रमणी अपना कौशल दिखा रही थी। यद्यपि चेतन को टेनिस अथवा क्रिकेट के खेल बड़े प्रिय थे और स्वयं कभी न खेल सकने पर भी वह इन दोनों खेलों को देखने और उनके टूर्नामिंटों के विवरण पढ़ने में बड़ा आनन्द पाता था, पर उस समय टेनिस-कोर्ट उसे आकर्षित न कर सका। एक बार खेलने वालों की ओर अनमनी-सी दृष्टि डाल कर वह घर की ओर चल पड़ा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे गोल बाग़ में आये उसे बहुत देर हो गयी है, उसे चलना चाहिए; चन्दा खाना पका कर बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। इस प्रतीति के साथ ही उसकी कल्पना के सम्मुख तरकारी से भरी

कटोरियाँ और गर्म फूली-फूली रोटियों के भरी थाली घूम गयी।....पर जब कचहरी तथा ला कालेज रोड की धूल फाँक कर वह अपने घर पहुँचा और अतीव उत्सुकता के साथ उसने रसोई-घर में झाँका तो उसके बदन में आग लग गयी—चूल्हे के पास घुटनों में सिर दबाये चन्दा मज़े में आलू बैठी छील रही थी।

"तुम अभी आलू ही छील रही हो और मैं मील भर का चक्कर लगा आया हूँ।" उसने चीख़ कर कहा, "खाना पकाना भी नहीं सिखाया किसी कम्बख़्त ने तुम्हें!"

न जाने चन्दा की तबीयत ख़राब थी अथवा उसने चेतन की आकृति पर प्रति क्षण गहरे होते रोष की रेखाओं को नहीं देखा, इसलिए वहीं घुटनों पर सिर रखे आलू छीलते-छीलते उसने कहा, "खाना पकाना कोई खेल तो है नहीं, पका तो रही हूँ।"

चेतन का शरीर क्रोध से काँपने लगा। उसने बाँह पकड़ कर अपनी पत्नी को उठाया और उसे लगभग घसीटता हुआ-सा बड़े कमरे में ले गया। वहाँ चारपाई पर उसे बैठा दिया और बोला, "यहाँ बैठो, देखो, कितनी जल्दी पकाता हूँ खाना!"

चन्दा रोने लगी थी। किन्तु उसकी ओर ध्यान दिये बिना, वह जैसे अंगारों पर चलता हुआ रसोई-घर में आया। आलू लगभग छीले जा चुके थे। उसने उन्हें काट कर धोया और चढ़ा दिया। फिर आटा साना और उसमें मुट्ठियाँ भर कर और पानी छिड़क कर उस पर कपड़ा रख दिया। फिर उसने तरकारी को देखा। अभी पकी न थी। तब कुछ क्षण वह घुटनों पर सिर रखे चुपचाप बैठा विष घोलता रहा।

जब चेतन के पिता रिलीविंग में न होते और किसी स्टेशन पर उनकी नियुक्ति हो जाती तो माँ उनके पास चली जाती थी ताकि कम-से-कम उनका वेतन तो मदिरा के चंगुल से घर के लिए बच जाय। तब उसकी अनुपस्थिति में चेतन के दादा खाना पका लिया करते थे। उन्हें आँखों से कुछ कम

दिखायी देता था। इसलिए खाना पकाने के अतिरिक्त और कोई काम न कर पाते। तब शेष काम तीनों भाई आपस में बाँट लिया करते थे। भाई साहब सब्ज़ी-तरकारी लाते और इस प्रकार दो-एक पैसे उसमें से बचा लेते। पानी भरने का काम छोटा भाई अपने ज़िम्मे ले लेता—अखाड़े से वापस आ कर पसीना सुखाने के बहाने वह बड़ी आसानी से आठ-दस घड़े ला कर घर में पानी-ही-पानी कर देता। घर की सफ़ाई और बर्तन मलने का काम चेतन अपने ज़िम्मे ले लेता।

कभी-कभी उसका छोटा भाई रूठ कर पानी भरने से इनकार कर देता। तब चेतन चुपचाप घड़ा उठा कर पानी भर लाता था। पर रोज़-रोज़ पानी भरना उसके वस का रोग न था। किन्तु सफ़ाई, यह उसे बड़ी प्रिय थी। सप्ताह में एक बार रविवार को वह घर की सफ़ाई करता और तब वह घर के समस्त कोने-अँतरे झाड़ कर रख देता। सफ़ाई का जैसे उसे उन्माद-सा हो जाता। जब बारह-एक बजे वह घर की सफ़ाई खतम करता तो उसकी कमर दुख रही होती, शरीर धूल से अटा पड़ा होता और सिर में चक्कर आ रहे होते। फिर सात दिन तक वह आँगन और दो-तीन कमरों की सफ़ाई के अतिरिक्त किसी दूसरी ओर ध्यान न देता। किन्तु रविवार को जैसे उसका उत्साह पुनः जाग उठता और वह एक-एक कमरा, एक-एक ताक, एक-एक कोना झाड़ने लग जाता।

रहा बर्तन मलना—तो न जाने उसे इसमें क्यों रस मिलता। जब वह मैले गंदे बर्तनों को मल-धो और चमका कर टोकरे में रखता तो उसे एक विचित्र प्रकार के संतोष की अनुभूति होती। स्कूल ही की बात नहीं, जब वह कॉलेज में गया था तब भी उसने अपने हिस्से का वह काम करने में किसी प्रकार का संकोच न किया था। उन दिनों काम करते-करते वह सोचा करता था कि उसकी भावी पत्नी उसके घर को ऐसी ही सफ़ाई और सुघड़ता से रखेगी। उसका रसोई-घर इसी प्रकार धुला-धुलाया रहेगा और टोकरे में चुन कर रखे हुए चमकते-दमकते बर्तन आँखों को ठंडक पहुँचायेंगे।—उसे कभी घर की सफ़ाई न करनी पड़ेगी। वह चंचल, चपल, सुघड़ और सलीके वाली

होगी। बिजली की गति से वह काम किया करेगी। जब वह सुबह-सुबह दफ़्तर जाया करेगा तो अपने कपड़े धुले-धुलाये पाया करेगा। न उसे पायजामे या शलवार में इज़ारबन्द† डालना पड़ेगा, न क़मीज़ के बटन टाँकने पड़ेंगे और न ऐन चलते समय उधड़े-फटे कपड़े सीने पड़ेंगे। वह घर के समस्त झंझट अपनी पत्नी को सौंप कर निश्चिन्त हो जायगा और ऐसी मानसिक शांति पायेगा, जिसमें महान रचनाओं की सृष्टि होती है। पर उसे मिली यह मोटी-मुटल्ली, निर्जीव, निष्प्राण-सी अकर्मण्य पत्नी जिसकी हर बात का उसे स्वयं ध्यान रखना पड़ता था, जो घर को तो क्या साफ़-सुथरा रखती, स्वयं भी साफ़-सुथरी न रह सकती थी! एक दीर्घ-निश्वास उसके अन्तर की गहराइयों से निकल गया।

उसकी दृष्टि बर्तनों पर गयी। ज़रा भी चमक न थी उनमें। और जैसे क्रोध के दुगने वेग से वह उठा। सब बर्तन उठा-उठा कर उसने उन्हें नाली के 'खुरे'* पर रखा, मला, धोया और फिर टोकरे में चुना। खुरे पर सेरों कीचड़ जमा हुआ था। मन-ही-मन जलते हुए उसने उसे मल-मल कर साफ़ किया और क्रोध के उस वेग में सारे-के-सारे रसोई-घर को धो डाला। इस ओर से निबट, उसने आटे को एक बार फिर से गूँथ उसकी लोई बना कर रख दी। तरकारी वह पहले ही उतार चुका था, तवा ऊपर रख कर उसने रोटियाँ सेंकी। फिर थाली परोसी और एक बार निखरे-धुले, साफ़-सुथरे रसोई-घर और चमकते-दमकते बर्तनों को देख कर गर्व से सीना फुला, वह बड़े कमरे में गया और किसी-न-किसी तरह हँसने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"चलिये श्रीमती जी भोजन तैयार है! अब कृपा करके जीम लीजिए और देखिए कि इस बीच में किस प्रकार मैंने रसोई-घर का जीवन सुधार दिया है।"

किन्तु चन्दा वहीं-की-वहीं बैठी रही। न हिली न डुली। उसने सिर्फ़ इतना कहा, "मुझे भूख नहीं!"

अपनी पत्नी की अपेक्षा अच्छे और सुचारु ढंग से सब काम कर लेने के

---

†इज़ारबन्द = नारा = बँधना। *खुरा = नरदवा = मोहड़ी = मोरी का चौतरा।

गर्व ने चेतन के जिस क्रोध को दबा दिया था यह बात सुन कर वह पूरे वेग से भड़क उठा। भारी-भारी पग धरता हुआ वह रसोई-घर में गया, परोसा हुआ खाना उसने ढक दिया और भूखा ही बाहर निकल गया।

तीन दिन तक दोनों तने रहे। न चन्दा ने खाना खाया, न चेतन ने। भाई साहब समझा-समझा कर हार गये। तीसरे दिन चेतन बीमार पड़ गया और चन्दा की तबीयत भी ख़राब हो गयी। भाई साहब ने माँ को तार दिया। वह आयी और दोनों को जालन्धर ले गयी।



३६ अपनी इस मूर्खता के बाद चेतन बीमार रहने लगा था। उसे ज्वर-सा रहता था। सिर में चक्कर आया करते और कमर में पीड़ा रहती। जब वह अपनी समझ से स्वस्थ हो कर लाहौर आया था तो भी सर्दियाँ उसे छुट्टियाँ लेते ही बीती थीं। चार दिन अच्छा रहता तो छः दिन बीमार पड़ जाता। उसे अपने ऊपर जो अटल विश्वास था, उसके पाँव डगमगा गये थे।

उन्हीं दिनों उसकी भेंट कविराज रामदास से हो गयी।

कविराज रामदास यौन रोगों का उपचार करने वाले एक प्रसिद्ध वैद्य थे। कम-से-कम उनका नाम बहुत बड़ा था। यौन-सम्बन्धी विषयों में युवकों का पथ-प्रदर्शन करने के हेतु उन्होंने कई पुस्तकें लिखी थीं और ऐसे ढंग से लिखी थीं कि यदि अच्छा-भला युवक भी उन्हें पढ़ लेता तो अपने आप को बीमार समझने लगता और दूसरे ही दिन उनके दवाखाने जा पहुँचता।

चेतन ने भी उनमें से एक पुस्तक पढ़ी थी और भाई साहब की मनाही के होते भी वह कविराज से भेंट करने को उत्सुक था। वह तत्काल चला जाता, लेकिन उसने सुन रखा था कि पाँच रुपये तो केवल कविराज जी के परामर्श की फ़ीस है, दवाई के दाम अलग रहे। और पाँच रुपये तो दूर, वह पाँच आने व्यय करने में भी असमर्थ था।

उन्हीं दिनों उसने अपने एक मित्र से सुना कि कविराज साहित्यिकों का बड़ा आदर करते हैं। यह सुन कर उसके उल्लास का ठिकाना न रहा। उसने अपनी कहानियों का मसौदा लिया, तनिक-सा साहस बटोरा और उनके औषधालय में जा पहुँचा।

बात यह थी कि वह अपनी कहानियों का संग्रह छपवाना चाहता था और प्रकाशक उसे मिल न रहा था। "नाम बिकता है," उसने अपने एक पत्र में अनन्त को लिखा था, "नये लेखक को इस बात की आशा न करनी चाहिए कि साहित्य अथवा कला के नाम पर प्रकाशक उसकी पुस्तक छाप कर उसका उत्साह बढ़ायेंगे। उनका साहित्य पैसा है और कला पैसा बटोरने की रीति! अधिकांश उनमें अपढ़ और कला से कोरे हैं। जिसका नाम बिकता है, उसी के पीछे भागते हैं।" और उसने सोचा था कि वह एक-दो पुस्तकें स्वयं छपवायेगा। प्रेस का उसने प्रबन्ध कर लिया था, पर कागज़ के लिए उसके पास पैसे न थे। जब उसने सुना कि कविराज साहित्यिकों, विशेषतया नये साहित्यिकों की सहायता करते हैं तो वह साहस बटोर कर (अपने अर्ध-चेतन मन में उनसे अपनी शारीरिक दुर्बलता के सम्बन्ध में परामर्श लेने की इच्छा को छिपाये) अपनी कहानियों का पुलंदा बग़ल में दबाये, उनके औषधालय की सीढ़ियाँ चढ़ गया।

जब सब रोगी परामर्श ले चुके और वह अन्दर गया तो उसे बैठने का भी साहस न हुआ। उसने तहमद और खादी की कमीज़ पहन रखी थी। छाती का बटन टूटा होने के कारण बार-बार काज को काल्पनिक बटन से मिलाते हुए, खड़े-खड़े ही उसने अपना परिचय दिया। बताया कि वह एक उदीयमान कलाकार है। उसकी कहानियों का पहला संग्रह तैयार है, एक 'महान आलोचक' ने उसकी भूमिका लिखी है, उसने प्रेस का प्रबन्ध कर लिया है, पर कागज़ के लिए उसके पास पैसे नहीं। और झिझकते-झिझकते उसने अपना मन्तव्य प्रकट किया कि यदि वे किसी प्रकार कागज़ का प्रबन्ध कर दें तो वह साहित्य-क्षेत्र में चमकने का अवसर पा सके।

कविराज ने उसे बड़े प्यार से बैठाया, उसे प्रोत्साहन दिया और कहा, "मैं काग़ज़ का प्रबन्ध कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो!" फिर बातों-बातों में उन्होंने उसे यह भी समझा दिया कि जीवन में सदैव अपनी सहायता आप करनी चाहिए। स्वावलम्बी के लिए किसी के आभार का बोझ सिर पर लेना उचित नहीं। "मन पर भार रह जाता है," उन्होंने कहा, "आदमी ऊँचा उठ जाता है, पर उसकी आँखें झुकी रहती हैं।" और चेतन को इस घोर-संकट से बचाने के लिए उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि वे उससे रुपये वापस लेने के बदले उसी मूल्य की पुस्तकें ले लेंगे। "मैं अपनी नयी पत्रिका 'स्वास्थ्य' के ग्राहकों के लिए तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार स्वरूप रख दूँगा," उन्होंने कहा, "जो भी नया ग्राहक बनेगा, उसे तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार-स्वरूप दी जायगी। तुम्हारी पुस्तक भी छप जायगी, उसे अधिक लोग पढ़ भी लेंगे और तुम्हारी दूसरी पुस्तक के लिए क्षेत्र भी बन जायगा।" और वे मूँछों में मुस्कराये।

"जी, जी!" चेतन ने प्रसन्न हो कर कहा, "मैं छपते ही आप की सेवा में ले आऊँगा। इस समय आप काग़ज़ का प्रबन्ध कर दें।"

"वह सब हो जायगा, तुम इसकी चिन्ता न करो। खूब जी लगा कर लिखो।" फिर हँसते हुए उन्होंने कहा था, "पर अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखो, लगता है कि तुम इस ओर ध्यान नहीं देते।"

"जी....जी....!" और एक शर्मीली-सी हँसी के अतिरिक्त चेतन कुछ न कह सका था और दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हुआ वहाँ से उठ आया था।

वह कविराज जी के औषाधलय से उतरा तो इतना प्रसन्न था जैसे उसे अचानक कोई निधि मिल गयी हो। आते ही उसने कहानी-संग्रह का मसौदा मेज़ पर फैलाया और उसमें एक और पृष्ठ बढ़ा कर समर्पण-स्वरूप लिखा:

कविराज रामदास जी को

पहली ही भेंट पर जिनके प्रति मन

श्रद्धा से प्लावित हो उठता है।

३७ कविराज जी ने न केवल काग़ज़ से उसकी सहायता करने का वचन दे कर चेतन का साहस बढ़ाया था, वरन् अपनी नयी पत्रिका 'स्वास्थ्य' के लिए उससे स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर लेख भी लिखवाये थे और साहित्यिकों की जो सरपरस्ती वे किया करते थे, उसका ज़िक्र करते हुए, उसे उन लेखों के पैसे भी दिये थे।

"अभी पत्रिका नयी है, इसलिए मैं तुम्हें चार आने प्रति पृष्ठ ही दूँगा," उन्होंने कहा था, "पर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी पुस्तक की भाँति यह पत्रिका भी लाखों की संख्या में बिकेगी। तब तुम्हारा पुरस्कार भी चार आने से चार रुपये तक हो सकेगा।"

चेतन के उल्लास का वारापार न रहा था। एक पृष्ठ के चार आने तो दूर उसे तो कभी पूरी-की-पूरी कहानी के चार आने न मिले थे।

वह स्वयं नये विषय चुनता और बारह-तेरह घंटे दफ़्तर में काम करने के बाद घर पर लेख लिखता। इस तरह जो पैसे बनते वे अपने बड़े भाई को देता। भाई साहब की दुकान पर अब एक बड़ा भारी बोर्ड लग गया था। बाहर एक शीशे का और अन्दर प्लाईवुड का पार्टिशन शोभा देता था। वेटिंग-रूम का रूप निखर आया था। और परछत्ती के ऊपर भी एक गहरे नीले रंग का पर्दा दिखायी देता था। उसके पीछे भाई साहब ने दोपहर को आराम करने की जगह बना ली थी।

किन्तु जिस इच्छा को ले कर वास्तव में चेतन कविराज से मिलने गया था, वह अभी तक उन पर प्रकट न कर सका था। उसके सिर में पीड़ा कुछ अधिक रहने लगी थी, कमर भी अधिक दुखती थी और चक्कर भी कुछ ज़्यादा आने लगे थे। आखिर एक दिन झिझकते-झिझकते, उसने अपने स्वास्थ्य की चर्चा छेड़ कर अपनी वह इच्छा भी प्रकट कर ही दी! अपने शारीरिक कष्ट की बात कहते हुए उसने कहा, "मैं कई बार आप से निवेदन करना चाहता था कि यदि आप भली-भाँति मेरा निरीक्षण कर मेरे लिए कोई औषधि बता दें तो बड़ी कृपा हो।"

कविराज ने एक बार उसके मुख की ओर देखा, निमिष भर सोचा और फिर हँसे। "तुम्हें औषधि की नहीं, आराम की ज़रूरत है," उन्होंने कहा, "दो-तीन महीने के लिए अपने थके हुए मस्तिष्क को विश्राम दो सैर करो, आराम करो, व्यायाम करो और परहेज़ रखो, तुम ठीक हो जाओगे।" फिर उन्होंने जैसे अपने आपसे कहा था, दैनिक पत्र का जीवन भी कोई जीवन है, इसमें घिसते हुए आदमी स्वस्थ्य रह भी कैसे सकता है। कुछ दिनों के लिए इससे छुटकारा पाओ।" और उन्होंने स्वास्थ्य और उसे अच्छा बनाये रखने के प्राकृतिक साधनों पर एक छोटा सा मीठा भाषण दे डाला था—"जान है तो जहान है।" उन्होंने कहा, "यदि जान-में-जान है तो एक छोड़ बीस काम हो सकते हैं और यदि जान को रोग लगा है तो आदमी क्या तीर मारेगा?"

"मैं पहले ही बहुत छुट्टियाँ ले चुका हूँ।" चेतन ने विवशता से कहा, "मुझे दफ़्तर से जितनी छुट्टियाँ मिल सकती हैं, उनसे भी कहीं अधिक!"

"तुम कल आना," उन्होंने तनिक सोच कर कहा, "मैं कोई-न कोई मार्ग निकालूँगा।"

दूसरे दिन जब वह उनके पास गया तो उन्होंने अपनी पत्नी का उल्लेख किया :

"मैंने बीवी जी से (उनका अभिप्राय अपनी सहधर्मिनी से था) तुम्हारे विषय में बात की थी। उनका हृदय बड़ा कोमल है। अपने पाँवों पर आप खड़े होने का प्रयास करने वाले तुम जैसे युवकों से उन्हें बड़ी सहानुभूति है। जब मैंने उन्हें बताया कि तुम दैनिक पत्र में किस प्रकार दिन-रात काम करके अपना जीवन-निर्वाह करते हो और किस प्रकार तुम्हारा स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिर रहा है, तो उन्होंने मुझसे कहा—आप उसे अपने साथ शिमले क्यों नहीं ले चलते?"

और कविराज जी ने चेतन को बताया कि वे प्रति वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में किसी-न-किसी पहाड़ पर जाया करते हैं। "स्वास्थ्य भी ठीक रहता है और काम भी अधिक होता है," उन्होंने कहा, "मैं समय को व्यर्थ नष्ट करने के पक्ष में

नहीं। धन अपने में कुछ महत्व नहीं रखता—समय ही सबसे बड़ा धन है। मैं सदैव पहाड़ पर जा कर काम करता हूँ और मेरी समस्त पुस्तकें किसी-न-किसी पहाड़ पर ही लिखी गयी हैं।"

और उन्होंने बताया कि वे इस बार शिमले जा रहे हैं और चेतन चाहे तो उनके साथ चल सकता है।

"पर नौकरी...." चेतन ने कहना चाहा....

"जीवन होगा तो बीस नौकरियाँ मिल जायँगी।" वे उसकी बात काट कर बोले, "तुम्हें यहाँ कितने रुपये मिलते हैं?"

"चालिस!" चेतन ने कहा।

"मैं तुम्हें पचास दे दूँगा" खाना वहाँ किसी होटल से खा लिया करना और मेरे यहाँ पड़े रहना। और तुम क्या चाहते हो?" फिर कुछ देर बाद उन्होंने कहा, "स्वास्थ्य से बढ़ कर और कोई चीज़ नहीं। दफ़्तर से तीन महीने की छुट्टी ले लेना। बाद में स्वास्थ्य अच्छा हुआ तो काम करना, नहीं तो सात-आठ महीने मेरे लड़के को पढ़ा देना। इस बीच में तुम्हें कोई-न-कोई नौकरी मिल जायगी।"

"पर छुट्टी...." चेतन ने कहना चाहा।

"इसकी चिन्ता तुम न करो, मैं तुम्हारे डायरेक्टर को चिट्ठी लिख दूँगा।"

"और काम...."

इस पर कविराज जी ने एक मीठा-सा ठहाका लगाया, "स्वास्थ्य बनाओ भाई, इससे बड़ा काम कौन-सा है? वहाँ तुम स्वास्थ्य बनाने के लिए जा रहे हो। यही तुम्हारे लिए सबसे बड़ा काम है, इतना तुम समझ लो।"

"पर मैं...."

हँसते हुए कविराज जी ने कहा, "भई, काम तुम कोई भी कर लेना। यह तो बाद की बात है। तुम्हारा पहला काम तो अपना स्वास्थ्य बनाना है।" और फिर हँसते हुए उन्होंने कहा, "मैं शीघ्र ही शिमले के लिए चल दूँगा। मकान और दुकान का वहाँ प्रबन्ध हो चुका है। तुम तैयारी कर लो!

काम तो होता ही रहेगा ।"

चेतन इतना प्रसन्न हुआ कि आते ही उसने अनन्त को एक पत्र लिखा जिसमें उसने अपने सम्पादक और उन जैसे अगनित लोगों की नीचता का उल्लेख करते हुए कविराज जी की सुहृदयता, करुणार्द्रता और दयाशीलता पर छोटा-मोटा निबन्ध लिख डाला :

> "मेरी भेंट सचमुच ही एक महान-आत्मा से हुई है (उसने लिखा) कविराज रामदास का नाम तो तुमने सुना ही होगा। अरे वही जिन्होंने यौन-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी है। आज तक हम उन्हें एक विज्ञापन-बाज़ वैद्य ही समझते आये हैं। उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें भी सुनते आये हैं। पर मैं तो पहली भेंट में उनका भक्त हो गया। ऐसी सहृदय, महान, उदार आत्मा पायी है उन्होंने ।"

न केवल यह, उसने कविराज की पत्नी से अपने अज्ञात परिचय का उल्लेख करते हुए उनकी प्रशंसा में एक 'क़सीदा'* लिख डाला और कविराज के भाग्य को सराहा जिन्हें उन ऐसी सदय और सहृदय पत्नी मिली थी।

रात को जब भाई साहब घर आये तो उसने बड़े उल्लास से उन्हें बताया कि वह शिमले जा रहा है। अपने दफ़्तर से छुट्टी ले लेगा, मज़े से शिमले की सैर करेगा, कहानियाँ लिखेगा, पहाड़ियों पर घूमेगा और ख़ूब मोटा हो कर आयेगा।

"पर तुम काम क्या करोगे?" भाई साहब ने ससन्देह पूछा।

"काम अभी तो उन्होंने कुछ बताया नहीं। बस इतना कहा है कि सैर करो, खाओ पियो और स्वास्थ्य बनाओ!"

भाई साहब के मन में कई शंकाएँ उठी थीं, पर चेतन के पास उन्हें निवारण करने का समय न था। वह जा कर अपने सारे मित्रों को यह समाचार देना चाहता था कि वह गर्मियों में शिमले जा रहा है। इसलिए उनकी

---

*क़सीदा = प्रशंसात्मक कविता = प्रशंसा

शंकाओं का समाधान किये बिना ही वह घर से निकल गया था। समय पर दफ़्तर पहुँचने की भी उसने चिन्ता नहीं की।

●

३८ जून का दूसरा सप्ताह अभी आरम्भ हुआ था, जब चेतन कविराज के क्लर्क जयदेव, उनके नौकर यादराम और उसकी पत्नी मन्नी, के साथ शिमला पहुँचा। वह चला था तो उसका उल्लास अपने में समा न पाता था, पर शिमला पहुँचते-पहुँचते उसका उत्साह बहुत मन्द पड़ गया था।

चेतन के लिए शिमला की सैर विलायत की सैर से कम महत्वपूर्ण न थी। आग उगलती गर्मी में तेरह-तेरह घंटे काम करने वाले उप-सम्पादक के लिए शिमले के प्रवास की कल्पना स्वप्न से कुछ कम नहीं।

जिस दिन कविराज ने उसे साथ ले चलने का वचन दिया था, उसी दिन से वह शिमला की तैयारियों में लग गया था। विवाह में आयी नर्म-गर्म रज़ाई-दुलाई उसके पास थी ही। किसी प्रकार जोड़-तोड़ करके खादी के दो पायजामे और दो कमीज़ें उसने सिलवा ली थीं। कोट का उसके पास सर्वथा अभाव था, इसलिए उसने अपने पिता का वही पुराना सरकारी ओवर कोट (जिसे भाई साहब काफ़ी समय तक पहन चुके थे) साथ ले लिया। उन दिनों यह नियम था कि तीन वर्ष बाद स्टेशन-मास्टर को नया कोट मिल जाता था और पुराना उसी का हो जाता था। यह कोट पिता के पास अपनी अवधि समाप्त करके भाई साहब के पास आ गया था और जब वे तीन-चार वर्ष तक उसे पहन चुके तो उन्होंने बड़ी कृपा कर चेतन को दे दिया था। चेतन ने उसे फ़िट करवा लिया था। नयी काट के होते भी वह किसी कबाड़ी की दुकान से ख़रीदा हुआ दिखायी देता था। इतने पर भी जब चेतन नये धुले कपड़ों पर उसे पहनता तो उसके लम्बे घुँघराले बालों और खुले गले के साथ वह उसे कुछ बुरा न लगता था।

कविराज, उनकी दयामयी पत्नी और उनके बच्चे इंटर में बैठे थे और जयदेव, यादराम और मन्नी के साथ चेतन थर्ड में।

वह इतना प्रसन्न था कि डिब्बे में सोने के लिए यथेष्ट स्थान होने पर भी उसे नींद न आ रही थी अमृतसर के स्टेशन पर उनके साथ जालन्धर का एक युवक आ बैठा। चेतन को पहचान कर उसने 'नमस्ते' की। चेतन उसे पहचान तो न पाया, पर जब उसे ज्ञात हुआ कि वह उनके मुहल्ले के निकट ही का रहने वाला है तो उसने बड़े गर्व-स्फीत स्वर में उसे बताया कि वह स्वास्थ्य बनाने के लिए शिमला जा रहा है और उससे यह प्रर्थना भी कि यदि कष्ट न हो तो उनके घर जा कर वह चेतन की माँ और छोटे भाई नित्यानन्द को उसकी कुशल-क्षेम का समाचार अवश्य दे दे। "कहना", चेतन ने उससे कहा, "चेतन शिमला जाते हुए गाड़ी में मिला था। वह तीन-चार महीने वहाँ रहेगा और स्वास्थ्य ठीक होने पर लौटेगा।"

यह कह कर वह अपने उस जालन्धरी साथी के चेहरे पर ईर्ष्या-मिश्रित-आदर का भाव टटोलने लगा।

गाड़ी लगभग रात के एक बजे जालन्धर पहुँची थी। यादराम अपनी छः फुट लम्बी सुगठित युवा देह लिये नंगी सीट पर ही सो गया था। उसकी पत्नी ज़रा-सा घूँघट खींच कर बैठी-बैठी ऊँघ रही थी पर चेतन की आँखों में नींद न थी। उसने खिड़की से सिर निकाल कर अपने चिर परिचित स्टेशन को देखा। इधर-उधर निगाह दौड़ायी कि यदि कोई परिचित टिकट-चेकर दिखायी पड़ जाय तो उसे अपने शिमला जाने का समाचार दे किन्तु दूर तक देखने पर भी उसे कोई परिचित टिकट-चेकर न मिला।

उनींदी आँखें लिये, बाहर प्लेटफ़ार्म ही पर मेज़-कुर्सियाँ सजाये, कुछ बाबू अपने काम में निमग्न थे। उनके लिए जैसे गाड़ियों का आना-जाना, मुसाफ़िरों का चढ़ना-उतरना, इंजनों की चीखें, गार्डों की सीटियाँ कुछ भी महत्व न रखती थीं। संसार के कोलाहल में रहते हुए भी उससे दूर रहने वाले योगियों की भाँति जैसे निर्लिप्त वे अपनी साधना में रत थे। चेतन ने बड़ी ऊँचाई से एक बड़ी दयाभरी दृष्टि उन पर डाली। उन्हें क्या पता था कि जब

वे इस ऊमस में, निचुड़ते हुए कपड़ों के साथ, मेज़ों पर झुके हुए हैं, उनके पास ही खड़ी गाड़ी में बैठा एक युवक शिमले की ठंडी हवाओं का आनन्द लूटने जा रहा है।

चेतन के मन में आया था कि एक बार उतर कर स्टेशन पर टहले, ज़रा प्लेटफ़ार्म के बाहर जाय, हो सके तो स्टेशन के चिर-परिचित कुएँ का ठंडा पानी ही पिये। पर उसे याद आया कि रात आधी से ज़्यादा बीत चुकी है, कुआँ खाली होगा और सबील पर पानी पिलाने वाला कहीं मीठी या कड़ुवी नींद के मज़े ले रहा होगा।

गाड़ी जालन्धर से चली तो वह सीट पर पाँव फैला कर लेट गया। लेट गया, पर उसे नींद नहीं आयी और प्रातः जब गाड़ी कालका पहुँची और जयदेव ने उसे छुआ तो वह ऐसे उठ बैठा जैसे अभी लेटा था।

कविराज कालका उतर गये थे। वे कार द्वारा शिमला पहुँच रहे थे। "तुम पहली बार शिमला जा रहे हो," उन्होंने कालका स्टेशन पर चेतन से कहा था, "शायद तुम्हें बहुत चक्कर आयें इसलिए तुम गाड़ी ही से जाओ।" और उन्होंने जयदेव को आदेश दिया था कि वह चेतन के आराम का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

उन्हें सपत्नीक मोटर में सवार करा के जयदेव, यादराम और उसकी पत्नी के साथ चेतन शिमला को जाने वाली डिबिया-सी गाड़ी में तीली की भाँति ठस कर जा बैठा था।

उस नन्हीं-सी गाड़ी में बैठ कर शिमला की सैर का आनन्द लेने की आकांक्षा चेतन के हृदय में बचपन से दबी पड़ी थी। चौथी कक्षा में उसकी पुस्तक में 'शिमला की सैर' शीर्षक से एक बड़ा मनोरंजक लेख था। जिस दिन उसने वह लेख पढ़ा था, वह घर आ कर घंटों बैठा कल्पना-ही-कल्पना में शिमला की सैर का आनन्द लेता रहा था। 'शिमले को जाओ तो बड़ा मज़ा आता है'—पुस्तक में लिखा था—'रेल छुक-छुक करती धीरे-धीरे चलती है, कभी इधर मुड़ती है, कभी उधर मुड़ती है, साँप की भाँति बल खाती हुई सुरंग में दाखिल हो जाती है। डिब्बे में अँधेरा छा जाता है।

बत्तियाँ जल उठती हैं, लगता है जैसे रात हो गयी हो....' इस परिच्छेद में शिमला को जाने वाली छोटी-सी पटरी और उस पर चलने वाली नन्हीं-सी गाड़ी का एक चित्र भी दिया गया था, जिसमें उस ७० मील लम्बी रेल की पटरी का एक छोटा-सा टुकड़ा बल खाता हुआ दिखाया गया था। उस पर एक छोटी-सी गाड़ी भी थी जो एक सुरंग से निकल रही थी। उस रात जब चेतन अपने बिस्तर पर लेटा तो बार-बार उसके मस्तिष्क में वह चित्र घूमता रहा और बार-बार अपने आपको उस छोटी-सी गाड़ी की खिड़की में बैठे, 'शिमला की सैर' का आनन्द लेते देखता रहा।

कालका से शिमले को जाने वाली इस गाड़ी के डिब्बे में बैठते हुए चेतन के मस्तिष्क में वह चित्र और उससे सम्बन्ध रखने वाला शिमला की सैर का वृत्तांत घूम गया। मन-ही-मन उसने इस सैर का अवसर देने के लिए कविराज जी को धन्यवाद भी दिया।

किन्तु उसका यह उल्लास शीघ्र ही भंग हो गया और उसकी कृतज्ञता का वेग भी कम हो गया। डिब्बा यात्रियों से इतना भर गया कि उसके लिए सिर तक हिलाना कठिन हो गया। एक-दो बार उसने जयदेव की ओर करुणा भरी दृष्टि से देखा, किन्तु वह स्वयं इस प्रकार बैठा था कि उसके लिए गर्दन तक मोड़ना कठिन था।

'बड़ोग' तक पहुँचते-पहुँचते एक ही जगह बैठे-बैठे उसका शरीर अकड़ गया था। रात का जगा वह घुटने तक फैलाने को तरस गया। इतनी भीड़ थी कि उसका दम घुटने लगा और सिर में असह्य पीड़ा होने लगी। गाड़ी जब स्टेशन पर रुकी तो वह बड़ी कठिनाई से खिड़की से कूद कर बाहर निकल पाया।

बड़ोग के स्टेशन पर दुर्भाग्य से उसे कुछ भूख-सी लगी और उसने स्टेशन पर दो-चार कचौड़ियाँ खा लीं। इसके बाद जा कर जब वह बैठा और गाड़ी साँप की भाँति बल खाने लगी और दायें-बायें गिरिमालायें बनने-मिटने लगीं तो उसका सर चकराने लगा। तभी उसके साथ बैठी एक स्त्री ने बाहर को मुँह करके क़ै की। चेतन का अपना जी मतला उठा।....इसके बाद उसे

इतना ही याद है कि जब शिमले के स्टेशन पर जयदेव ने उसे कंधे से हिलाया तो घुटनों में सिर रखे अचेत-सा पड़ा था।

'शिमला को जाओ तो बड़ा मज़ा आता है'—सड़क पर चलते-चलते उस लेख की याद आ जाने पर बेज़ारी से सिर हिला कर चेतन ने एक 'ऊँह' की! उसके माथे में अब भी पीड़ा थी और शरीर, लगता था, जैसे पत्थरों से पिस गया है। यादराम के झकझोरने पर जब वह गिरता-पड़ता स्टेशन के बाहर आया था तो उसने जैसे पहली बार उस धूप को देखा था जो बाहर पेड़, पौधों, सड़कों और मकानों पर खिली हुई थी। निखरी, धुली, चमकती, तेज़—पर जलाने वाली नहीं, शरीर को हल्की-हल्की गर्मी पहुँचाने वाली। किन्तु चेतन को कुछ भी अच्छा न लग रहा था—जयदेव ने सामान गिनवा कर कुलियों की पीठ पर लदवाया और खुश-खुश उनके पीछे चल पड़ा था। यादराम भी खुश था और छोटे-से घूँघट से मन्नी की मुस्कान भी दिखायी दे जाती थी—लेकिन चेतन को कोई भी चीज़ अच्छी न लग रही थी। घिस-टता हुआ-सा वह उनके पीछे चला जा रहा था। उसे लगता था जैसे वह किसी विचित्र, वीरान नगर में पहुँच गया है जिस पर किन्हीं अनजाने आक्र-मणकारियों ने अधिकार जमा रखा है। अपने साथ चले आने वाले कुली उसे उस नगर के ऐसे वासी लग रहे थे जो उन विजेताओं के दास बन गये थे और कठिन श्रम का दंड भोग रहे थे।

उनके शरीर पर मैले-कुचैले चीथड़े लिपटे हुए थे जो मैल और पसीने से कपड़े के बदले कीचड़ ही के बने दिखायी देते थे। इतना-इतना भारी बोझा उठा रखा था उन्होंने कि चेतन आश्चर्य-चकित-सा उन्हें देख रहा था। देर तक उसकी दृष्टि अपने साथ-साथ जाने वाले कुली पर लगी रही। उसके पाँव में धूल से भरे भारी चप्पल थे, टाँगें घुटनों तक मैल से सनी हुई थीं, बाहों पर मछलियाँ उभर आयी थीं, पीठ पर सात ट्रङ्क एक साथ उठाये, लठिया के सहारे वह चला जा रहा था।

तभी एक रिक्शा छनछनाती हुई उसके पास से गुज़र गयी। चार वर्दीपोश कुली उसे भगाये लिए जा रहे थे और एक मोटा, गंजा अंग्रेज़ मज़े से उसमें बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था। घोड़ों और बैलों के स्थान पर पुरुषों को जुते हुए चेतन ने पहली बार देखा था। बाद में उसे ज्ञात हुआ कि शिमले की माल पर मोटर, इक्का, ताँग कुछ भी नहीं चल सकता। शिमले के प्रभुओं को आदमी की सवारी अधिक पसन्द है। चेतन ने पीछे मुड़ कर देखा। धूप से उस अंग्रेज़ का गंजा सिर चमक रहा था और कुलियों के पाँव नंगे थे। चेतन को लगा जैसे संसार का समस्त सुख-वैभव चन्द गंजे आदमियों के हिस्से में आया है। शेष सब तो उनकी सवारी को खींचने वाले वाले पशु हैं।

लोअर बाज़ार के इस सिरे पर कविराज जी ने अपने लिए औषधालय किराये पर ले रखा था। उस पर उनका बोर्ड उनके आने से पहले लग चुका था। कुछ सामान वहीं उतरवा दिया गया और यादराम को वहाँ ठहरने का आदेश दे कर वे आगे बढ़े। पूछने पर चेतन को पता चला कि उनको 'रुल्दू भट्टा' जाना है, क्योंकि निवास के लिए कविराज जी ने मकान वहीं लिया है।

कुछ दूर चल कर वे बायीं ओर मुड़े। सामने एक सुरंग थी जो माल के नीचे-नीचे ईदगाह को जाती थी। उसमें प्रवेश करते ही पहली बार चेतन को अनुभव हुआ कि वह पहाड़ पर पहुँच गया है। ठंडी भीगी हवा का एक झोंका आया और उसे लगा जैसे मन का सब ताप मिट गया हो। यद्यपि वर्षा ऋतु अभी आरम्भ न हुई थी; तो भी पहाड़ में से रिस-रिस कर पानी सुरंग की अर्ध-गोलाकार दीवार को भिगो रहा था और अणु-परमाणुओं-सी नन्हीं-नन्हीं बूँदें हवा में उड़ रही थीं। बिजली के नन्हें-नन्हें बल्ब सुरंग में धूमिल प्रकाश की सृष्टि कर रहे थे और सुरंग के दूसरे दरवाज़े के अर्ध-गोलाकार प्रकाश में से आते हुए मनुष्य बड़े भले प्रतीत होते थे।

रुल्दू भट्टा ईदगाह के नीचे बीस-तीस घरों की एक छोटी-सी बस्ती है, जिसके निर्माण में ईंट-पत्थरों के स्थान पर लकड़ी ही से अधिक काम लिया

गया है—लकड़ी की सीढ़ियाँ, लकड़ी के फ़र्श और लकड़ी की छतें।

कविराज ने मकान की दूसरी मंज़िल किराये पर ली थी। सीढ़ियाँ चढ़ कर कुली ने सामान रख दिया। चेतन इस बीच में बिलकुल थक गया था। दीवार से पीठ लगा कर वह अपने बँधे बिस्तर पर बैठ गया! लकड़ी के फ़र्श पर उसने टाँगें पसार लीं और चुपचाप दूसरों को काम करते देखने लगा।

●

३९

शिमले के अपने इस निवास में, जहाँ दूसरी कई बातों के सम्बन्ध में चेतन की धारणाएँ बदलीं, वहाँ कविराज की महानता और कविराज-पत्नी की सहृदयता के सम्बन्ध में भी चेतन के विचार बदल गये।

इन तीन महीनों में उसने 'बीबी जी' की कुछ झाँकियाँ ही देखीं और उसे मालूम हो गया कि वे और चाहे जो हों, सहृदय और उदार कदापि नहीं।

बीबी जी को उसने पहली बार लाहौर और फिर कालका के प्लेटफ़ार्म पर देखा था। गाड़ी रात के समय लाहौर से चली और प्रातः कालका पहुँची थी, इसलिए दोनों ही बार वह उन्हें भली भाँति न देख पाया था। फिर उसे कुछ संकोच-सा भी था। लेकिन उस डिबिया-सी गाड़ी में छः घटे बन्द रहने के बाद शिमले में कविराज जी के निवास-स्थान पर पहुँच कर जब वह हताश-सा अपने बँधे हुए बिस्तर पर बैठ गया, तो उसने जैसे पहली बार आँख भर कर उन्हें देखा।

वे कुलियों से सामान उतरवा कर उसे ठीक जगह रखने की व्यवस्था कर रही थीं। पतला-छरहरा शरीर, बत्तीस-पैंतीस वर्ष की आयु, तीखे नक्श, तिकोन-से चेहरे पर सजती हुई लम्बी नाक, भरे-भरे गाल और गोरा रंग। चश्मा उनके मुख पर सजता था, किन्तु ढूँढ़ने पर भी चेतन को वह स्निग्धता और सौहार्द्र वहाँ दिखायी न दिया जो कविराज जी की बातें सुन कर, उसकी कल्पना ने, उनकी पत्नी की आकृति पर बना लिया था। उनका मस्तक

चौड़ा था, किन्तु उस पर तेवर चढ़े हुए थे, भ्रूभंग थे और ओठ जैसे भिंचे-से थे। पहले उसने समझा कि रास्ते की थकन और परेशानी ने उनके मस्तक पर वे लकीरें बना दी हैं, पर बाद के तीन महीनों में उसने सदैव उन्हें वहाँ पाया और उनके ओंठ सदैव भिंचे रहे। चेतन की बड़ी इच्छा रही कि वह उन ओठों पर मुस्कान देखे, पर शिमले के अपने उस प्रवास में उसे वह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। तब उसने जान लिया कि वह सब मुस्कान तो कविराज जी के कथन में थी, उनकी पत्नी के ओठों पर नहीं। रही सहृदयता, तो ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये चेतन को पता चलता गया कि वह सहृदयता भी कविराज के शब्दों ही में थी, उनकी पत्नी के हृदय में नहीं और न उनके अपने ही दिल में। उसे यह भी ज्ञात हो गया कि अपने से छोटों के प्रति उनकी पत्नी के हृदय में दया के स्थान पर सदैव एक तीव्र घृणा विराजमान रहती है, जिसे कविराज अपनी वाणी की मिठास में छिपाये रखते हैं।

शिमला पहुँचने के पहले दिन तो उसने उन्हीं के साथ खाना खाया और वहीं सोया भी, पर सुबह ही कविराज जी ने उसका बिस्तर दवाखाने पहुँचा दिया। "तुम्हारा मन यहाँ ऊब जायगा," उन्होंने कहा, "यह जगह बाज़ार से दूर है, फिर कुछ दिनों में ही बरसात आरम्भ हो जायगी, प्रतिदिन बाज़ार जाने में तुम्हें कष्ट होगा।" और उन्होंने उसे यह भी सुझा दिया कि शिमले में हर तरह के होटल हैं, जहाँ ७ रुपये से ५० रुपये मासिक तक पर खाना मिल सकता है।

औषधालय में सारी जगह का निरीक्षण करके उन्होंने उसके लिए एक कोना भी नियत कर दिया, जहाँ उसका बिस्तर रात को बिछाया और दिन को उठाया जा सके। इस ओर से निश्चिन्त हो कर, मूँछों में हँसते हुए उन्होंने कहा, "शिमले में तो आधे निवासी फ़र्श ही पर सोते हैं, चारपाइयाँ यहाँ बड़ी कठिनाई से मिलती हैं।" फिर उन्होंने अपनी मिसाल दी थी कि वे जब पहाड़ जाते हैं, सदैव धरती ही पर सोते हैं। धरती पर सोने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। स्वास्थ्य के लिए भी धरती पर सोना बड़ा हितकर है।

इससे आदमी की शक्ति बढ़ती है और स्वावलम्बन की भावना पैदा होती है। फिर चेतन के ज्ञान में वृद्धि करते हुए उन्होंने यह भी बताया कि संसार में ७५ प्रतिशत महान व्यक्ति उन्हीं लोगों में से उठे हैं, जो धरती पर सोने को बुरा नहीं समझते।

किन्तु एक सप्ताह बाद ही यह सब भूल कर वे उसे फिर घर ले गये और उन्होंने उसे एक चारपाई भी दे दी।

कदाचित उन्होंने यह अनुभव किया कि जयदेव और यादराम की संगति तथा मिडिल बाज़ार का सामीप्य होने के कारण चेतन संतोषजनक रूप से काम नहीं कर पा रहा है। किसी औषधालय में रोगियों के बैठने का कमरा किसी लेखक के लिए उपयुक्त स्थान है भी तो नहीं। उसे दवाखाने गये एक सप्ताह हो गया था और उसने पुस्तक की एक पंक्ति भी न लिखी थी।

"यहाँ तुम्हें धरती पर सोना पड़ता है," उन्होंने एक दिन औषधालय में उससे कहा, "रात को बिस्तर बिछाना और सुबह उठाना एक मुसीबत है। तुम ठहरे लेखक! तुम्हें तो चाहिए कि बिस्तर बिछा रहे, पुस्तकें तुम्हारे आस-पास बिखरी रहें, सोते-जागते, उठते-बैठते, पढ़ने-लिखने की पूरी स्वतन्त्रता तुम्हें प्राप्त हो। घर में एक कमरा तुम्हारे लिए पृथक कर दिया जायगा। चारपाई का प्रबन्ध कर दूँगा। एकांत होगा। तुम्हें अपनी पुस्तकें, अपने कागज़ अपनी चीज़ें रखने की पूरी सुविधा होगी। तुम अपनी इच्छा के अनुसार उठ-बैठ, लेट-सो सकोगे और फिर यहाँ नहाने के लिए भी कोई जगह नहीं। वहाँ सब प्रकार की सुविधा होगी।"

रुल्दू भट्ठे के मकान में कविराज जी ने उसे सीढ़ियों के पार वाला कमरा दे दिया। इस कमरे का एक दरवाज़ा अन्दर की ओर और दूसरा बाहर की ओर सीढ़ियों में खुलता था। उसी ओर एक खिड़की भी थी। एक छोटी-सी लकड़ी की अँगीठी भी कोने में बनी हुई थी। चेतन ने उस पर साबुन, तेल और शेविंग का सामान करीने से रख दिया। जो चारपाई उन्होंने उसे दी, उसे चेतन ने खिड़की के पास बिछा लिया। कमरा कुछ अँधेरा था, इस

इसलिए उसने खिड़की के प्रकाश में बैठ कर काम करना उपयुक्त समझा। पुस्तकें रखने की समस्या कठिन थी। (क्योंकि कमरे में कोई आलमारी न थी) सोच-सोच कर चेतन बाज़ार से एक चटाई ले आया और उसे सामने की दीवार के साथ बिछा कर उसने अपनी सब पुस्तकें उस पर चुन दीं।

एक तरह से यह कमरा उसे औषधालय के वेटिंग-रूम से बहुत अच्छा लगा।

दूसरे दिन कविराज जी औषधालय को जाने से पहले उसके कमरे में आये। मूँछों में मुस्कराते हुए उन्होंने कमरे की सजावट पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डाली, उसकी प्रशंसा की और बोले, "यह कमरा सिर्फ़ तुम्हारा है, तुम इसमें पढ़ो-लिखो, सोओ-जागो, मालिश अथवा व्यायाम करो, तुम्हें किसी प्रकार की रोक नहीं। अन्य किसी प्रकार का कष्ट यदि हो तो मुझसे कह देना।" फिर रुक कर उन्होंने पूछा, "रात को दूध आदि तो नहीं पीते तुम ?"

"मैं रात को डेढ़ पाव दूध पीता हूँ।"

"तुम्हें कम-से-कम आध सेर पीना चाहिए।"

"डेढ़ पाव पीने का स्वभाव भी मैंने बड़ी मुश्किल से डाला है।"

इस पर कविराज हँसे, फिर उन्होंने दूध के गुणों पर एक छोटा-सा भाषण दिया और कहा, "यादराम की पत्नी तुम्हारे लिए दूध अँगीठी पर रख दिया करेगी। तुम सोते समय पी लिया करना।" यह चेतावनी उन्होंने उसे दे दी कि वह दस बजे तक घर पहुँच जाया करे, क्योंकि दस बजे सब सो जाते हैं और इसके बाद यदि कोई आये तो बीबी जी बुरा मानती हैं।

कविराज यह कह कर मूँछों में मुस्कराते हुए चले गये, पर चेतन को शीघ्र ही पता चल गया कि बीबी जी केवल दस बजे के बाद आने का ही बुरा नहीं मानतीं और भी बीसियों बातों का बुरा मानती हैं।

चेतन के वहाँ फिर लौट आने ही को उन्होंने ऐसी टेढ़ी दृष्टि से देखा कि दूसरी सुबह शौचादि के लिए उसे अन्दर के शौचालय में जाने का साहस

नहीं हुआ। मन्नी ने उसे बता दिया कि नीचे घाटी में शौचालय बने हुए हैं और वह निश्चिन्त हो कर वहाँ निवृत्त हो सकता है।

ये शौचालय रुल्दू भट्ठे से काफ़ी नीचे खड्ड में बने हुए थे। बनवाने वाले ने उन्हें नौकरों के लिए बनवाया था। टीन की एक चारदीवारी थी और ऊपर छत के नाम पर टीन की चादर तक न थी। वर्षा के दिनों में वहाँ बैठना बड़ा कष्ट-साध्य था। पर चेतन मन्नी से पानी का लोटा ले कर वहीं चला गया। नहाने के लिए भी उसने अन्दर स्नान-गृह में जाने का प्रस्ताव नहीं किया। चुपचाप लोटा और बाल्टी ले कर वह रुल्दू भट्ठे के नल पर चला गया जो ऊपर माल को जाने वाले मार्ग के एक किनारे बना हुआ था।

उसके आराम का इतना ध्यान रखने वाले कविराज जी को शायद इसमें कोई विषमता नहीं दिखायी दी। वह नहा रहा था जब वे औषधालय को जाते हुए वहाँ से गुज़रे। उसे सड़क के किनारे नहाते देख कर उन्होंने पूछा, "अच्छा यहाँ नहा रहे हो?"

"मुझे खुले में स्नान करना भाता है," चेतन ने अपनी हीनता को गर्व का विषय बना कर कहा।

"तुम बड़े साहसी हो?" कविराज हँस कर बोले और फिर अपने रास्ते चले गये।

और जब बरसात की हवाएँ अपने परिपार्श्व में काले-कजरारे मेघों को लिए हुई आयीं और दिन-रात पानी बरसने लगा, तब भी चेतन साहसी बना रहा! उसी बेछत की, नौकरों वाली टट्टी में शौचादि के लिए जाता रहा और वहीं सड़क के किनारे नल पर नहाता रहा।

कविराज प्रति-दिन गर्म पानी से स्नान करके, सर्दी होने के कारण ओवरकोट पहने, हाथों पर दस्ताने चढ़ाये, छड़ी हाथ में लिए रोज़ उसके पास से निकलते, कई बार अपने मित्रों में उसके साहस का बखान भी किया करते, किन्तु अपने निजी स्नान-गृह के समीप उन्होंने या यों कह लीजिए कि उनकी सहृदय-पत्नी ने उसे एक दिन के लिए भी फटकने न दिया। यह और बात है कि एक दिन उनके पड़ोसी ने दयाभाव से चेतन को अपने स्नान-

गृह में नहाने की आज्ञा दे दी और चेतन ने शीत में खुले नल पर ठिठुरते नहाने के कष्ट से मुक्ति पायी।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उसे पता चलता गया कि वह तो उसी प्रकार कविराज का नौकर है जिस प्रकार जयदेव अथवा यादराम, कि कविराज दूसरे बीसियों शोषकों की भाँति एक शोषक हैं, कि वे उसे शिमले केवल वह पुस्तक लिखवाने के विचार से लाये हैं। उसे इस बात का भी पता चल गया कि पहले भी एक-दो कलाकारों का स्वास्थ्य वे इसी प्रकार सुधार चुके हैं और इस पुण्य का फल वे पुस्तकें हैं जो सहस्रों की संख्या में उनके नाम से बिक रही हैं।

शिमला चलने से पहले कविराज जी ने बड़ी चतुराई से उसे अपने लिए पुस्तक लिखने को राज़ी कर लिया था। हुआ यों कि जब कविराज जी ने उससे कहा कि वह उनके साथ चले, आराम करे स्वास्थ्य बनाये, वे उसे खर्च-पानी के लिए पचास रुपये मासिक भी देंगे तो चेतन ने कविराज जी से कहा कि वे उसे कोई-न-कोई काम अवश्य बता दें। उसके स्वाभिमान को यह स्वीकार नहीं कि वह उनके सिर पर बोझ बन कर जाय।

उसके मन में स्वयं ही वह बात उत्पन्न हुई थी अथवा कविराज के जीवन की घटनाएँ सुन कर उसे अपने स्वाभिमान का ध्यान हो आया था, इसका ठीक-ठीक निश्चय तो नहीं किया जा सकता, पर शिमला ले चलने के प्रस्ताव को सुन कर और यह जान कर कि उसे वहाँ काम अधिक न करना होगा, उसने कृतज्ञता का भाव प्रकट किया था तो कविराज जी ने बातों-बातों में अपने जीवन के आरम्भिक संघर्ष की एक घटना उसे सुनायी थी—"मेरे एक मित्र ने मेरी आर्थिक सहायता की थी," उन्होंने कहा, "पर उस समय मैं उनके रुपये वापस न दे सकता था, इसलिए मैंने साल भर तक किसी प्रकार का शुल्क लिये बिना उनके बच्चों को पढ़ाया।" वे अपनी रौ में इसी प्रकार की कई घटनाएँ सुना गये, जब अपने सहायकों से जो कुछ उन्होंने पाया, उससे कहीं अधिक उन्हें दिया। चेतन यद्यपि पहले भी इस बात पर ज़ोर देता था कि उसे काम बता दिया जाय, पर यह सब सुन कर उसने बिना काम जाने,

उनके साथ जाने से इनकार कर दिया था।

तब कविराज जी ने, जैसे विवश हो कर, उसे बताया था कि उनका विचार बच्चों के जन्म-मरन और लालन-पालन के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने का है। उन्होंने उसे अमरीका की एक पत्रिका भी दिखायी थी और कहा था कि वह पंजाब पब्लिक-लाइब्रेरी में जा कर देख ले। यदि इस विषय पर कुछ पुस्तकें मिल जायँ तो वे तत्काल लाइब्रेरी के सदस्य बन जायँगे। चेतन उनकी बात समझ गया था और उनकी सहृदयता का बदला देने के लिए उसने मन-ही-मन इस विषय पर उन्हें एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिख देने का निश्चय भी कर लिया था।

बातों-बातों में कविराज जी ने उसे समझा दिया था कि पुस्तक उनके नाम से छपेगी। उसमें बच्चों की समस्त व्याधियों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान संकलित होगा और पाठकों को परामर्श दिया जायगा कि पेचीदगी हो तो तत्काल किसी प्रसिद्ध वैद्य या डाक्टर से परामर्श किया जाय।

चेतन पंजाब पब्लिक-लाइब्रेरी से आठ पुस्तकें चुन लाया था। उन सब को पढ़ कर उसने पुस्तक के पहले परिच्छेदों का खाका तैयार किया था। पहला अध्याय वह लिख चुका था। उसमें उसने प्राक्कथन के रूप में अन्य देशों की अपेक्षा भारत में बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी असामयिक मृत्यु, उनका मरे हुए उत्पन्न होना, जन्म लेने के बाद मर जाना या जीना तो सदा रोगी रहना और ऐसी ही दूसरी बातों का उल्लेख किया था। यौन-सम्बन्ध में माता-पिता की अज्ञता पर भी उसने प्रकाश डाला था। लिखने की शैली यद्यपि वह उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'विवाह के भेद' जैसी सस्ती, घटिया और भावुकता-पूर्ण न रख सका था तो भी उद्देश्य उसका भी वही था जो 'विवाह के भेद' का—पुस्तक पढ़ते ही बच्चों के माता-पिता ज़रा-सी बीमारी पर उनके दवा-खाने भागे आयें अथवा 'रोग-परीक्षा-पत्र' भर के डाक से उनकी औषधियाँ मँगायें! वह उस प्रवंचना के विरुद्ध था, पर कविराज ऐसा चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने उसे 'विवाह के भेद' पढ़ने को दी थी। उसी शैली को उसने अपनाया था।

प्रतिदिन दुकान को जाने से पहले हँस कर वे उसके काम का ब्योरा ले लेते—पूछ लेते कि उसने कौन-सा नया अध्याय लिखा है, वह कौन-सा नया अध्याय लिख रहा है, या फिर आगामी अध्याय में वह क्या लिखना चाहता है। चेतन ने कुछ लिखा होता तो पास बैठ कर उसे सुनते। न लिखा होता तो पूछते कि उसकी तबीयत तो ठीक है, वह सैर तो कर रहा है और हँस कर कहते, "कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, आज का दिन आराम कर लो, कल दुगुना लिख लोगे।" और उसी प्रकार मूँछों में हँसते हुए चले जाते।

एक बार उन्हें कुछ ऐसा लगा कि चेतन उनके अनुमान के अनुसार पूरा काम नहीं कर रहा। तब हँसी-हँसी में उन्होंने उसे जता भी दिया।

वह दोपहर को खाना खाने मिडिल बाज़ार जाया करता था और साधारणतः घंटे भर में वापस आ जाता था। उस दिन उसे देर हो गयी। वह खाना खा कर ऊपर से आ रहा था जब कविराज भोजन और आराम के उपरान्त औषधालय को जाते हुए उसे मार्ग में मिल गये और उन्होंने हँसते हुए पंजाबी में कहा—*"घोड़िया, तू कम्म कुझ ज़्यादह नहीं कर रिहा।"

यद्यपि 'घोड़ा' उनके प्यार का शब्द था, पर रात को जब चेतन लेटा तो उसे नींद न आयी। प्रत्येक घटना अपने यथार्थ रूप में उसके सामने आने लगी। उसने अनुभव किया—वह, जयदेव, यादराम सब घोड़े ही तो हैं। कविराज की ख्याति की गाड़ी में जुते हुए हैं। यह अनुभूति जैसे एक तीर की भाँति उसके हृदय को भेदती हुई चली गयी। ये इतने क्लर्क, मज़दूर, किसान—ये सब घोड़े हैं, विभिन्न गाड़ियों में जुते हुए घोड़े! अपने आराम और सुख की परवाह किये बिना, पसीने से तर, थकन से चूर, दिन-रात काम किये जाते हैं। इसलिए कि उनके प्रभु सफलता की गाड़ियों में बैठे अपने ध्येय तक पहुँच जायँ। बदले में उनको मिलता क्या है? रूखा-सूखा दाना-पानी और बस! उसे पचास रुपये मिल रहे हैं। शिमले जैसे महँगे नगर में पचास रुपये! 'घोड़ा'—एक तीव्र व्यंग्य तथा पीड़ा से वह मन-ही-मन हँसा—'तो वह कविराज की सफलता और ख्याति की गाड़ी में जुता हुआ केवल एक

*अरे घोड़े, तू कुछ ज़्यादा काम नहीं कर रहा।

घोड़ा है—उसने सोचा—उसे बड़ी चतुराई से उसमें जोता गया है। वह जो पुस्तक लिखेगा, उस पर कविराज का नाम होगा। उनके बाद उनके पुत्र, पौत्र और चाहें तो पर-पौत्र तक उससे लाभ उठायेंगे और वह स्वयं क्या पायगा? ५० रू० प्रतिमास के हिसाब से ३ महीनों के केवल डेढ़ सौ रुपये, जिनका अधिकांश वह शिमले ही में खर्च कर जायगा। फिर जिस प्रकार एक घोड़े के अयोग्य होने पर अथवा उसकी आवश्यकता पूरी हो जाने पर उसे हटा दिया जाता है, उसे भी हटा दिया जायगा'....और वह इस भ्रम में था कि उसकी कला से प्रभावित हो कर कविराज या उनकी सहृदय पत्नी, उस दैनिक पत्र की चक्की से उसकी रक्षा करने के हेतु, उसे शिमला ले आये हैं—अपने घर का-सा एक व्यक्ति समझ कर!....घर का-सा....वह फिर उसी व्यंग्य और पीड़ा से मुस्कराया।....उसने निमिष मात्र को भी न सोचा था कि उसकी स्थिति जयदेव अथवा यादराम से तनिक भी भिन्न न होगी।

तभी एक अदम्य विद्रोह उसके रोम-रोम में भभक उठा। न जाने उससे पहले कौन उनकी सफलता की गाड़ी का घोड़ा बना होगा? उसे यह स्थिति स्वीकार नहीं। वह रस्सी तुड़ा कर भाग जायगा। यदि वह घोड़ा ही है तो किसी की गाड़ी में जुतने की अपेक्षा स्वच्छन्द विचरण करेगा।

दूसरी सुबह जब सदा की भाँति वही व्यावहारिक, मशीनी-सी मुस्कान मूँछों पर लिये हुए कविराज उसके कमरे में आये और उन्होंने हँसते हुए पूछा कि उसने पुस्तक का कोई नया परिच्छेद लिखा है? तो उसने सब काग़ज़-पत्र उठा कर उनके सामने रख दिये और कहा, "मुझे छुट्टी दीजिए!" आवेश में वह केवल इतना और कह सका था, "मैं समझता था कि मैं यहाँ स्वास्थ्य बनाने के लिए आया हूँ, पर अब मुझे अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया है।"

निमिष-मात्र से लिए मुस्कान कविराज के ओठों से विलीन हो गयी। फिर तत्काल उसी मुस्कान को तनिक और फैला कर उन्होंने कहा, "तो भाई ठीक तो है, तुम स्वास्थ्य बनाने ही के लिए तो आये हो। खूब मालिश

करो, व्यायाम करो, सैर को जाओ। तुम्हें रोकता कौन है? रहा काम, सो भाई वह तो तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। वह अनिवार्य नहीं। करो, चाहे न करो। यदि तुम यहाँ से अपने स्वास्थ्य को कुछ भी ठीक करके लौटे तो मेरा तुम्हें यहाँ लाना सफल हो जायेगा।"

वे छड़ी घुमाते हुए चले गये और चेतन उस घायल सर्प की भाँति फुफकारता और अन्दर-ही-अन्दर विष घोलता-सा बैठा रहा जो चोट खा कर झपटा तो हो, किन्तु जिसका वार एकदम खाली गया हो।

●

४० सारा दिन चेतन खिन्न-मन-सा बिस्तर पर पड़ा करवटें बदलता रहा। उसकी आँखों पर से सहसा एक पर्दा हट गया था और जो कुछ उसे दिखायी दिया था, वह उसके सदा आदर्श की दुनिया में बसने वाले मन के लिए अत्यन्त वीभत्स था। उसे अपनी स्थिति की यथार्थता का आभास हो गया था और यह कटु आभास उसके मन-प्राण को एक विचित्र-सी क्लान्ति, एक अजीब-से विषाद से भर रहा था। उसकी दशा उस रोगी की-सी थी जिसने कड़वी दवा का एक घूँट ही पिया हो, किन्तु वह एक ही घूँट उसकी जिह्वा, उसके कंठ, उसकी नस-नस को जलाता हुआ चला गया हो। यह कटु अनुभूति उसके मन-प्राण को एक गहरे अवसाद से भर रही थी। आज तक उसके शिशु-हृदय ने दुनिया का पाउडर और रूज़ से ढका हुआ सुन्दर मुख ही देखा था। उसको वास्तविक कुरूपता देख कर उसका मन खिन्न हो उठा। ऐसी कुरूपता भी कहीं है, वह इस बात में विश्वास न करना चाहता था, किन्तु वह जैसे कई गुना हो कर उसके सरल हृदय पर अंकित हो रही थी।

वह शोषित है और कविराज शोषक, इस अनुभूति ने चेतन को झकझोर डाला था। वह चाहता था इस पर विश्वास न करे, पर यह विश्वास जैसे आप-से-आप उसे हुआ जा रहा था। इसे रोकने में वह सर्वथा अशक्त था। उसे लग रहा था जैसे उसके हृदय के चिरनिर्मित दृढ़ दुर्ग की एक

दीवार यथार्थता की बढ़िया के प्रबल वेग से बही जा रही है।

'मुझे क्या हो गया है?' बार-बार यह प्रश्न उसके सामने आता, पर पीड़ा इतनी अज्ञात थी कि उसका केन्द्र ढूँढ पाना उसके लिए कठिन था।

जब वह सोचता तो पाता कि जीवन की कटुता से यह उसका पहला ही साक्षातकार नहीं! वह तो जीवन की कटुता ही में उत्पन्न होकर पला और युवा हुआ। यद्यपि अपने जन्म के सम्बन्ध में उसे कुछ अधिक ज्ञात न था, पर उसने माँ से सुना था कि उनके पुराने खँडहर-से मकान में बरसात की एक रात उसका जन्म हुआ था। निरन्तर कई दिनों से पानी बरस रहा था, उनका मकान कई जगह से टप-टप चू रहा था और कच्चे फ़र्श पर गढ़े बन गये थे। परदादी गंगादेई कई बार वर्षा के कोप को शांत करने के लिए जले कोयले आँगन में फेंक चुकी थी, और वे (माँ और परदादी) मकान के गिर जाने के भय से रात-रात भर जागती रहती थीं। धाय को देने के लिए घर में पैसे न थे। परदादी कहीं से (धर्म शांति अथवा शुद्ध में) आये हुए बर्तन बेच कर कुछ रुपये जुटा लायी थी और प्रसव के पश्चात् माँ को सोंठ और गुड़ मिले संठोले के अतिरिक्त पंजीरी अथवा अछवानी आदि शक्ति-वर्द्धक कोई भी चीज़ न मिली थी। वह तो पूरे चालीस दिन आराम भी न कर पायी थी। परदादी अपनी अन्धी आँखों से चूल्हा झोंकती थी और दो-तीन बार जलते-जलते बची थी, इसलिए ग्यारहवें दिन का स्नान करके ही माँ घर के काम में जुट गयी थी।

चिन्ता, भय, पुष्टिकारक भोजन के अभाव और काम के आधिक्य के कारण माँ का दूध शीघ्र ही सूख गया था और वह चेतन को छै महीने भी अपने स्तनों का दूध न पिला सकी थी। उसके लिए वह बकरी का दूध लेती, पर न जाने क्यों, चेतन को बकरी के दूध से घृणा थी। बकरी ही का नहीं, गाय का हो अथवा भैंस का, उसे सब प्रकार के ऊपरे दूध से घृणा थी। माँ की छातियों से दूध पीने के लिए वह लालायित रहा करता। न पाने पर रोता, पिटता, पिटने पर और अधिक रोता, (यहाँ तक कि उसकी परदादी ने उसका नाम चेतन के बदले चिनकदास रख दिया था) किन्तु माँ दूध

कहाँ से लाती ? उसका दूध तो एकदम सूख गया था।

वह बहुत छोटा था जब उसके पिता हिसार के स्टेशन पर तार-बाबू हो कर गये। तब एक बार परदादी को जमुना स्नान कराने वे दिल्ली ले गये थे। माँ भी साथ थी और चेतन भी। वहाँ से माँ ने नन्हीं-नन्हीं कटोरियाँ ख़रीदी थीं। उसका विचार था कि उनके लोभ से चेतन दूध पी लिया करेगा। एक-दो बार चेतन ने पी भी लिया, परन्तु फिर जब कटोरियाँ ऊपरे के दूध का स्वाद न बदल सकीं तो वह कटोरी देखते ही रोने लगता। माँ उसे कान से पकड़ लेती और बरबस लिटा कर दूध पिलाती। वह रोता-चीख़ता, हाथ-पैर पटकता और इस प्रकार अपने शैशव ही में वह मरियल, चिड़चिड़ा और रोना बालक हो गया था।

चेतन को बचपन ही में अपने वातावरण की कटुता का आभास मिल गया था। एक दिन जब वह दूध न पी रहा था और माँ भरी कटोरी हाथ में लिये उसे मना रही थी कि उसके पिता आ गये। एक बार प्यार से, दूसरी बार तनिक कर्कश स्वर में और तीसरी बार गरज कर उन्होंने उसे दूध पीने को कहा। जब इस पर भी उसने कटोरी को मुँह न लगाया तो दड़ से दो थप्पड़ चेतन के पिता ने उसके गालों पर जड़ दिये और क्रोध के आवेश में उसे टाँग से पकड़ कर उलटा लटका दिया। वे उसे इसी प्रकार पकड़ कर दो-एक चक्कर देते, यदि माँ लगभग रोते हुए इतना न कहती, "लाइए, अब पी लेगा।"

पिता ने उसे फिर सीधा खड़ा कर दिया। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। चेतन रोया न था। वह सहम गया था। जब माँ ने कटोरी उसके मुँह से लगायी तो उसने बरबस विष के घूँट की भाँति दूध पी लिया, पर दूसरे ही क्षण उसे क़ै हो गयी। तब उसका मुँह धुलाते हुए, उसकी पीठ पर अतीव दुःख से हल्का-सा थपेड़ा जमाते हुए, माँ ने आर्द्र कंठ से कहा था, "जा कम्बख़्त ! तेरे भाग्य में दूध है ही नहीं।"

यह हल्का-सा थपेड़ा जैसे अपने में एक प्रबल प्रचालन-शक्ति रखता था। उसे आगे ही धकेले जाता था। पीठ पर माँ का थपेड़ा खा कर वह

चला तो उसने पीछे फिर कर न देखा था। वह धीरे-धीरे आगे ही बढ़ता गया। उस क्रूर पिता के नैकट्य से दूर होता गया।

सारा दिन वह निरर्थक, निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहा। गालों से ले कर कनपटियों तक उसे सारी जगह सुलगती हुई प्रतीत होती थी। किन्तु वाह्य पीड़ा के अतिरिक्त उसके नन्हें, अपरिपक्व अन्तर के किसी अज्ञात स्तर में भी कुछ-न-कुछ सुलग रहा था—बिलकुल उसी तरह, जैसे अब अपने उस कमरे में बैठे, उसके अन्तर में कहीं कुछ सुलग रहा था और वह उस स्थान को निर्दिष्ट न कर पा रहा था।

वह पिटते समय रोया न था, पर ज्योंही आँगन से बाहर हुआ था उसकी आँखों से अनायास अविरल आँसू बहने लगे थे। दिन भर ऐसा होता रहा था। जब-जब वह अपना हाथ अपने सुलगते गालों पर ले जाता, उसकी आँखों में आँसू आ जाते।

पिटे हुए पिल्ले की भाँति वह सारा दिन इधर से उधर दुबका फिरता रहा था। दोपहर भर भुस की कोठरी में पड़ा रोता रहा था और साँझ समय जब माँ को उसकी याद आयी थी तो वह पानी वाले के सूने क्वार्टर में पीढ़े पर भूखा सोया पड़ा था।

बाहर वर्षा हो रही थी और चेतन अपने कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ था। अपने बचपन की इस घटना की याद आने पर उसकी आँखें भर आयीं। अनायास उसका हाथ अपने गाल पर चला गया। धीरे-धीरे वह उसे सहलाता रहा। वहीं लेटे-लेटे, गाल को सहलाते-सहलाते, उसके सामने अपने पिता की क्रूर-आकृति घूम गयी और फिर बचपन की वे समस्त घटनाएँ जब वह अपने उस क्रूर पिता के हाथों बुरी तरह पिटा था।

वह पाँच वर्ष का रहा होगा जब उसके पिता 'सैला खुर्द' स्टेशन पर नये-नये नियुक्त हुए थे। तब उन्होंने उसे अंग्रेज़ी सिखाना आरम्भ किया था। चेतन के पिता का विचार था कि उन दिनों स्कूलों में जिस रीति से

शिक्षा दी जा रही थी, वह सर्वथा ग़लत थी। शिक्षा देने का ढंग तो उनके अपने समय ही का उत्तम था। स्कूल ही में छात्र को इस ढंग से पढ़ाया जाता था कि घर जा कर पढ़ने अथवा रटने की उसे आवश्यकता ही न रहती थी। तभी उन्होंने उसी अनूठे ढंग से चेतन को शिक्षा देने का निश्चय किया। उन्हें विश्वास था कि छः महीने ही में अपने विशेष ढंग से शिक्षा दे कर वे चेतन को मैट्रिक में पढ़ने वालों के बराबर ले जायँगे।

चेतन की माँ को जब उनके इस निश्चय का पता चला तो वह डर से सहम गयी। अपना यह ढंग पंडित शादीराम ने अपने बड़े लड़के पर भी आज़माया था और फल यह हुआ था कि माँ को विवश हो कर उसे अपने मायके भेजना पड़ा था। उसने एक-दो बार डरते-डरते कहा कि चेतन अभी बच्चा है, उसमें जान तो है नहीं, वह पढ़ेगा क्या? पर उसके पिता 'सैला खुर्द' के स्टेशन पर नये-नये गये थे और उन्हें पीने-पिलाने वाले मित्रों का पता न था। इसलिए उनके पास अवकाश यथेष्ट था। इस अवकाश को उन्होंने सार्थक बनाना ही श्रेयस्कर समझा। गाड़ी के स्टेशन से चले जाने के बाद वे घर आ जाते और चेतन को अपने उस विशेष ढंग के अनुसार पढ़ाने का प्रयत्न करते।

सबसे पहले उन्होंने चेतन को गीता के कुछ श्लोक रटाये "नैनम् छिन्दन्ति शस्त्राणि"....आदि-आदि। और जब चेतन ने उन श्लोकों को कंठस्थ करने में असाधारण मेधा का परिचय दिया तो चेतन के पिता ने उसे सिर, नाक, आँख, कान, मुँह, टाँग, पैर आदि शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की अंग्रेज़ी बतायी। इसके बाद उन्होंने उसे कुछ अंग्रेज़ी शब्दों के हिज्जे* सिखाने शुरू किये। धीरे-धीरे वे उसे ऐसे शब्दों की अक्षर-रचना पर ले आये जिनमें कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं पर बोले नहीं जाते जैसे white, write, night, might आदि। चेतन को यह सब समझ में न आता। जब अक्षर लिखे जाते हैं तो बोले क्यों नहीं जाते? पर पिता से पूछने का साहस उसे न होता। वह चुपचाप उन्हें रट लेता। पिता ने उसे जितने शब्द और

*हिज्जे = वर्ण या अक्षर-रचना।

जितने हिज्जे बताये, चेतन ने उन्हें तत्काल रट लिया। पंडित शादीराम ने घोषणा की कि बड़ा हो कर वह अवश्य डिप्टी कमिश्नर बनेगा। और अपने इस मेधावी पुत्र को डिप्टी कमिश्नरी के योग्य बनाने में उन्होंने अपना कर्तव्य भी शीघ्रातिशीघ्र पूरा कर देना उचित समझा।

पढ़ने में बच्चे के उल्लास और पढ़ाने में पिता की तत्परता देख कर माँ का हृदय काँपा करता। किन्तु चेतन अपनी बाल-सुलभ-जिज्ञासा के कारण हर शब्द की अंग्रेज़ी पूछता और पिता सोल्लास उसे बताते।

शब्दों और उनकी रचना के पश्चात् उन्होंने चेतन को अंग्रेज़ी के छोटे-छोटे वाक्य बताने आरम्भ किये।

वह जाता है—He goes.

वह स्कूल को जाता है—He goes to school.

वह राम और श्याम के साथ स्कूल को जाता है—He goes to school with Ram & Shyam.

वह राम और श्याम के साथ ताँगे में स्कूल को जाता है—He goes to school with Ram & Shyam in a tonga.

जब उसने ये वाक्य याद कर लिये और यह भी सीख लिया कि क्रिया के साथ s अथवा es कहाँ लगता है; I, we, you, they के साथ निरा go और he तथा she के साथ goes क्यों आता है तो चेतन के पिता ने उसे भूत और भविष्यत् के वाक्य बताये। जब गाड़ी स्टेशन पर आती तो वे अपने इस मेधावी पुत्र को बुला लेते और बड़े गर्व स्फीत स्वर में गार्डों के सामने उससे अंग्रेज़ी के वाक्य पूछते। जब वह ठीक-ठीक बता देता और गार्ड आश्चर्य-चकित-से उस नन्हें-से बालक की ओर तकते रह जाते तो चेतन के पिता उसे उठा कर चूम लेते। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, पतली पैनी दूब की भाँति चेतन के कोमल गालों में चुभ जातीं, उसका साँवला रंग और भी साँवला हो जाता और जब पिता उसे नीचे उतारते तो वह भाग जाता और माँ को जा कर अपनी सारी कारगुज़ारी सुनाता। सुनते-सुनते माँ के ओठों पर गर्वीली मुस्कान आ जाती, फिर सहसा वह मुस्कान विषाद की गहरी

रेखाओं में परिणत हो जाती। माँ चुपचाप शून्य में देखने लगती और विषाद-रेखाएँ उसके ओठों से फैल कर उसके सारे मुख-मंडल पर छा जातीं।

तभी एक दिन पंडित शादीराम ने चेतन को उस समय बुलाया जब गाड़ी जा चुकी थी। बात यह थी कि उनका एक मित्र दसवीं श्रेणी में पढ़ने वाले अपने लड़के के साथ 'राहों' जा रहा था। चेतन के पिता ने उसे गाड़ी से उतार लिया था और खाना खाने का निमंत्रण भी दे दिया था और देशी शराब का एक अद्धा भी ठेके से लाने के लिए पानी वाले को भेज दिया था। चेतन जब पहुँचा तो उसके पिता ने पहले बड़े अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में उसकी स्मरण-शक्ति और उसकी बुद्धि के चमत्कार का उल्लेख किया और फिर उन्होंने अचानक अपने उस मित्र के लड़के से दो-चार शब्दों के हिज्जे पूछे। कुछ उनकी सूरत, कुछ उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, कुछ उनकी लाल-लाल आँखें, कुछ उनके स्वर की कर्कशता—उस बच्चे ने कई बार उनकी ओर देखा, पर कुछ उत्तर देने के बदले सहमा-सा चुप बना रहा। तब जैसे विजेता के उल्लास से उन्होंने चेतन की ओर देखा और मूँछों को बल देते हुए कहा, "इधर आओ!" चेतन का विचार था कि वे उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरेंगे या उसे उठा कर अपनी जंघा पर बैठा लेंगे। पर जब उससे केवल इतना ही कहा गया, 'इधर आओ!' और वह भी कुछ कर्कश स्वर में तो वह मन-ही-मन तनिक डर गया, पर प्रकट साहस बनाये हुए पिता के निकट चला गया।

तभी पानी वाला शराब की बोतल ले आया। बोतल को देखते ही चेतन के पिता की आँखों में लाली के डोरे कुछ और गहरे हो गये और उन में एक पाशविक-सी चमक झलक उठी। कार्क को खोलते हुए उन्होंने चेतन से पूछा :

"सफ़ेद की अंग्रेज़ी क्या है?"

"ह्वाइट।"

"यह तुम खड़े कैसे हो, सीधे खड़े रहो!"

"चेतन सीधा खड़ा हो गया।

पानी वाले ने मेज़ पर दो कटोरियाँ रख दीं। कार्क खोल कर थोड़ी-थोड़ी मदिरा दोनों कटोरियों में उँडेलते हुए चेतन के पिता ने चेतन को आदेश दिया :

"हिज्जे करो!"

"डब्ल्यू....डब्ल्यू....आई....टी, ई।"

"क्या?" चेतन के पिता बोतल को रखते हुए कड़के और सड़ से एक तमाचा चेतन के गाल पर पड़ा और कनपटी तक खाल सुलग उठी। उसने हकलाते और काँपते स्वर में गाल पर हाथ रखते हुए कहा, "नहीं जी, नहीं जी, डब्ल्यू, एच, आई, टी, ई।"

"पहले क्यों नहीं बताया?" और एक थप्पड़ उसके दूसरे गाल पर पड़ा, और एक मुक्का उसकी पीठ पर।

चेतन डर से काँपने लगा। मुक्का इस ज़ोर से उसकी पीठ पर पड़ा था कि उसकी पीठ दोहरी हो गयी थी। चेतन के पिता ने कटोरी में पड़ी हुई शराब को एक ही घूँट में ख़ाली करके मुँह बना कर कुल्ला किया और पानी वाले को गाली दी कि वह अचार क्यों नहीं लाया। पानी वाला अचार लेने के लिए भागा और चेतन के पिता चेतन की ओर मुड़े। पर चेतन को इसके बाद कुछ भी स्मरण नहीं। उसे कुछ ऐसा आभास है कि उसकी आँखों के आगे पर्दा-सा छा गया था—उसकी उस चेतना के आगे भी, जो उसके मस्तिष्क में बैठी उसे हिज्जे, शब्द और वाक्य सुझाया करती थी। उससे दूसरे शब्दों के हिज्जे पूछे गये थे (वाक्य पूछने की नौबत ही न आयी थी) और न जाने कैसे, उसने काँपते-काँपते जो हिज्जे किये थे, वे सब-के-सब ग़लत थे। उसके पिता उसे उन्मादी की भाँति पीटने लगे थे और उस गार्ड ने बड़ी कठिनाई से उसे उनके चंगुल से छुड़ा कर दरवाज़े के बाहर किया था।

चेतन स्टेशन के कमरे से निकला तो लज्जा, क्रोध और ग्लानि से उसका नन्हा-सा हृदय भरा आ रहा था। आँसू अनायास उसकी आँखों से बहे जा रहे थे। वह किधर जा रहा है, कहाँ जा रहा है, उसे कुछ बोध न

था। वह रोता जा रहा था, उलटे हाथ से आँसू पोंछता जा रहा था और भर आने के कारण बार-बार नाक को ऊपर सुड़कता जा रहा था।

वह घर की ओर न गया था। न जाने क्यों, माँ के सामने यों रोते जाने में उसे लज्जा आ रही थी, शायद उसके नन्हें-से हृदय में कहीं नन्हा-सा अहम् आ बैठा था और उसके अहम् को माँ के सामने यों रोते जाना स्वीकार न था।

वह सीधा माल गोदाम में गया और गेहूँ की बोरियों में मुँह छिपा कर रोता रहा। पके हुए अनाज की सोंधी-सोंधी गंध उसके नथुनों में प्रवेश करके एक विचित्र तन्द्रा-सी उत्पन्न कर रही थी। वह सो गया, किन्तु नींद ने उसके मन से उस लज्जा, ग्लानि, भय और आतंक के बोझ को हल्का न किया। वहीं सोते-सोते उसके सामने कुछ वैसा ही भयानक दृश्य आ गया और उसने स्वप्न में अपने पिता को डाँटते सुना। वह डर कर उठ बैठा। उसने सुना, उसके पिता माल गोदाम की ओर आ रहे हैं। वह चुपचाप बोरियों से उतर कर खिसक गया।

माल गोदाम से निकल कर वह खेतों, खलिहानों में घूमता रहा। उसे खाने-पीने की चिन्ता न थी! खो जाने का भय न था। वह घूमता रहा— निरर्थक, निरुद्देश्य, निरुत्साह!

वह रहँट पर गया और कुएँ की जगत पर बैठ कर चुपचाप रहँट की रूँ रूँ....रीं रीं....सुनता रहा; कृषक-बालक को बड़े मज़े से गाधी[१] पर बैठे, कभी-कभी टिटकारी भरते; बैलों को लगातार उसी चक्कर में घूमते, रहँट की टिंडों[२] को भर-भर कर खाली होते देखता रहा।

वह खेतों में गया और कितनी देर तक वहाँ गेहूँ की बालियों को बैलों के खुरों के नीचे पिस कर दानों को छोड़ते छाज[३] की सहायता से भुस और

१ गाधी = बैलों के पीछे उन्हें हाँकने वाले के बैठने की जगह। २ रहँट के कोहिरे पर आजकल टीन के डिब्बे लगे होते हैं जिनमें पानी भर कर नीचे से आता है। पहले उस पर मिट्टी के कूज़े लगे होते थे, इन्हें पंजाबी भाषा में टिंडें कहते हैं।

३ छाज = सूप।

दानों को अलग-अलग होते, सांधे और तंगली की मदद से दानों के ढेर बनते और बोरियों में अनाज को भरे जाते ताकता रहा।

वह चरसे पर भी गया। कितनी ही देर तक वह मन्त्र-मुग्ध-सा वहाँ खड़ा चरसे की 'लाओ'[१] को बैलों द्वारा खींचे जाते देखता रहा। जब बैल लाओ को ले कर नीचे को जाते तो हाँकने वाला तनी हुई लाओ पर बैठ जाता। उधर बैल ढलवान में पहुँचते इधर चरसा ऊपर आ जाता और किसान उसे थामते हुए ज़ोरों से संगीत भरे स्वर में हाँक लगाता—"बेलो रब्ब ओ!"[२] और चरसे से पानी की नहर बहने लगती। चरसे को खाली कर वह कुएँ में फेंकता। बैल फिर ऊपर को चल पड़ते; चर्खी पर लाओ घिसटती जाती। अर्से तक वहाँ खड़ा चेतन निरन्तर यही क्रम देखता रहा।

किन्तु प्रकट ये दृश्य देखते हुए भी वह उन्हें न देख रहा था। उद्भ्रान्त-सा वह घूमता रहा था। उसकी आँखें तो उन सुखद दृश्यों के स्थान पर कोई दूसरा ही दृश्य देखती रही थीं; अनायास भर-भर आती रही थीं और वह उस हाथ से जो उड़ती हुई मिट्टी के कारण मैला हो चुका था, अपने आँसू पोंछता रहा था। उसके नन्हें से हृदय में बवंडर-सा उठता-मिटता रहा था। उसे भारी दुःख था। पर वह दुख निर्दोष पीटे जाने का था, सोचने का अवसर दिये बिना पीटे जाने का था अथवा दूसरे लड़के के, सामने पीटे जाने का, इसका विश्लेषण उसका नन्हा-सा मस्तिष्क न कर पा रहा था। उसके गालों की टीस मिट गयी थी, पर उसके नन्हें-से हृदय में जो घाव बन गया था, उसमें असह्य पीड़ा हो रही थी।

वहीं लेटे-लेटे चेतन को लगा कि वह घाव तो अब भी वहाँ है और उसमें पीड़ा उतनी ही तीव्र है। वह आज तक उस पीड़ा को कैसे भूला रहा? उसके सामने उसका अपना नन्हा उद्भ्रान्त रूप अपनी समस्त व्यथा के साथ आ गया। अपने क्रूर पिता का चित्र भी उसके सामने आया और उसके शैशव का वह दुखद अध्याय जैसे नये सिरे से उसके सामने खुल गया।

---

१ लाओ = रस्सा; २ भगवान ही मित्र है।

संध्या को जब वह थक कर और तनिक आश्वस्त होकर घर आया था तो उसके घुटनों तक मिट्टी चढ़ी हुई थी, बाल बिखरे हुए थे, आँखें रोने के कारण उबल आयी थीं और मैले हाथों से बार-बार पोंछने से उसके चेहरे पर धब्बे बन गये थे। माँ उस समय गाय का दूध दुह कर उसे चूल्हे पर गर्म करने जा रही थी। चेतन को इस अवस्था में देख कर उसने उसे छाती से लगा लिया। चेतन चाहता था उसके आँसू न निकलें, पर सहसा उसे रोना आ गया। किन्तु जब उसने देखा कि उसकी माँ भी रो रही है (कदाचित पानी वाले से उसे सब बात का पता चल गया था। तो वह आप-से-आप चुप हो गया। तब उसे चुपहोते देखकर अथवा अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण माँ ने भी जैसे अपने आँसुओं को बरबस रोक लिया। उसे अपनी छाती से अलग किया और भड़ोली* में उपलों की आग पर सुबह से चढ़े हुए गाढ़े दूध की मलाई उतार कर उसके साथ चेतन को रोटी दी। जब वह खाने लगा तो माँ ने धीरे-धीरे, रसोई का काम करते-करते, चेतन से हिन्दी शब्दों का अंग्रेज़ी अनुवाद, उनके हिज्जे और उन समस्त वाक्यों की अंग्रेज़ी सुनी जो चेतन के पिता ने उसे बताये थे। खाना खाते-खाते चेतन ने अपनी माँ को सब शब्द, हिज्जे और वाक्य ठीक-ठीक सुना दिये। वह न कहीं अटका, न कहीं भूला। किन्तु जब रात को पिता ने उसे सोते हुए झकझोर कर उठाया और शराब के नशे में उसे अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते हुए डाँटा कि वह इतनी जल्दी क्यों सो गया है और कठिन शब्दों के हिज्जे पूछे तो चेतन बिना अटके न बता सका। वह अटका कि उसके थप्पड़ पड़ा, थप्पड़ पड़ा कि उसे सब कुछ भूल गया। इसके बाद उसे इतना स्मरण है कि वह भूलता गया और पिटता गया। हुक्के की नै से पिता ने उसे पीटा और एक बार जब पिटता-पिटता वह दीवार तक आ गया और नै बरामदे के खम्बे में लगने से टूट गयी तो पिता

*भड़ोली = गुरसी = मिट्टी की बनी गहरी सिगड़ी जिसमें कंडों की आग पर दूध पकता है।

ने अपने नशे और क्रोध के आवेश में चूल्हे में से अधजली लकड़ी उठा ली। तब रोते-रोते माँ बीच में आ गयी। तीन-चार लकड़ियाँ उसके लगीं, एक वार चेतन के घुटने पर पड़ा। घुटने का मांस उड़ गया। वह न जाने कितना पिटता यदि परदादी गङ्गादेई अपनी अंधी आँखों और कमान-सी कमर को लठिया के सहारे सम्हाले, चेतन के पिता को गालियाँ देती हुई, उनके बीच न आ जाती और चेतन पर खींच कर मारी हुई लकड़ी उसकी पीठ पर न जा लगती और अपनी दादी को पीटने के पाप का ध्यान करके चेतन के पिता का नशा न टूट जाता।

सारी-की-सारी घटना चेतन के सम्मुख घूम गयी और तभी उसे अपनी शंका का समाधान भी मिल गया। वह सोचता था कि उसके मन में इस अन्याय, क्रूरता तथा अत्याचार के प्रति कभी प्रतिक्रिया क्यों नहीं हुई? अब उसे अचानक लगा कि प्रतिक्रिया तो उसके मन में अज्ञात-रूप से होती थी, किन्तु उसका पता उसे न चलता था। वह उसके अर्ध-चेतन मन में होती थी, अपने उन अवसादमय क्षणों में उस प्रतिक्रिया का रूप ज्ञेय हो कर उसके सम्मुख आ गया। पिट कर खेतों खलिहानों में उसका भटकना; प्रकृति के दृश्यों में निमग्न हो कर अपने मन की पीड़ा को भुलाना; बीमार रह कर अपने पिता की चिन्ता का कारण बनना; पिता के सामने कम जाना—यह सब उस प्रतिक्रिया ही का तो अज्ञात-रूप था।

बात वास्तव में यह थी कि उस प्रतिक्रिया को उसकी आँखों से छिपा लेने वाली, उस कटु वातावरण में रहते हुए भी, उसे उससे ऊपर उठाने वाली एक प्रबल शक्ति उसके अपने अन्तर में अनजाने ही में संचित होती रही थी। वह जब भी कटुताओं की चट्टानों से टकराया तो टुकड़े-टुकड़े होने के बदले, सदा उसी शक्ति के बल पर उभरता रहा। उसी के बल पर खिन्न हो कर भी उसने खिन्नता अनुभव नहीं की। दुखी हो कर भी दुख को भूलता रहा। निराशा की गहन-निबिड़ता में आशान्वित रहा। उसका वह सन्तोष प्रतिक्रिया के अभाव के कारण न था, वरन उस आन्तरिक शक्ति के संचय

के कारण था।

किन्तु अब वह शक्ति उसकी सहायक क्यों नहीं होती ? वह झुँझलाता —कविराज की धूर्त्तता को देख कर और यह जान कर कि वह शोषित है, वह इतना खिन्न, इतना अन्यमनस्क क्यों हो बैठा ? क्यों पहले ही की भाँति इस खिन्नता को झटक कर स्वस्थ हो कर नहीं उठ बैठा ?

संध्या का अंधकार प्रति क्षण गहरा होता जा रहा था। बाहर अनवरत वर्षा हो रही थी। मकानों की छतें मुखर हो उठी थीं। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था। परनालों का पानी शोर मचाता हुआ नालों में मिल रहा था और नालों का पानी उन्मत्त हो उछलता-कूदता नीचे खड्ड में चला जा रहा था। इस समस्त कोलाहल में, बिजली जलाये बिना, अँधेरे ही में चेतन अपने बिस्तर पर अन्यमनस्क पड़ा था। उस सारे कोलाहल में उसे ऐसी नीरवता का आभास हो रहा था जो उसे निगले जा रही थी। पुरानी स्मृतियाँ नयी बन-बन कर उसके सामने आ रही थीं और वह हर बार रो-सा उठता था। उसे लगता था जैसे सारी दुनिया में वह अकेला है और सारी दुनिया उसका शोषण करने पर तुली हुई है।

यद्यपि वह आज दोपहर को भी बाज़ार न गया था और भूखा ही पड़ रहा था, तो भी महज़ खाना खाने के लिए मिडिल बाज़ार जाने की इच्छा उसे बिलकुल न थी। दूध पी कर ही वह सो जायगा, उसने सोच रखा था और वहीं लेटा वह करवटें बदलता, उठता-बैठता, कमरे में चक्कर लगाता अपने मन की गुत्थियों को सुलझाने-उलझाने में निमग्न रहा था।

बाह्य कटुता के निरन्तर प्रहारों ने उसके अन्तर में जिस शक्ति का संचार किया था, वह थी उसकी कल्पना-शक्ति ! जब भी वह दुखी होता, पिटता, तो उस दुख और कष्ट के संसार से निकल कर वह कल्पना के सुखद सुरम्य लोक में जा पहुँचता।

जब वह बहुत छोटा था, तब भी जब दिन के दुख से खिन्न-क्लांत हो वह रात को लेटता तो सोने से पहले उसकी कल्पना उसके सम्मुख राम और सीता की मूर्तियों को ला खड़ा करती। राम उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते, सीता उसे अपनी गोद में ले कर प्यार करती और वह पिता की मार-पीट, झिड़कियों और गालियों का दुख भूल जाता। उसके शरीर की समस्त पीड़ा एक मदिर-मीठी सिहरन में बदल जाती।

कभी वह वृन्दावन के काल्पनिक कुंजों में कान्ह के ग्वाल-बालों में जा मिलता और गोपियों के संग रास रचाता। माँ अथवा परदादी दिन में उसे जो कहानियाँ सुनातीं, रात को वह उन्हीं का नायक बन जाता। उसके अन्दर के किसी गुप्त स्तर में अपने पिता के दुर्व्यवहार के प्रति घोर प्रतिक्रिया हो रही है, अपने इन सुख स्वप्नों में यह बात उसे कभी ज्ञात भी न होती। हो भी न सकती।

ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया, उसकी कल्पना-शक्ति उसके सामने नित्य नये संसार बसाती रही। बाह्य-संसार में प्रेम से वंचित रह कर भी वह कल्पना-संसार में जी भर कर प्रेम पाता रहा; बाह्य-संसार में उतना सफल न होते हुए भी स्वप्न-संसार में सदैव सफल-मनोरथ होता रहा। शैशव से ले कर युवावस्था तक यही आन्तरिक कल्पना-शक्ति उसकी सहायक रही, उसकी समस्त कटुताओं को भुलाये रही। चंगड़ मुहल्ले का कलुषित वातावरण, समाचार-पत्र की घुटी-घुटी, संकुचित, दम घोटने वाली फ़िज़ा उसकी कल्पना के पारस को छू कर प्रशस्त, विशाल, सुखद, सुरम्य, स्वर्णिम हो जाती। वह सोचता—इस वातावरण से वह एक दिन अवश्य ऊपर उठ जायगा, सम्पन्न, सुखी और सफल होगा। अपने अदम्य आशावाद के सामने वह घोर-से-घोर निराशा को भी परास्त कर देता।

उसकी कल्पना के सम्मुख जीवन का महासागर अपनी विशालता को लिए हुए हिलोरें लेता था। अपने आप को वह सदैव उसके तट पर खड़े, चंचल-चपल ऊर्मियों को सोल्लास तकते पाता और सोचता—वह नौका

ले कर इन उत्ताल तरंगों के वक्ष पर खेलता हुआ दूसरे किनारे जायगा; दूसरे किनारे—जहाँ सफलता है, सम्पन्नता है, सुख है। उसे अभी उपयुक्त नौका नहीं मिली और वह किनारे ही पर भाग-दौड़ कर रहा है। पर वह अवश्य ही उपयुक्त नौका पा लेगा, इस बात का उसे विश्वास था। उसकी कल्पना उसके इस विश्वास की नींव को दिन-प्रति-दिन पक्का करती रहती थी।

लेकिन रुल्दू भट्टे के उस अंधकार भरे कमरे में लेटे, अपने उन अवसाद के क्षणों में, उसे अपना यह आशावाद मूर्खता से अधिक कुछ न लगा। पीछे मुड़ कर जो वह देखता तो उसे लगता कि वह तो सदैव ठगा जाता रहा है, उसकी कल्पना उसे सदैव धोखा देती रही है। उसके काल्पनिक प्रासादों की दीवारें सदैव ढहती रही हैं। तट के जिस-जिस भाग पर वह जा कर खड़ा हुआ, वह गिरता रहा है। उसके पाँवों के नीचे से मिट्टी सदैव खिसकती रही है और वह उछल कर दूसरी जगह जा खड़ा होता रहा है। कुन्ती के साथ सुखी जीवन बिताने की अभिलाषा, नीला के साथ सुख के संसार की कल्पना, कविराज की सहृदयता का सहारा पा कर असफलता के उदधि को लाँघ कर सफलता को प्राप्त करने के स्वप्न—सब मिथ्या, सब झूठ, मरीचिका की भाँति निकट रह कर भी दूर! कविराज ने उसे जो अवसर दिया था, उसे वह नौका ही तो समझा था। किन्तु जिसे वह नौका समझा था वह तो ग्राह निकला। और तभी उस शक्ति का झूठ जो आज तक उसे दुख, दैन्य, निराशा और असफलता से ऊपर उठाती आयी थी, उसके उन अवसाद के क्षणों में कई गुना बड़ा हो कर, उसके सामने आ गया। उसका वह सम्बल ही छिन गया। यही कारण था कि जो शक्ति उसे बचपन से ले कर अब तक दुख में सुखी होना सिखाती आयी थी, आज ऐसा करने में नितान्त असमर्थ थी। आज वह अपनी खिन्नता, दुख, अवसाद और निराशा पर विजय पाने में सर्वथा असफल था।

उन निराश क्षणों में जब उसकी आँखों से कल्पना का पर्दा हट गया, उसने सारे संसार को उसके यथार्थ रूप में देखा। उसने पाया कि उसके

आस-पास जो संसार है, उसमें दो वर्ग हैं—एक में अत्याचारी हैं, शोषक हैं; दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं ! यह ज्ञान कि वह पीड़ित और शोषित है, उसे खिन्न किये दे रहा था ।

उसे लगता था जैसे वाटिका की वीथियों में घूमते-घूमते उसने किसी सुन्दर पर विषैले पौधे का पत्ता तोड़ कर मुँह में रख लिया है और उसकी जीभ और ओठ ही नहीं, उसका सीना तक जल उठा है । यदि सफलता के लिए केवल श्रम दरकार होता तो वह जान लड़ा देता, किन्तु छल-छिद्र, धोखा-कपट—क्या वह धोखे का धोखे से, कपट का कपट से मुकाबला कर सकेगा ? और यही उसके दुख का दूसरा कारण था ।

उसकी सरलता को पहली बार जग की धूर्त्तता का सामना करना पड़ा था । माँ ने पाप-पुण्य, भलाई-बुराई के जो विचार उसे घुट्टी के साथ पिलाये थे, वे उसे हवा होते दिखायी देते थे । जिस बुराई के साथ वह अन्तर में लड़ता था, वह तो उसे सर्वव्यापी दिखायी देती थी । सत्य, शिव, सुन्दर में विश्वास करने वाले उसके विश्वासी, आदर्शप्रिय, भावुक हृदय पर पहली बार जग की व्यावहारिकता का प्रहार हुआ था और उसका मस्तिष्क इतना कच्चा था, चोट इतनी अज्ञात थी कि वह उसके स्थल को न जान पा रहा था । उसे लगता था, जैसे वह अपने विश्वासों की चोटी से गिरता जा रहा है और सहारा पाने के लिए शून्य में हाथ-पाँव मार रहा है ।

कविराज तथा उनकी पत्नी की 'सहृदयता', सहृदयता तो दूर, उनकी दयानतदारी के सम्बन्ध में भी वह अपना पहला विश्वास खो बैठा था । अनन्त को शिमला आने से पहले लिखे हुए, पत्र की एक-एक पंक्ति उसके सामने घूम रही थी । अपने इस विश्वास को खो देने का भी उसे दुख था । कविराज के वास्तविक रूप को जानने के साथ ही पहली बार उसे अपनी सरलता अथवा मूर्खता का बोध हुआ था और अपने आप को मूर्ख मानना उसके अहम् को स्वीकार न था ।

अंधकार और भी गहरा हो गया था । वर्षा उसी प्रकार हो रही थी,

वह उसी प्रकार खिन्न मलीन लेटा हुआ था कि उसे कविराज के जूतों की परिचित ध्वनि सुनायी दी। वह हिला तक नहीं। पूर्ववत् लेटा रहा। तब उसके कमरे की बिजली जली और वाटरप्रूफ़ कोट उतारते हुए कविराज जी ने चिन्तित स्वर में पूछा कि बात क्या है? वह इस प्रकार क्यों लेटा हुआ है?

वह चुपचाप लेटा रहा।

कविराज उसकी चारपाई पर आ बैठे। कुछ क्षण तक उसकी कलाई थामे नाड़ी देखते रहे। फिर उन्होंने कहा, "तुमने व्यायाम अधिक मात्रा में कर लिया है शायद, तुम्हें बस आराम ही करना चाहिए। गर्म-गर्म शरीर से तुमने स्नान कर लिया होगा, और क्या?" और जैसे उन्होंने उसकी नित्य स्नान करने की सनक को लक्ष्य करके बेज़ारी से सिर हिलाया। उसे हर काम में मध्य मार्ग ग्रहण करने पर एक छोटा-सा भाषण दिया और अन्त में परामर्श दिया कि उसे उबलते हुए दूध में अंडे हल करके सेवन करने चाहिएँ। "मैं अभी स्वयं बना कर तुम्हारे लिए ले आता हूँ।" वे व्यस्त होते हुए बोले, "गर्म-गर्म पी कर रज़ाई ओढ़ कर सो जाओ। भगवान ने चाहा तो सुबह तक तुम स्वस्थ हो जाओगे।"

यह कह कर वे बरसाती लिये हुए अन्दर चले गये।

'कपटी!' चेतन ने मन-ही-मन कहा। वह ओठों में उपेक्षा से हसा। फिर उसने करवट बदल ली और बाहों में सिर रख कर अन्यमनस्क लेटा रहा।



४१

तीन दिन तक कविराज चेतन को दूध और अंडे मिला कर पिलाते रहे और चौथे दिन (इतवार को) उन्होंने उसे 'चैडविक प्रपात' दिखा लाने का प्रस्ताव किया।

बर्फ़ीले पहाड़ों के हिम-मंडित धवल-शिखर जैसे प्रातःकालीन धुंध से ढक कर मलिन दिखायी देते हैं, किन्तु सूर्य के उदित होते ही धुंध के छट जाने

पर फिर चमक उठते हैं, उसी प्रकार चेतन के हृदय की उज्ज्वल चोटियाँ क्षणिक दुर्बलता की धुंध से ढक गयी थीं। उसकी कल्पना के चिर प्रकाश और उसके हृदय के (आशावाद रूपी) धवल शिखरों के मध्य दुर्बलता-जनित निराशा की धुँधियाली-सी छा गयी थी, किन्तु धीरे-धीरे सूर्य की किरणें धुँधियाली को बेध रही थीं, क्षत-विक्षत हो धुंध छट रही थी और उसके हृदय-शिखर पुनः अपनी धवलता, उज्ज्वलता, निर्मलता और अपनी समस्त चमक-दमक पा रहे थे।

वह सोचता—यदि आज वह दुर्बल है तो क्या कभी सबल न होगा? हताश हो कर वह बैठ क्यों गया है? सृष्टि में चारों ओर वह दृष्टि जमाता तो उसके अपरिपक्व मन को सब जगह जंगल का नियम (निर्बलों पर बलवान की विजय) क्रियाशील दिखायी देता। यदि इस संसार में बलवान ही को जीत प्राप्त होती है तो वह बल का संचय क्यों न करे? क्या हुआ यदि उसके शारीरिक बल को उसकी कटु परिस्थितियों ने शैशव ही में पंगु बना दिया है, क्या हुआ यदि उसे धन का बल भी प्राप्त नहीं, उसे बुद्धि का बल तो प्राप्त हो सकता है। चाणक्य ने इसी बल के द्वारा नन्द से अपने अपमान का बदला लिया था। उसका राज्य उलट कर चन्द्रगुप्त को न केवल सिंहासन पर बैठाया, बल्कि उसको अपने इंगित पर चलाया; धनिक तो दूर रहे, बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के मान मर्दन किये और महान कहलाये। तो फिर वह भी बुद्धि का ही बल क्यों न ग्रहण करे!....और उसी अंधकारमय कमरे में खिन्न मन बैठे-बैठे उसे लगा जैसे चाणक्य की आत्मा उसके अन्तर में प्रवेश कर गयी है, उसे लगा जैसे वह स्वयं उस बुद्धिशाली का वंशज है। कल्पना ही कल्पना में उसने अपने आप को चाणक्य के रूप में देखा और पाया कि धन और बल की सत्ता उसके सामने अकिंचन हो कर रह गयी है। अपने आप में उसने अपार बल का अनुभव किया। उसका क्रोध धीरे-धीरे शांत हो गया। और जब कविराज चैडविक प्रपात दिखा लाने का प्रस्ताव ले कर आये तो आँधी का वेग समाप्त हो चुका था और वातावरण पर हल्की-सी ठंडी-ठंडी बयार डोल रही थी।

अपने उस नये आत्मबल के प्रभाव में चेतन ने कविराज की ओर इस प्रकार देखा जैसे कोई बलशाली पुरुष किसी अकिंचन बौने की ओर देखता है। उसने चैडविक की बड़ी प्रशंसा सुनी थी, किन्तु देखने का अवसर उसे न मिला था। कई दिन से अन्यमनस्क लेटा-लेटा वह उकता भी गया था, इसलिए प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया।

कविराज ने अपनी सहृदय पत्नी से अवश्य ही कोई-न-कोई बहाना किया होगा, क्योंकि यदि वे उसको बता कर चलते तो उनके पास थर्मास में चाय अथवा दूध और रूमाल में मठरियाँ अथवा बेसन आदि की कोई-न-कोई घर ही में तैयार की हुई मिठाई अवश्य होती, किन्तु जब चले तो वे बिलकुल ख़ाली हाथ थे। लोअर बाज़ार पहुँच कर उन्होंने एक रुपये की मिठाई ख़रीदी और चेतन के बार-बार अनुरोध करने पर भी वे उसे स्वयं उठाये रहे।

मार्ग में कविराज ने उससे अपनी पुस्तक के बारे में दो-तीन विज्ञापन बनवा लिये। वे अपनी वाणी में इतनी मिठास भर लेते थे और फिर इतनी सावधानी से बातें करते थे कि आदमी अनायास ही उनके जाल में फँस जाता था। अपने समस्त नये आत्मबल के होते भी चेतन अभी उनके सामने बच्चा था। न जाने उन्होंने किस प्रकार बातों का क्रम छेड़ा, किन्तु धीरे-धीरे वे विज्ञापनबाज़ी पर ले आये। आधुनिक युग में विज्ञापनबाज़ी के महत्व पर उन्होंने छोटा-सा भाषण दे डाला :

"आज का युग विज्ञापनबाज़ी का युग है," उन्होंने कहा, "आज विनम्रता से, गुण के पारखियों की गुणग्राहकता पर विश्वास करके, काम नहीं चलता, बल्कि छत पर खड़े हो कर डंके की चोट अपनी चीज़ का, अपने आविष्कार का, अपनी कला का, अपनी कृति का, अपने चरित्र और उसके गुणों का ढिंढोरा पीटने ही से जनता में सुनवायी होती है। सफल व्यक्ति के लिए बुद्धिमान होना, किसी उपयोगी चीज़ का आविष्कार करना अथवा किसी कला-कृति का सृजन करना ही यथेष्ट नहीं, सफल विज्ञापनबाज़ होना भी आवश्यक है। विनम्र व्यक्ति आज की दुनिया में मरु का फूल हो कर रह जायगा, जनता के गले का हार बनना उसके भाग्य में नहीं।"

और कविराज जी अपने प्रिय विषय 'मैं' तक पहुँच गये और बोले, "मेरी सफलता का भेद दूसरी बातों के अतिरिक्त इसमें भी निहित है कि मैंने अपनी औषधियों का, अपनी पुस्तकों का बड़ी चतुराई से विज्ञापन किया है। जनता को पता भी नहीं चला और पुस्तकें और दवाइयाँ उसके दिल में घर कर गयीं। अवकाश का समय मैंने सदैव नयी स्कीमें बनाने अथवा नये विज्ञापन सोचने में लगाया है!" और सहसा अपने मन्तव्य पर आते हुए उन्होंने कहा, "मैंने अभी कल दो विज्ञापन बनाये हैं। मैं शिमले में पहली बार आया हूँ। रोगी अभी उतने आते नहीं। आयें भी कैसे? उन्हें पता भी हो कि मैं यहाँ आ गया हूँ। किन्तु मैं प्रयास कर रहा हूँ कि शिमला और दूसरे निकटवर्ती स्थानों के लोग मेरे नाम से भली-भाँति परिचित हो जायँ। औषधालय अपने में स्वयं एक बड़ा विज्ञापन है। मैं जब भी किसी पहाड़ पर जाता हूँ, वहाँ अपने निजी मकान के अतिरिक्त औषधालय के लिए अवश्य स्थान लेता हूँ। बेकार बैठे स्वास्थ्य बनाना मुझे पसन्द नहीं और घर में काम हो नहीं सकता। औषधालय एक तरह से न केवल मेरे आफ़िस का काम देता है, वरन् विज्ञापन का भी। देश के विभिन्न प्रान्तों से सैर को आने वाले लोग बाज़ार से गुज़रते समय मेरे नाम से परिचित हो जाते हैं। शिमले में भी जब से आया हूँ, कुछ-न-कुछ कर ही रहा हूँ। मिडिल बाज़ार की समस्त दुकानों, लोअर बाज़ार के सारे होटलों और तन्दूरों के अन्दर मैंने अपनी पुस्तक "विवाह के भेद" के विज्ञापन लगवाये हैं। म्यूनिसिपल कमेटी अपनी सीमा के अन्दर विज्ञापन लगाने अथवा विज्ञापन बाँटने की आज्ञा नहीं देती। इसलिए मैं जयदेव को साथ ले कर, भराड़ी, संजोली, छोटा शिमला आदि निकटवर्ती बस्तियों में (जो पहाड़ी रियासतों के अन्तर्गत हैं।) बड़ी-बड़ी चट्टानों और दीवारों पर अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा आया हूँ। और तो और सोलन कोजाने वाली सड़क पर (कमेटी की सीमा के बाहर) दूर तक मैंने चट्टानों और पत्थरों पर अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा दिये हैं। लाभ यह होगा कि मोटरों से आने-जाने वाले उनसे परिचित हो जायँगे। एक ही नाम जब बार-बार आँखों के आगे आता है तो वह मानस-पट पर अंकित हो जाता है।

और इस बहाने सैर भी हो जाती है और काम भी।"

अपनी इस कारगुज़ारी पर वे हँसे और फिर उन्होंने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा :

"मैं जिस पहाड़ पर जाता हूँ, वहाँ के निवास-काल में अपनी पुस्तकों का पूरा-पूरा प्रचार करता हूँ, ताकि यदि फिर कभी मुझे वहाँ जाना पड़े तो किसी प्रकार का कष्ट न हो। पुस्तकें मैंने इस ढंग से लिखी हैं कि उन्हें जो पढ़ लेता है, वह इलाज-उपचार के लिए सीधा मेरे पास आता है।" अनायास उनका हाथ उनकी मूँछों पर चला गया और आत्म-तुष्टि की अनुभूति से उनके ओठों की मुस्कान उनके सारे मुख पर फैल गयी। कुछ क्षण चुप चलते रहने के बाद वे बोले—

"मैं विज्ञापनबाज़ी के नित्य नये ढंग सोचता हूँ। चाहता हूँ कि एक विज्ञापन दूसरे से न मिले। उसमें नवीनता हो, उपज हो, मौलिकता हो।"....और सहसा उन्होंने दो-एक विज्ञापन चेतन को दिखाये।

चेतन चुपचाप उनकी बातें सुनता आया था। एक-दो बार मन-ही-मन उनके दम्भ को कोस भी चुका था और जब कविराज जी ने विज्ञापन दिखाये तो उसने बड़ी अन्यमनस्कता से उन्हें देखना आरम्भ किया, किन्तु पढ़ते-पढ़ते उसके अन्तर का कलाकार सजग हो उठा। "इनमें सूक्ष्मता नहीं," उसने कहा, "ये विज्ञापन स्पष्ट और अनगढ़ दिखाई देते हैं। तत्काल पता चल जाता है कि विज्ञापन है। विज्ञापन होना चाहिए, जैसे संक्षिप्त कहानी। उसकी पहली पंक्ति ही पाठक के ध्यान को ऐसा बाँध ले कि वह अन्त तक बँधा चला जाय। अंत पर पहुँच कर ही उसे लगे कि वह तो एक विज्ञापन पढ़ रहा था।"

और चलते-चलते उसने कविराज की पुस्तक का विज्ञापन बनाया।

ट्रंक गुम हो गया

मैं इंग्लिस्तान से एस० एस० जहाँगीर पर आ रहा था। रास्ते में मेरा एक कीमती ट्रंक खो गया। वैवाहिक जीवन की

समस्याओं पर लिखी और योरुप से ख़रीदी हुई बीसियों उत्कृष्ट और बहुमूल्य पुस्तकें उसमें बन्द थीं। बम्बई पहुँच कर मैंने इस बात की घोषणा पत्र-पत्रिकाओं में की थी कि जो व्यक्ति उस ट्रंक को मुझ तक पहुँचा देगा उसे मैं ५०० रुपया पुरस्कार-स्वरूप दूँगा। अब इस सूचना द्वारा मैं अपनी वह विज्ञप्ति वापस लेता हूँ। जो भाई ट्रंक की खोज में लगे हों, वे अब कष्ट न करें, क्योंकि उन सब पुस्तकों का निचोड़ मुझे एक ही पुस्तक में मिल गया है, जिसे लाहौर के प्रख्यात वैद्य कविराज रामदास जी ने लिखा है और जिसका नाम सत्य ही उन्होंने "विवाह के भेद" रखा है।

—डी० आर० टैक्नाइट, गोरखपुर

पत्थर की गगन-चुम्बी दीवार की भाँति खड़े पहाड़ में बहुत ऊपर, एक छिद्र में से पिघली हुई चाँदी-सा, बीसियों पेड़-पौधों को नहलाता, फुहारें उड़ाता चैडविक प्रपात एक विशाल रजत-पट की भाँति लहराता हुआ नीचे गिर रहा था। वह फुहार जैसे बिना स्पर्श मन की सब खिन्नता, सारी थकन, समस्त क्लांति को धो रही थी।

प्रपात के नीचे पहुँच कर कविराज उसके पास ही एक चट्टान पर बैठ गये। चेतन उनसे कुछ अंतर पर बैठा। यद्यपि प्रपात उनसे तनिक दूर गिरता था तो भी उसकी फुहार का कोई-कोई कण उड़ कर उन तक आ जाता था। कुछ देर तक दोनों चुपचाप प्रकृति के इस अनुपम सौंदर्य को देखते रहे। फिर उन्होंने लोअर बाज़ार से ली हुई मिठाई खा कर ठंडा पानी पिया। और फिर न जाने कुछ उमंग में आ कर अथवा चेतन को कुछ उदास देख कर कविराज ने एक गाना सुनाया:

उनके स्वर में इतनी मधुरता, इतनी आर्द्रता और इतनी लय थी कि चेतन चकित-सा, मुग्ध-सा उनका गाना सुनता रहा।

ठंडी वायु से हिलते हुए पेड़ों की मर्मर और प्रपात की मादक छर्र-छहर कविराज के गाने के लिए वाद्य-यन्त्रों का काम दे रही थी और ऊँची-ऊँची

पहाड़ियों से घिरे उस नीरव स्थान में उनका स्वर झरने के कलंकल नाद से मिल-कर, सारे वातावरण को एक विचित्र आर्द्रता से भर रहा था।

कविराज गा रहे थे और चेतन सोचता था—यह व्यक्ति, जिसे वह केवल एक चतुर व्यापारी, एक हृदयहीन शोषक समझता था, अपने वक्ष में हृदय भी रखता है! उसके मन में अवश्य कभी चाहत उगी है। चाहे अब उस चाहत की चिनगारी दुनियादारी की राख के नीचे दब गयी है, किन्तु वह सर्वथा बुझ नहीं गयी। कहीं उस व्यावहारिकता, चतुरता, व्यापार, प्रवंचना, छल-कपट के नीचे दबी पड़ी है। और चेतन ने सोचा—मनुष्य क्यों अपने आप पर एक आवरण चढ़ाने को विवश है, क्या कोई ऐसी व्यवस्था नहीं जिसमें वह जैसा है वैसा रह सके; उसे छल-कपट, धोखे-धड़ी, शोषण और उत्पीड़न की आवश्यकता न पड़े; वह अपने गुणों को जिला दे, चमकाये, मन्द न पड़ने दे; इस प्रकार कैद न करे, दबा कर न रखे!—कितना दर्द है इस कंठ में, कितना सुन्दर है यह गीत, कितना गीला, कैसी मनुहार है इस में!

शाम होने को आयी थी और चैडविक प्रपात को आने वाला मार्ग बहुत ऊबड़-खाबड़ था। इसलिए जब कविराज ने गीत समाप्त किया तो वे उठ खड़े हुए। एक लम्बी साँस ले कर उन्होंने कहा—

"चलो भाई! इन गीतों का अन्त कहाँ, पर दिन का अन्त आ पहुँचा है।"

वापसी पर कविराज ने अपने जीवन की कहानी छेड़ दी और जाने अथवा अनजाने में वे उसे कितनी ही ऐसी बातें बता गये जो वे शायद किसी और को न बताते।

चेतन जान गया कि चार वर्ष के बदले उन्होंने केवल एक ही वर्ष आयुर्वैदिक कॉलेज में शिक्षा पायी है और जब उन्होंने प्रेक्टिस आरम्भ की थी तो उन्हें आयुर्वेद का उतना ज्ञान न था। पर अपने परिश्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और व्यवहार-कुशलता के बल पर उन्होंने इतनी सफलता, धन, वैभव और ख्याति पायी।

चेतन यह भी जान गया कि उन्होंने प्रैक्टिस का आरम्भ न केवल हर तरह की पूँजी के अभाव में किया, बल्कि जब उन्होंने प्रेक्टिस आरम्भ की तो उनके सिर पर नौ हज़ार रुपया कर्ज़ था। कुछ रिश्तेदारों के साथ मिल कर उन्होंने ठेकेदारी आरम्भ की थी और उसमें घाटा आ गया था। पास तो कुछ था नहीं जो दे देते, पर मन-ही-मन उन्होंने उस रकम को अपने ऊपर एक ऋण मान लिया।

"तब मेरे एक मित्र ने, जिसे मैं बचपन में प्यार करता था, मेरी सहायता की।" उन्होंने बताया, "आयुर्वैदिक कॉलेज में तब एक ही वर्ष में डिग्री मिल जाती थी। घर वालों से मेरी बनती न थी, इसलिए पत्नी को भी लाहौर ले आया और मेरी वह मित्र हम दोनों का ख़र्च भेजता रहा। फिर वह समय भी आया कि मुझे जिन लोगों का कर्ज़ देना था, उनको मैंने पाई-पाई चुका दी। यही नहीं, बल्कि वे मेरे ऋणी हो गये।"

चेतन का औत्सुक्य उनकी जीवन-गाथा सुनने के बदले उनके मित्र के सम्बन्ध में जानना चाहता था। उसने उनकी बात काट कर पूछा, "फिर वह मित्र आप से नहीं मिला?"

कविराज जी की वाणी गद्‌गद हो गयी। उन्होंने कहा, "एक बार वह औषधालय आया था। तब मैंने उससे कहा, "मैं तुम्हारी क्या ख़ातिर करूँ? किसी चीज़ के लिए पूछते हुए भी मुझे शर्म आती है, क्योंकि सब कुछ तो तुम्हारा ही है।"

और उन्होंने उसे बताया कि किस प्रकार वे चंगड़ मुहल्ले में रहते रहे और उन्होंने स्वयं अत्यन्त विपन्नता के दिन देखे।....और अपनी रौ में वे एक अभिन्न मित्र की भाँति संगत अथवा असंगत, कथनीय या अकथनीय सब बातें उसे बता गये। और संध्या समय जब चेतन अपने कमरे में पहुँचा तो उसे लगा जैसे कविराज के प्रति उसके मन में जितना क्रोध था, वह सब पिघल चुका है। और यद्यपि उन्होंने उससे दो-तीन विज्ञापन बनवा कर सप्ताह भर के पैसे वसूल कर लिये थे, यह सब जानते हुए भी चेतन ने वहीं ठहर कर उनकी पुस्तक समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया।

जीवन की धूर्त्तता से उसकी भावुकता का यह पहला समझौता था।



४२ एक दिन सुबह जब चेतन कविराज की पुस्तक के लिए एक परिच्छेद का ढाँचा तैयार कर रहा था, यादराम ने आ कर खुशी से झूमते हुए सूचना दी, "बड़े काका आ रहे हैं।"

कई दिनों से वह राजकुमार (बड़े काका) के आगमन की चर्चा सुन रहा था। कविराज जी जिस समय अपने इस पुत्र का उल्लेख करते, उनकी आँखों में चमक आ जाती। जब भी उनका कोई मित्र उनके सामने अपने लड़के की बात चलाता तो कविराज जी उसकी बात पूरी तरह सुने बिना 'हमारे राजकुमार का तो यह विचार है कि'....'हमारे राजकुमार के सम्बन्ध में तो अध्यापक कहते हैं कि'....'हमारा राजकुमार तो ऐसा नहीं करता कि'....'हमारा राजकुमार तो यही पसन्द करता है कि'....किसी ऐसे ही वाक्य से आरम्भ करके अपने राजकुमार का ज़िक्र छेड़ देते और फिर उसकी बुद्धि, उसके ज्ञान, उसके साहस, बल-पराक्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और परिश्रम की इतनी बातें सुनाते कि मित्र बेचारा मुँह तकता रह जाता। उनके भाग्य से उसे ईर्ष्या होने लगती जिनकी सन्तान ऐसी नेक, समझदार, साहसी और बुद्धिमान थी।

राजकुमार के आने से बहुत दिन पहले कविराज जी उसी के रहने सहने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने के बारे में प्रोग्राम बनाने लगे थे। आते ही उसे अपने उपयुक्त मित्र मिल जायँ, इस विचार से उन्होंने अपने पड़ोस के लोगों और उनके बच्चों से मेल-जोल पैदा कर लिया था। उनके घर के सामने पूरब की ओर मि० चावला रहते थे। उनका लड़का एफ० ए० में और लड़की 'भूषण' में पढ़ती थी। स्वयं वे सेक्रेटेरियेट में हेड क्लर्क थे। कविराज जी ने उनको उनके बीबी-बच्चों सहित खाने पर बुला कर उन पर अपने लड़के की योग्यता का सिक्का बैठा दिया था। बायीं ओर दक्षिण

की तरफ़ लाला मुकन्दलाल असिस्टेएट सुपरिंटेंडेंट अपने लड़के और दो लड़कियों के साथ रहते थे। लड़का उनका मैट्रिक में पढ़ता था। पत्नी मर चुकी थी। उनके घर खाने पर निमन्त्रित हो कर वे अपने लड़के के लिए वहाँ उपयुक्त वातावरण बना आये। इसी प्रकार रुल्दू भट्टे की नीचे की गली में रहने वालों के साथ भी, जहाँ-जहाँ राजकुमार के समवयस्क लड़के थे, कविराज जी ने मेल-जोल बढ़ा लिया था। चेतन पर भी उनका कृपाभाव उन दिनों कुछ बढ़ गया था। रात को सोते समय मन्नी के हाथ भेजने के बदले वे स्वयं चेतन के लिए दूध ले आते; उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछते; उसके भाई की प्रैक्टिस का हाल-चाल जानते; उसके उपन्यास की गति-विधि के सम्बन्ध में एक-आध प्रश्न करते कि कितना लिखा गया है और क्या-क्या वह उसमें लिखना चाहता है आदि-आदि। कभी-कभी उससे कोई परिच्छेद सुनाने का अनुरोध भी करते। इन समस्त कृपाओं के बदले में उन्होंने चेतन से वचन ले लिया था कि वह एक-दो घंटे राजकुमार को अँग्रेज़ी पढ़ा दिया करेगा। जयदेव को उन्होंने उसे गणित पढ़ाने के लिए पहले ही राज़ी कर लिया था।

"हमारा राजकुमार अत्यन्त सीधा लड़का है," उसके आने से कुछ ही दिन पहले उन्होंने चेतन को अपेक्षाकृत प्रसन्न पा कर कहा। "मैं वास्तव में उसे ब्रह्मचारी बनाना चाहता हूँ। बचपन ही से मैं उसे प्रातः उठने का, ठंडे पानी से स्थान करने का और धरती पर सोने का स्वभाव डालना चाहता हूँ।" और फिर चेतन का रुख पा कर मूँछों में हँसते हुए उन्होंने प्रस्ताव किया, "मेरा विचार है कि वह यहाँ तुम्हारे पास ही धरती पर सोये। अपने कॉलेज की पत्रिका में वह नियमित रूप से लेख और कहानियाँ लिखता है। गत वर्ष उसे सबसे अच्छी कहानी लिखने पर प्रथम पुरस्कार मिला था।" और फिर उन्होंने बड़े प्यार के स्वर में चेतन से पूछा, "तुम्हें तो कोई आपत्ति नहीं?"

"जी नहीं, मुझे प्रसन्नता होगी।" उसने कहा।

राजकुमार के आगमन की बात सुन कर और यह जान कर कि वह उसके कमरे में सोयेगा और उससे पढ़ेगा, चेतन को सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उस नीम-अँधेरे कमरे में, सारा दिन पढ़ते, नोट लेते, और लिखते-लिखते वह इतना थक जाता था कि किसी की सूरत देखने को, किसी से दो बातें करने को उसका जी तरस जाता था।

यद्यपि वह दिन भर काम में निमग्न रहता था, पर जब भी वह काम छोड़ता, उदासी चारों ओर से उसे घेर लेती और कई बार वह इतना खिन्न, श्रांत और क्लांत अनुभव करता कि कलम तक उठाने को उसका मन न होता और अपनी सारी-की-सारी रंगीनियों के साथ शिमला उसे विशाल मरुस्थल-सा दिखायी देता।

चेतन वास्तव में एक घरेलू व्यक्ति था। अपने पास माँ, भाई, बीवी अथवा किसी घनिष्ट मित्र की उपस्थिति उसे अनिवार्य-सी लगती थी। अपने बड़े भाई से वह इस तरह प्यार करता आया था जैसे वे उसके छोटे भाई हों। उसके साथ निरन्तर रहने के कारण वे उसके जीवन का अंग बन गये थे। बचपन के कुछ वर्षों को छोड़ कर वह सदा उनके संग रहा था। उनके दोष छिपाता रहा था। उन्हें हर प्रकार की सहायता देता रहा था। किन्तु उसने यह कभी न सोचा था कि उसके इस निकम्मे बड़े भाई का अस्तित्व उसके लिए इतना आवश्यक है। वह जब कभी उद्विग्न होता था, अपने उन्हीं बड़े भाई के पास जाता। अपनी सब उद्विग्नता उनके सामने रख देता। कई बार वे उसे सलाह देते, कई बार न भी दे पाते, किन्तु उनको सुना कर ही वह अपने दुख के भार से हल्का हो जाया करता था। फिर जब वह प्रसन्न होता, महत्वाकांक्षाओं के पंखों पर उड़ रहा होता और अपनी सब स्कीमें, अपने सब इरादे किसी के सामने रखने को आतुर होता, वह अपने उन्हीं भाई साहब के पास जाता और अपनी महत्वाकांक्षाएँ उनके सामने रख कर आत्म-विश्वास, साहस और जीवन-संघर्ष में जूझने की नव-शक्ति, नव-स्फूर्ति पा लेता। वे सदैव उसका साहस बढ़ाते, सदैव उसे प्रोत्साहन देते, उसकी महात्वाकांक्षा का समर्थन करते। शिमले के अपने प्रवास

से पहले चेतन ने कभी यह न जाना था कि उसके बड़े भाई की सहानुभूति, समवेदना, प्रोत्साहन और परामर्श उसके लिए कितने मूल्यवान हैं।

अपने इस एकाकीपन से कई बार वह इतना ऊब उठता कि अनन्त को पत्र लिखने की सोचता। पहले भी जब भाई साहब पास न होते या किसी कारणवश वह उनसे बात न कर पाता था तो वह अनन्त ही के पास जाता था। वह निकट न होता तो उसे पत्र लिखता। किन्तु शिमला आ कर चेतन ने अनन्त को कोई पत्र न लिखा था। उसे कई बार इच्छा भी हुई, कई बार उसने संकल्प भी किया, किन्तु सदैव एक भारी संकोच उसके मार्ग की दीवार बन गया। एक बार अपने पत्र में कविराज जी की अत्यधिक प्रशंसा करने के बाद अब सच्ची बात वह किस तरह लिखे ? वह अपने आप को मूर्ख न सिद्ध करना चाहता था। ऐसा करने में कदाचित उसके अहम् को ठेस पहुँचती थी।

वह चन्दा को पत्र लिख सकता था, लिखता भी था। किन्तु चन्दा उत्तर देने में बड़ी सुस्त थी। स्वभाव के इस लक्षण में वह भाई साहब से मिलती थी। चेतन जब कभी भाई साहब को पत्र लिखता तो उत्तर की प्रतीक्षा करते-करते थक जाता। उत्तर न पाने पर चिढ़ कर वह दूसरा पत्र लिखता और क्रोध में दो-एक कटु बातें भी लिख देता और आशा करता कि अब तो बस लौटती डाक से उनका पत्र आ जायगा; किन्तु कई-कई दिन और कई-कई सप्ताह बीत जाते जब उनकी ओर से उत्तर मिलता। वह भी एकदम नीरस और व्यावहारिक। केवल काम की दो-एक बातों के सम्बन्ध में चन्द वाक्य होते—जल्दी-जल्दी घसीटे हुए। उनके पत्र को देख कर ऐसा लगता जैसे लिखने वाले को बड़ी जल्दी है, उसकी गाड़ी छूटी जा रही है और उसे शीघ्रातिशीघ्र पत्र लिख कर गाड़ी पकड़नी है। कई बार चेतन इतना खीझ उठता कि पत्र पढ़ते ही उसे फाड़ कर, उसके टुकड़े-टुकड़े करके खिड़की के बाहर फेंक देता।

रहा पड़ोसियों से मिलना-जुलना, रुल्दू भट्टे में एक भी ऐसा आदमी न था जिसे वह अपने उन उदास क्षणों का साझीदार बना सके। कविराज

जी के घर में क्योंकि उसकी स्थिति नौकरों की-सी थी, इसलिए पड़ोसियों से वह कभी खुल न पाया था। वह सदा उनसे खिंचा-खिंचा-सा रहा। यद्यपि वह कविराज जी के लिए पुस्तक लिख रहा था, किन्तु उसने किसी पड़ोसी को यह बात न बतायी थी। यदि किसी ने पूछा भी तो उसने यही बताया कि पुस्तक लिखने में वह कविराज की सहायता कर रहा है। कविराज भी उसका ज़िक्र चलने पर यही कहते कि 'बच्चा बीमार रहता था। मैं इसे ले आया हूँ, इसका स्वास्थ्य सुधर जाय।' और यह कहते हुए वे कुछ ऐसे सरपरस्तों* के से ढंग में बात करते थे कि चेतन को वे ही नहीं, उनके सभी मित्र अपने अभिभावक दिखायी देते थे।

वह किसी पड़ोसी से न मिलता। अपने उसी अँधेरे कमरे में बैठा रहता और उसके सामने अगनित चित्र बन-बन कर मिटते रहते। उसे लगता जैसे एकाकीपन अपने इसपाती घेरे को उसके गिर्द क्षण-प्रतिक्षण संकुचित कर रहा है और किसी दिन यह प्रति-क्षण सीमित, प्रति-क्षण परिमित होता हुआ घेरा उसका दम घोट देगा। और वह चाहता कि पुस्तक को ले जा कर कविराज के सामने पटक दे और उसी क्षण लाहौर भाग जाय। लाहौर! जो अपने कूड़े-कर्कट, धूल और धुएँ के होते भी जीवित है; जीवन के स्पन्दन से प्रति-क्षण धड़कता है। जहाँ इतनी सफ़ाई चाहे न हो, पर इतना शून्य भी नहीं। इतनी नीरवता और निस्तब्धता भी नहीं। जहाँ कमरे के मौन में बैठे हुए भी इस अनुभूति से मन सन्तुष्ट रहता है कि पास ही कहीं मित्र हैं, चाहे फिर उनसे महीनों न मिला जाय; पास ही कहीं भाई हैं; शोरोगुल है; गाली-गलौज है; कारों की पों-पों और ताँगों की खट-खट है; पास ही कहीं जलूस निकल रहे हैं; जलसे हो रहे हैं; धर्म-चर्चा हो रही है; दंगा-फ़िसाद हो रहा है। कुरूपता पास है तो समीप ही कहीं सौंदर्य और सुघड़ता भी है; मन और आँखों को व्यस्त रखने के लिए यथेष्ट साधन हैं। शिमले ऐसी नीरवता और मौन तो नहीं। माना शिमले में माल है और माल पर संध्याएँ रंगीन, मादक और मदिर होती हैं; सुन्दर स्वरों का कल-हास सुनने को, सुन्दर

---

*सरपरस्त = अभिभावक

आकृतियों की बनावट निरखने को मिलती है; किन्तु माल पर एक-दो बार जा कर ही चेतन को उसके परायेपन का आभास मिल गया था। उसमें अनारकली का-सा अपनाव कहाँ ? वह इस परायेपन से एकदम भाग जाना चाहता था। न भाग सकता था तो उन्मन और उदास-सा अपने कमरे में बैठा रहता था।

और वह प्रसन्न था कि राजकुमार के आने से न केवल उसका यह एकाकीपन दूर हो जायगा, बल्कि वह अपने इरादे, अपनी स्कीमें, अपनी कहानियों के प्लाट, अपने उपन्यास के परिच्छेद और भविष्य के अपने स्वप्न उसे सुना सकेगा।

वह उस समय काम में व्यस्त था जब यादराम ने उसे राजकुमार के आने की सूचना दी। किताब हाथ ही में लिये वह खिड़की में जा खड़ा हुआ। नीचे राजकुमार के स्वागत को जैसे सारा रुल्दू भट्टा इकट्ठा हो गया था। लेकिन चेतन को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि कविराज जी के साथ जिस लड़के को उसने सीढ़ियों पर चढ़ते देखा, उसकी आकृति से किसी प्रकार भी उन गुणों का आभास न मिलता था जिनका बखान बड़े गर्व से कविराज इतने दिनों से कर रहे थे।

आनेवाला लड़का मझोले कद का था। उसका शरीर यद्यपि स्थूल न था, किन्तु स्थूलता की ओर उसका निश्चित झुकाव था। छोटी ठोड़ी, भरे-भरे गाल और चौड़ा मस्तक ! नाक ज़रूरत से ज्यादा लम्बी और मोटी। न आँखों में कोई गहराई, न चमक ! न ओठों पर मन की सरलता का प्रतिबिम्ब और न भवों पर अध्यवसायी, परिश्रमी और निष्ठावान होने का चिन्ह ! उसे देख कर चेतन को भली-भाँति पले हुए दुम्बे की याद हो आयी।

"मूर्ख, भरा-पुरा दुम्बा !" चेतन ने मन-ही-मन हँस कर व्यंग्य से सिर हिलाया। राजकुमार अन्दर कमरे में जा चुका था। वह फिर बैठ गया और काम में व्यस्त हो गया।

साँझ की छाया ढलने लगी थी जब अन्दर का दरवाज़ा खुला और कविराज जी अपने पुत्र को लिये चेतन के कमरे में आये।

चेतन चारपाई पर बैठा-बैठा थक कर लेट-सा गया था। वह चौंक कर उठ बैठा। तब "बैठो-बैठो" कहते और हाथ से उसे लेटे रहने का संकेत कर, वे उसकी चारपाई के निकट आ गये और अपने पुत्र को अपनी बाँह में भर, अपनी मुस्कराहट को तनिक और फैलाते हुए, उन्होंने दोनों को एक-दूसरे का परिचय दिया। फिर राजकुमार के सामने चेतन की बड़ी प्रशंसा की और उससे कहा, "आज से तुम यहीं सोना। समय निकाल, घंटा-दो-घंटा इनसे अंग्रेज़ी पढ़ लिया करना।" और यादराम को बुला कर उन्होंने कहा, "बड़े काका का बिस्तर इधर इनके कमरे में फ़र्श पर लगा दो।"

तब चेतन उछल कर उठा। उसने यादराम से कहा कि उसकी चारपाई उठा कर बाहर सीढ़ियों में रख दे और उसका बिस्तर भी वहीं फ़र्श पर बिछा दे।

कविराज जी ने उसको शाबाशी दी। धरती पर सोने के लाभ पर एक छोटा-सा भाषण दिया और चले गये।

जब बिस्तर धरती पर बिछ गया, चेतन ने अपनी पुस्तकों को फ़र्श ही पर एक ओर क़रीने से चुन लिया और बैठ कर काम करने लगा तो उसे लकड़ी के उस फ़र्श पर बैठने में दिक्क़त हुई। खिड़की से बहुत नीचे होने के कारण प्रकाश की और कमी हो गयी। किन्तु जब यादराम निकट फ़र्श पर राजकुमार का बिस्तर बिछा रहा था तो वह शिकायत कैसे करता।

सुबह वह ज़रा देर से जागा और बिना लिहाफ़ से मुँह निकाले दोनों हाथ अपने चेहरे पर फेरते हुए उसने राजकुमार को 'नमस्ते' कही। जब उसे उत्तर न मिला तो उसने लिहाफ़ से मुँह निकाला कि देखें राजकुमार अभी सोया पड़ा है या जाग रहा है। किन्तु वह चकित रह गया। न वहाँ राजकुमार था न उसका बिस्तर। यह भी न पता चलता था कि वहाँ कभी किसी का

बिस्तर बिछा भी है।

क्षण भर वह उसी रीती जगह की ओर देखता रहा। फिर उसने सोचा-कविराज दुकान को जायँगे तो उनसे पूछेगा कि राजकुमार चला क्यों गया? किन्तु कविराज जाते समय उससे नहीं मिले। वे तेज़ी से निकले और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गये। कदाचित् उन्हें जल्दी थी।

तब चेतन ने सोचा कि शायद राजकुमार वहाँ न सोयेगा, शायद ब्रह्मचर्य व्रत उसके लिए उतना आकर्षण नहीं रखता। उसे भी अपनी चारपाई वापस ले आनी चाहिए। उस अँधेरे में काम कर आँखें फोड़ने की क्या ज़रूरत है। वह सीढ़ियों की ओर बढ़ा, किन्तु चारपाई वहाँ से ग़ायब थी।

वह दिन भर असमंजस में पड़ा रहा। उससे काम न हो रहा था। उसे ऐसा लगता था जैसे वह फिर ठगा गया है। तभी मन्नी उधर से गुज़री। चेतन ने उससे पूछा :

"मेरी चारपाई कल यादराम ने वहाँ रखी थी, कहाँ गयी?"

"रात को बड़े काका के लिए वैद्य जी ले गये।"

"पर उन ब्रह्मचारी जी को तो धरती पर सोना था," क्रोध से जलते हुए चेतन ने कहा।

मन्नी हँस दी, "एक ही रात में बिलबिला उठे पिस्सुओं के मारे। उठ कर भाग आये आधी रात को। चारपाई तो और घर में थी नहीं, वहीं ला कर वैद्य जी ने उनके नीचे बिछा दी।"

चेतन ने चाहा ऐसी फुफकार मारे कि सामने का कमरा जल कर राख हो जाय, किन्तु वह केवल विष घोल कर रह गया।

सारा दिन वह कोई काम न कर सका। बेचैनी के मारे लेटता, उठता-बैठता कमरे में चक्कर लगाता रहा।

●

४३

ब्रह्मचारी जी का धरती पर सोना तो चेतन से चारपाई लेने का बहाना मात्र था। सोचने पर चेतन भली भाँति समझ गया।

चारपाइयाँ शिमले में महँगी थीं, सीज़न के ख़त्म हो जाने पर उन्हें बेच कर, नीलाम करके अथवा किसी मित्र को देकर जाना पड़ता था। इसलिए शायद कविराज जी ने सोचा कि जब घर में एक चारपाई है तो दूसरी बाज़ार से क्यों लायी जाय? और क्योंकि वे दवाख़ाने से चेतन को इसी चारपाई का लालच दे कर लाये थे, इसलिए अब उसे लेने के लिए उन्होंने यह आडम्बर रचा था।

कविराज जी का यह नियम था कि वे कटु बात को भी मीठे-से-मीठे ढंग से करने का प्रयास करते थे। चेतन को शिमले लाने से पहले यदि वे उससे कहते, "मैं बच्चों के सम्बन्ध में एक पुस्तक चाहता हूँ, तुम उसे मेरे नाम से लिख दो तो चेतन शायद कभी तैयार न होता। किन्तु उन्होंने बड़े मीठे, प्यारे ढंग से अपना वांछित काम भी करा लिया और ख़र्च भी कम-से-कम किया था, वह भी काम करने वाले पर कृतज्ञता का बोझ लादते हुए! क्यों कि प्रकट चेतन को उनके विरुद्ध किसी प्रकार की उचित शिकायत न हो सकती थी।

कविराज जी इस कला में सिद्धहस्त थे। दूसरे पर अहसान करते हुए (अथवा उसे इस बात का आभास दिलाते हुए कि उस पर अहसान किया जा रहा है) अपना काम कराने अथवा अपनी इच्छा के अनुसार किसी समस्या को सुलझाने में कविराज जी को अपूर्व सिद्धि प्राप्त थी।

छः वर्ष से उनके यहाँ औषधियाँ कूटने पर एक व्यक्ति नौकर था। यादराम को पाने पर कविराज जी ने उसे निकालने का निश्चय कर लिया। बात यह थी कि एक तो वह बूढ़ा था, उतना काम न कर पाता था, दूसरे पुराना नौकर होने के कारण उसे वेतन अधिक देना पड़ता था। किन्तु यह निश्चय करने के बाद उन्होंने तत्काल उसे छुट्टी नहीं दी। कई दिन पहले वे उससे कहने लगे कि उसका स्वास्थ्य ख़राब दिखायी देता है, वह दिन-प्रति-दिन दुबला होता जा रहा है, उसे कुछ दिन के लिए आराम करना चाहिए। जब उसे अपने स्वास्थ्य की ख़राबी के सम्बन्ध में पूरा विश्वास हो गया तो उन्होंने उसे वेतन सहित पन्द्रह दिन की छुट्टी दे दी। वह चला

गया तो उन्होंने यादराम को अस्थायी रूप से उसकी जगह लगा लिया। जब पन्द्रह दिन बाद वह लौटा तो कविराज जी ने उससे कहा कि बाबा तुम में अब इतना कठिन काम करने की हिम्मत नहीं, तुम्हें तो अब कोई ऐसा काम करना चाहिए जिसमें कम जान खपानी पड़े। मैंने एक मित्र से तुम्हारी सिफ़ारिश कर रखी है, तुम वहाँ जाओ। रुपये तो शायद दो-एक कम मिलें, पर काम आराम का होगा। मैं तुम्हें सिफ़ारिशी चिट्ठी लिख देता हूँ। और उन्होंने अपने मित्र को लिखा :

"तुम कोई बात कहो और हम न मानें, यह कैसे हो सकता है। नौकर भेज रहा हूँ। मेरे यहाँ छः वर्ष से काम कर रहा है। दयानतदार और परिश्रमी है, मुझे कष्ट तो होगा, पर मैं जानता हूँ, तुम्हारा कष्ट मुझसे अधिक है। एक बार काम सिखा दो, फिर तुम इसे बड़ा उपयुक्त पाओगे।"

और यह सिफ़ारिशी चिट्ठी दे कर उन्होंने उसके हाथ पर दो रुपये इनाम रखा और उसे बिदा किया।

कविराज जी नौकरों ही से छल करते हों, यह बात न थी। छल-कपट (जिसे वे जीवन को सुख से व्यतीत करने का एक अत्यावश्यक साधन मानते थे) उनकी प्रकृति का एक अंग बन चुका था। अपने नौकरों से, ग्राहकों से, मित्रों से, बच्चों से, बीवी से, यहाँ तक कि वे अपने आप से छल करते थे। दिन-रात झूठ बोलते हुए, जनता को ठगते हुए वे साथ-साथ अपना परलोक सुधारने की भी चिन्ता में मग्न रहते थे। आर्य समाज के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी शुद्धदेव उनके घर नियमित रूप से वर्ष में एक बार गीता की कथा करते थे, हर महीने हवन-यज्ञ होता था। इसके साथ ही वे कई सभा-सोसाइटियों को दान देते थे और कई धर्मार्थ संस्थाओं के संचालन का बोझ अपने कन्धों पर उठाये हुए थे और समझते थे कि इस लोक के साथ वे अपना परलोक भी सुधार रहे हैं। किन्तु चेतन ने भली-भाँति देखा था कि चाहे प्रकट रूप से ये सब कार्य वे परमार्थ के हेतु ही करते हों, किन्तु अर्धचेतन में उनका व्यापारी अपने समस्त परोपकार का लेखा-जोखा रखता था। कथा कराते समय अथवा चन्दा देते समय वे सदैव इस बात का ध्यान रखते थे

कि बदले में उन्हें क्या मिलता है—कितनी सभा-सोसाइटियों के वे प्रधान अथवा उपप्रधान चुने जाते हैं, उनके कितने मित्रों अथवा रिश्तेदारों का काम बनता है; उन्हें कितनी ख्याति मिलती है। कई सभाओं की ओर से उनको (आयुर्वेद सम्बन्धी सेवाओं के सिलसिले में) स्वर्ण-पदक मिले थे (जिनका विज्ञापन वे अपनी पुस्तक 'विवाह के भेद' के हितार्थ निरन्तर करते) कितनी सोसाइटियों के कोष पर उनका अधिकार था। उन्हें देख कर चेतन को कभी-कभी पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति याद आ जाती थी :

अहरन दी कीती चोरी सुई दा कीता दान
कोठे ते चढ़ देखन लग्गा औह आये विमान ?[1]

लेकिन चेतन को कविराज जी के इस ढंग, उनकी इस व्यवहार-कुशलता से अतीव घृणा थी। वह स्पष्टवादी था। साफ़ बात पसन्द करता था। इस घुमाव-फिराव में उसे छल की गंध आती थी। यदि कविराज उससे साफ़ कह देते—'राजकुमार आ रहा है, चारपाई अब उसके लिए चाहिए'—तो वह तत्काल दे देता। उसे तनिक भी दुःख न होता क्योंकि कविराज जी ने शिमला आने से पहले उससे कह दिया था कि वे सोने के लिए उसे दुकान या मकान का कोई कोना दे देंगे। यह भी उन्होंने उससे कह दिया था कि कदाचित उसे धरती पर सोना पड़े और चेतन इस बात के लिए तैयार भी हो कर आया था। किन्तु उसे इस झूठ और फ़रेब से चिढ़ थी। हर बार नया झूठ। उस झूठ को छिपाने के लिए फिर झूठ और इस प्रकार सारे-का-सारा झूठ का यह जीवन उसके लिए असह्य था। स्पष्ट बात सुनने पर पहले धक्का ज़रूर लगता है, किन्तु आदमी उसे शीघ्र ही भूल जाता है, अथवा उसे यथार्थ जान कर उससे समझौता कर लेता है। किन्तु यह कपट! यह ऊपर से उतना कटु मालूम नहीं होता, किन्तु जो व्यक्ति इस कपट का शिकार बनता है, जब उस पर इसकी यथार्थता खुलती है तो उससे जो झटका लगता है, छले जाने का जो खेद उसे होता है, वह हृदय में घाव बना देता

---

१ कर अहरन की चोरी किया सुई का दान
छत पर चढ़ कर देख रहे, कहाँ आये विमान ?

है और वह घाव समय पा कर नासूर बन जाता है। और कपटी के क्षमा माँग लेने अथवा उससे बदला लेने पर भी नहीं मिटता।

और चाहे उसने उनके लिए पुस्तक लिखने का निर्णय कर लिया था और वह पूरे श्रम से पुस्तक लिख रहा था, किन्तु उस समस्त छल-कपट के लिए उसने उन्हें क्षमा न किया था और वह उस घाव को धीरे-धीरे पाल रहा था।

चेतन के जीवन की ट्रेजेडी उसकी यही बढ़ी हुई भाव-प्रवणता और उस से जनित क्षोभ था। यदि अनजाने में उससे स्वयं छल बन आता तो दूसरे ही क्षण अपने छल को जान कर आत्म-ग्लानि से उसका हृदय भर जाता। प्रतिक्रिया उसे दूसरे किनारे ले जा फेंकती। निम्न-मध्य-वर्ग में जो 'मोटी खाल' पैदा होती है—जो मान-अपमान को सह जाती है और अनायास असत्य, उत्कोच, चाटुकारी अथवा छल-कपट का व्यवहार करती है—उसका चेतन के पास सर्वथा अभाव था। उसकी खाल बड़ी पतली थी। मस्तिष्क की नसें उसकी अति कोमल थीं। छोटी-सी बात भी उन्हें बेतरह झनझना देती थी।

उसे चारपाई के इस तरह से छीने जाने का बड़ा दुःख हुआ था। कुछ क्षण के लिए क्रोध का लावा उसके अन्तस्तल में पूरे वेग से खौल उठा था और लगता था कि वह एकदम फट पड़ेगा। उसने चाहा था कि उसी क्षण कविराज जी के पास जाय। उनसे कहे—"मुझे अभी चारपाई ले दीजिए! इसी क्षण! रुपये आप मेरे वेतन से काट लीजिए। क्या मेरे सहयोग का मूल्य एक चारपाई भी नहीं! क्या आपने मुझे यादराम या जयदेव समझ लिया है?"

यद्यपि वह भली-भाँति जान गया था कि कविराज की दृष्टि में उसका महत्व यादराम या जयदेव से अधिक नहीं, उसने अपनी इस स्थिति से समझौता भी कर लिया था, किन्तु बार-बार इसकी याद दिलाये जाने पर उसे, उसकी वर्ग-चेतना को, उसके अहम् को दुख पहुँचता था। उस क्रोध के क्षण में उसने यह भी सोचा था कि उसी समय कहीं से तीन-चार रुपयों का प्रबन्ध

करके एक चारपाई ले आये। किन्तु ज्यों-ज्यों वह सोचता गया, उसके क्रोध का वेग शांत होता गया। कविराज जी से और कुछ चाहे उसने न सीखा हो, किन्तु क्रोध के क्षण में सोचना अवश्य सीख लिया था। 'कोई भी बात क्रोध में न करो'—यह उनका कथन था। एक बार भाई साहब की ओर से एक कटु-पत्र आया था और वह उसी समय उसका उत्तर देना चाहता था, किन्तु कविराज जी ने उसे सलाह दी थी कि गुस्से में कभी पत्र न लिखो। यदि लिखे बिना कुछ और काम न हो सके तो लिख कर रख लो और दो दिन बाद डालो। निश्चय ही तुम उसे फाड़ दोगे। चेतन बहुतेरा चाहता था कि अपने पुराने स्वभाव के अनुसार वह दनदनाता हुआ कविराज जी के पास जाय, किन्तु अज्ञात रूप से उस पर उनका प्रभाव हो गया था। उनकी बहुत-सी बातों से घृणा करने, मन में उनका मज़ाक उड़ाने के बावजूद, उसने उनके स्वभाव का यह गुण अपना लिया था। क्रोध के होते भी, एक ओर अपने वांछित भावी कृत्य और दूसरी ओर उसके औचित्य-अनौचित्य पर वह अपने मन में विचार करता जा रहा था। उसे लगता था कि अभी कविराज जी के पास जाना तो उसकी मूर्खता होगी। वह जायेगा, शोर मचायेगा, कविराज उलटा उसे लज्जित करेंगे और उस पर अहसान का बोझ लादते हुए उसे चारपाई ले देंगे। न, वह इस प्रकार चारपाई न लेगा। उसे और किस बात का आराम है जो वह चारपाई ले कर कृतज्ञ हो? वह अभी तक नौकरों की बे-छत की टट्टी में शौचादि से निवृत्त होने के लिए जाता है; उस सर्दी में कमेटी के नल पर नहाता है, ब्राह्मण होता हुआ भी, उनके घर रहता हुआ भी अछूत-सा बना हुआ है; तो फिर यदि धरती पर सो लेगा तो उसका कौन-सा अपमान हो जायगा? अब असत्य उनके जीवन का स्वभाव बन गया है, जब उस असत्य को भली-भाँति जान कर, समझ कर वह उनके लिए पुस्तक लिखने को तैयार हो गया है, तब उसी असत्य का एक दूसरा रूप सामने आने पर इतनी आकुलता क्यों? क्यों न सदा के लिए उसी रूप को उनका यथार्थ रूप मान ले। जिस काल्पनिक व्यक्ति के नाम उसने भावुकता-वश पुस्तक समर्पित की थी, उसे क्यों न भूल

जाय ? उन कविराज को उसकी भावुकतामय-कल्पना ने देखा था, इनको उसके अनुभव ने। तो फिर वह अपने अनुभव को ही पथ-प्रदर्शक क्यों न माने, क्यों कल्पना का भुलावा खाये और बार-बार उसके मिथ्या होने पर दुख पाये ?

और यह सब सोच कर चेतन स्वस्थ हो गया था। उसका क्रोध तूफ़ान नहीं बना, बवंडर नहीं बना, एक घुमड़न-सी बन कर अन्दर-ही-अन्दर मिट गया। किन्तु वह घाव जो चेतन के मन में इस कपट के कारण हो गया था, नहीं मिटा, इस घटना से वह कुछ और गहरा ही हुआ।

कविराज जी सुबह उससे आँखें मिलाये बिना गुज़र गये थे। किन्तु शाम को जब वे आये तो सीढ़ियों की खिड़की में से झाँक कर उन्होंने पूछा कि वह मज़े में तो है और उसे पिस्सुओं ने तो नहीं काटा। "राजकुमार तो भाग आया उठ कर," उन्होंने कहा, "बच्चा है न आखिर!" और वे हँसे।

तब चेतन ने कहा कि वह बड़े मज़े में है, उसके रक्त में इतना विष भरा है कि पिस्सू उसे काटें तो मर जायँ।

इस पर कविराज जी ने खीसें निपोर दीं और अन्दर चले गये।

●

४४

राजकुमार उसके कमरे में सोया न था, किन्तु उसके पास पढ़ने के लिए दूसरे ही दिन समय पर आ गया था। चेतन चाहता था, उसे कह दे कि वह पुस्तक लिख रहा है, उसके पास समय नहीं, किन्तु वह कुछ भी न कह सका और चुपचाप उसे पढ़ाने लगा।

जब राजकुमार दूसरे ही दिन पढ़ने आया तो चेतन ने उसके हाथ में आबनूस की एक सुन्दर बाँसुरी देखी। जब वह पढ़ चुका तो चेतन के एक-दो बार कहने पर उसने उसे बाँसुरी बजा कर सुनायी। चेतन बड़ा प्रसन्न हुआ। राजकुमार तो पढ़ ही चुका था, अपना लिखना-पढ़ना समेट वह राजकुमार के साथ ईदगाह गया और दोनों बड़ी देर तक वहाँ बाँसुरी की

धुनों में मस्त रहे।

चेतन को स्वयं बाँसुरी बजाने का बड़ा शौक था। जब वह बहुत छोटा था तो हरलाल पंसारी की दुकान पर एक रँगरेज़ आया करता था। वह इतनी सुन्दर बाँसुरी बजाता था कि चेतन, जहाँ कहीं भी हो, उसकी बाँसुरी का स्वर सुनते ही भाग आता था, पहले-पहल शायद उसी की बाँसुरी सुन कर चेतन के मन में बाँसुरी बजाने का शौक पैदा हुआ था। वह मेले से एक अढ़ाई आने की बाँसुरी लाया भी था, किन्तु उससे फूँक ही न देते बनी थी। हार कर बाँसुरी छोड़, वह मनोविनोद के अन्य साधनों में व्यस्त हो गया था। फिर भी जब कभी कोई मदारी मुहल्ले में आता और एक हाथ से डुगडुगी और दूसरे से बाँसुरी बजाता हुआ तमाशा देखने वालों के घेरे में घूमता तो चेतन का शौक फिर दुगने वेग से उमड़ उठता। वह फिर पैसा-पैसा जोड़ कर बाँसुरी खरीद लाता और तब तक उसमें फूँकता रहता जब तक उसका सिर न दुखने लग जाता। धीरे-धीरे उसे बाँसुरी में फूँक देना आ गया। तब वह महावीर दल में भरती हो गया ताकि दल के बैंड वालों से बाँसुरी की ट्यूनें सीख ले। बैंड वालों की बाँसुरियों को देख कर उसे स्वयं आबनूस की एक बाँसुरी खरीदने की इच्छा हुई थी। किन्तु जालन्धर में तब ऐसी कोई दुकान न थी जहाँ से सब तरह के वाद्य-यंत्र खरीदे जा सकें। इसलिए यह इच्छा कई वर्ष तक उसके अन्तर में दबी रही थी। किन्तु उसने पहला अवसर पाते ही बाँसुरी खरीदी।

१६२६ की बात है। मैट्रिक करने के बाद कॉलेज में प्रवेश किये उसे कुछ ही महीने हुए थे कि लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन आ गया। अनन्त के साथ चेतन भी उसे देखने गया। वे तो कदाचित कभी जा न पाते। लाहौर जाने वहाँ रहने, खाने-पीने और काँग्रेस का अधिवेशन देखने की व्यवस्था वे कैसे करते? इतना धन कहाँ से पाते? किन्तु उनके साथ ही, उन्हीं की श्रेणी में, जालन्धर की काँग्रेस कमेटी के प्रधान का पुत्र पढ़ता था। उसने उनको राह सुझा दी। स्थानीय काँग्रेस कमेटी ने काँग्रेस के अवसर पर

स्वयं-सेवक भेजने का निश्चय किया था और कुछ स्वयं-सेवकों की वर्दियों तथा एक ओर के किराये का प्रबन्ध अपने ज़िम्मे ले लिया था। प्रधान का लड़का ख़ास तौर पर लाहौर के ट्रेनिंग कैम्प से ट्रेनिंग ले कर आया था और उसने जालन्धर में ट्रेनिंग कैम्प खोला था। उसी की सहायता और सिफ़ारिश पर वे दोनों यह सुविधा पा गये। चन्द दिन उन्होंने ट्रेनिंग ली और बड़े धड़ल्ले से लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन देखने चले गये।

अनन्त के पिता तो क़ानूनगो थे, दूसरे वह अपने पिता का इकलौता लड़का था, इसलिए उसके पास तो पर्याप्त कपड़े और जेब ख़र्च के लिए यथेष्ट रकम थी। किन्तु चेतन के पास केवल पाँच रुपये थे (जो उसने बड़े अनुनय-विनय के बाद माँ से लिए थे या यों कहिए कि उसके अनुनय-विनय पर माँ ने किसी से ला कर दिये थे) और वर्दी के कपड़ों के अतिरिक्त केवल वही ओवर कोट था। वास्तव में उस समय वह भाई साहब के पास था और चेतन ने उनसे माँग लिया था।

दिसम्बर का महीना था। कड़ा जाड़ा पड़ रहा था। प्रधान के जलूस से तीन-चार दिन पहले वे वहाँ पहुँचे। उन्हें खेमे में उतारा गया जिसमें नीचे पुआल बिछी हुई थी। चेतन को पहली रात सर्दी लगती रही, किन्तु काँग्रेस नगर पहुँच कर उल्लास-मात्र से वे पहली रात न सोये थे। दूसरी सुबह जब प्रातः ही उन्हें परेड के लिए जाना पड़ा और सर्दी के मारे उनके हाथ-पाँव सन्न हो गये तो उन्हें पता चला कि काँग्रेस अधिवेशन में 'देखना' और 'मौज उड़ाना' ही नहीं, कुछ 'करना' भी है। सर्दी के मारे एक लड़का परेड ग्राउंड ही में बेहोश हो गया था। अनन्त तो पहले दिन ही खिसक गया। चेतन दो दिन परेड करने जाता रहा, किन्तु यह सब उसके बस का रोग न था। उसमें इतनी शक्ति ही न थी कि ठंडी वर्दी में वह इतनी सर्दी में निकल सके। इसलिए तीसरे दिन वह भी कन्नी काट गया। प्रधान की शोभा यात्रा—जलूस—में वे दोनों शामिल हुए। यात्रा काँग्रेस नगर (अथवा लाजपतराय नगर से, जो रावी के तट पर बनाया गया था) आरम्भ हुई; पैदल स्टेशन तक गयी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के आने पर फिर बाज़ारों में से होती

हुई चली ।

जलूस से एक दिन पहले वर्षा भी हुई थी। बाज़ारों में बड़ा कीचड़ था। चेतन कभी इतना पैदल न चला था। फिर तीन दिन से (अपने नये-नये जोश में) वह लगातार ड्यूटी दे रहा था। उसके जूते पुराने और खुले थे। इन सब कारणों से खड़े-खड़े उसकी पिंडलियाँ दुखने लगी थीं, चलते-चलते तलुवे दर्द करने लगे थे और नारे लगाते-लगाते उसका गला बैठ गया था। निरन्तर अपने आगे के वालंटियर की गर्दन के भोंडे खरखरे बालों को देखते रहना, कभी चल पड़ना, कभी खड़े हो जाना और कभी नारा लगा देना! कई घंटे से यही करते-करते वह ऊब गया था, उदास हो गया था। वह उस बहिया की एक लहर की भाँति बहाव में बढ़े जाना न चाहता था। किनारे हो कर उस वेग की बहार देखना चाहता था। जब वे एक अपेक्षाकृत तंग बाज़ार में पहुँचे, जहाँ कीचड़ सहस्त्रों लोगों के चलने से ऐसा चिकनी मिट्टी-सा हो गया था कि जूते चिपकने लगे थे तो वहाँ एक बार चेतन का जूता ऐसा चिपका कि उतर गया। तब इस अवसर को उपयुक्त जान वह उस बहती धारा से अलग हो गया। मार्च करते हुए स्वयं-सेवकों के पैरों के नीचे से उसने बड़ी कठिनाई से जूते को निकाला। उसके एक पाँव का मोज़ा कीचड़ से लथपथ हो गया। इसलिए जूते को हाथ ही में थामे उसने बराबर की एक दुकान के तख्ते पर खड़ा हो कर सारा जलूस देखा, फिर उसने दोनों मोज़े उतारे और पट्टियों को वैसे ही नंगी टाँगों पर कस कर बिना मोज़ों के जूते पहन, वह धीरे-धीरे सजे हुए बाज़ारों की बहार देखता हुआ चल पड़ा।

अनारकली में एक दुकान पर उसे हारमोनियम और दूसरे वाद्ययंत्र रखे हुए दिखायी दिये। एक शीशे की आलमारी में आबनूस की बाँसुरियाँ भी थीं। चेतन वहाँ रुक गया। सब कुछ भूल कर वह दुकान में चला गया। उसने भिन्न-भिन्न बाँसुरियों का मूल्य पूछा। उसे जो सबसे अच्छी लगी,-उसकी कीमत पाँच रुपये थी। वह दो हिस्सों में विभक्त हो जाती थी और उसमें एक कुंजी भी थी। वह यही खरीदेगा, इस बात का निश्चय करके

वह दुकान से उतर गया।

इसके बाद पाँच दिन तक वह और वहाँ रहा। अगणित चीज़ें वहाँ देखने को थीं—प्रदर्शनियाँ, तमाशे, विषय-निर्धारिणी समिति की बैठकें तथा अखिल भारतीय काँग्रेस का अधिवेशन और काँग्रेस से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी कई संस्थाओं के जलसे। हज़ारों चीज़ें ख़रीदने की थीं। सहस्रों खाने की थीं। कई ऐसी भी थीं जो उसने कभी पहले न चक्खी थीं, न देखी! कई बार उसका हाथ अपनी जेब की ओर जाता, पर उसकी आँखों के सामने आबनूस की वही सुन्दर बाँसुरी घूम जाती और वह अपने मन तथा जीभ की लालसा को दबा लेता।

टिकट के दाम खर्च किये बिना वह काँग्रेस की बैठकों तथा दूसरी नुमाइशों को देख सके, इस विचार से उसने बड़ी कड़ी ड्यूटियाँ दीं। रात-रात भर वह ड्यूटी देता रहा और उसने बिना पैसा ख़र्च किये सब देखने वाली चीजें देखीं। खाना वह (स्वयं-सेवक होने के कारण) काँग्रेस के लंगर से खाता रहा और 'अप अप विद माश की दाल,' 'डाउन डाउन विद मूँग की दाल'* और वैसे ही दूसरे नारों का आनन्द (जो मन पसन्द चीज़ों के मिलने अथवा न मिलने पर लगाये जाते थे) मुफ़्त में लेता रहा। नहाने धोने के लिए साबुन-तेल काँग्रेस के स्नान-गृहों में मिल जाता था। इस तरह उसने अपने पाँच के पाँच रुपये बचा लिए थे। वापस जाने का किराया उसने अनन्त से उधार ले लिया और जब वे वहाँ से चले तो उसने जाते-जाते ताँगे से पाँच मिनट के लिए उतर कर वही बाँसुरी ख़रीद ली।

बाँसुरी पा कर उसे इतनी खुशी हुई कि उसका जी चाहा, वह स्टेशन तक उसे बजाता ही चले। किन्तु सामान के अधिक होने के कारण ताँगे में इस बात की सुविधा न थी। इसलिए उसने रास्ते में बाँसुरी बजाने का लोभ संवरण किया और उसे अपने ओवर कोट के अन्दर की जेब में रख लिया।

स्टेशन पर भीड़ इतनी थी कि टिकट लेना चेतन के बस की बात न थी, इसलिए यह भार अनन्त ने अपने कंधों पर लिया और चेतन सामान की

---

*माश की दाल की जय, मूँग की दाल का क्षय!

रखवाली करने लगा। जब अनन्त उस बेपनाह भीड़ में घुस गया और सामान उतार कर चेतन ने गिन लिया तो वह बिस्तर पर मज़े से बैठ, बाँसुरी के दोनों हिस्सों को जोड़, मस्त हो उसे बजाने लगा। वह भूल गया कि वह स्टेशन के मुसाफ़िरखाने में बैठा है, भूल गया कि स्टेशन पर अपार भीड़ है, टिकट मिलेगा या नहीं, उन्हें रात उसी मुसाफ़िरखाने में तो न बितानी पड़ेगी —वह सब कुछ भूल गया और अपने चिर-परिचित गीत एक-एक करके बजाने लगा। कितनी सुरीली थी वह आबनूस की बाँसुरी !

वह उसकी स्वर-लहरी में गुम था कि टिकट ले कर घबराया हुआ अनन्त आया। साँस उसकी फूली हुई थी, कपड़े अस्त-व्यस्त थे, "तुम यहाँ बैठे बाँसुरी में मस्त हो और वहाँ गाड़ी चलने ही वाली है !" उसने चीख़ कर कहा, और गेट की ओर लपका।

चेतन ने घबराहट में बाँसुरी उसी तरह कोट के अन्दर की जेब में रखी और कुली के सिर पर सामान उठवा कर वह भी उसके पीछे भागा। जब बड़ी कठिनाई के बाद वह गाड़ी में सवार हुए और उन्हें अपने बिस्तरों को रखने और उन्हीं पर बैठने की जगह मिल गयी तो चेतन ने अपने बिस्तर पर बैठ कर, डिब्बे की दीवार के साथ अपनी पीठ लगा, इस बात का खयाल किये बिना कि वह शौचालय के दरवाज़े से पीठ लगाये बैठा है, बाँसुरी निकालने के लिए ओवरकोट के अन्दर की जेब में हाथ डाला। उसका दिल धक से रह गया। बाँसुरी ग़ायब थी। शायद सामान उठाते समय झुकने के कारण जल्दी में गिर गयी थी या भीड़ में किसी ने खींच ली थी। गाड़ी चलने ही वाली थी। अनन्त ने कहा भी कि बैठे रहो, और ख़रीद लेना, पर चेतन अंधाधुन्ध लाइनें फलाँगता हुआ वापस वहाँ गया जहाँ वे बैठे थे। किन्तु बाँसुरी वहाँ होती तो भी उस जल्दी में उसे न मिलती और फिर इतनी भीड़ में वह धरती पर पड़ी ही कैसे रह पाती। चेतन की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उद्भ्रान्त-सा वह वापस पलटा।

वह इस तरह पागलों की भाँति इधर-उधर भटक रहा था कि अनन्त यदि बाहर खिड़की में न खड़ा होता तो चेतन अपना डिब्बा कभी न ढूँढ़ पाता।

रात के एक बजे जब गाड़ी जालन्धर पहुँची और किसी-न-किसी तरह रेलवे रोड, पंजपीर और चौरस्ती अटारी पार कर वह घर के दरवाज़े पर पहुँचा तो अन्दर प्रवेश करते ही उसकी आँखों से अनायास आँसू बहने लगे।

राजकुमार की बाँसुरी को देख कर चेतन के हृदय में एक टीस-सी उठी थी। काँग्रेस अधिवेशन के उन सात दिनों का कठिन संयम और उस संयम के बाद का वह क्षणिक उल्लास और लम्बी निराशा उसके सामने घूम गयी। किन्तु समय ने उस घाव को काफ़ी हद तक भर दिया था! आबनूस की बाँसुरी तो वह फिर ख़रीद न सका था, पर बाँस की पोरी उसके ट्रंक में अब भी पड़ी थी, जिसे वह कुछ बीवी जी की भ्रू-भंग, कुछ पड़ोसियों के क्रोध और कुछ सामने घर में रहने वाले बाबू चरणदास की संदेहशीलता के कारण बाहर न निकाल पाया था। किन्तु राजकुमार के साथ बाँसुरी बजाने का अधिकार पा कर उसने सोल्लास वह बाँस की पोरी फिर निकाल ली थी।

कुछ दिनों के लिए चेतन अपने एकांत को एकदम भूल गया। अपने अवकाश के समय वह राजकुमार के साथ नीचे घाटियों में उतर जाता और वे दोनों इकठे मिल कर बाँसुरी बजाते।

४५

चेतन का यह नया स्वर्ग चन्द दिन ही रहा और उन चन्द दिनों में उसके अवकाश का सारा समय राजकुमार से साथ बाँसुरी बजाने और घूमने-फिरने में बीता।

किन्तु बाँसुरी बजाने में राजकुमार कोई विशेषज्ञ न था। स्कूल में वह अपने स्काउट बैंड का साधारण सदस्य था। इसलिए उसे मार्च की दो-एक तर्ज़ें ही आती थीं। उनके अतिरिक्त वह दो-एक पंजाबी गीत बाँसुरी पर बजा लिया करता था। ये सब उसने चेतन को सिखा दिये। स्वयं चेतन को भी बहुत से गीत न आते थे और जो आते थे, वे भी कई वर्ष पुराने थे।

उसने सहर्ष उन सबकी तर्ज़ें राजकुमार को सिखा दीं और कुछ दिन तक दोनों बड़े प्रसन्न रहे। नीचे खड्ड के किसी पत्थर पर, ईदगाह के जँगले पर या रिज के हवा घर में बैठ कर दोनों मस्त हो एक-दूसरे से सीखी हुई ट्यूनें बजाते रहे। इस हद तक कि उनमें कोई नयापन न रहा और बाँसुरी बजाते-बजाते उनके सिर दुखने लगे। तब दोनों का उन्माद कुछ कम हुआ और किसी दूसरी ओर मन लगाने को जी चाहने लगा। राजकुमार इस बीच में अपने नये मित्रों से भली-भाँति खुल गया और चेतन ने फिर अपने साहित्य की शरण ली।

कुछ दिन तक उसने अवकाश के समय में उपन्यास लिखने का प्रयास किया, किन्तु जाने क्यों, भरसक प्रयास करने पर भी उसका उपन्यास आगे न चला। उसने अधिक उपन्यास न पढ़े थे, उपन्यासों के सम्बन्ध में उसका ज्ञान प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों, बँगला से अनूदित कुछ उपन्यासों अथवा उन दो-एक अँग्रेज़ी उपन्यासों तक ही सीमित था जो उसने पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़े थे और इतनी पूँजी के साथ अच्छा उपन्यास लिखना उसके बस की बात न थी। पर इस यथार्थता को समझे बिना वह लिखे जा रहा था। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की प्रबल इच्छा उसके अन्तर में निरन्तर अँगड़ाइयाँ लिया करती थीं और वह लिखे जाता था। पर उपन्यास-कला पर क्योंकि उसका कोई अधिकार न था, इसलिए उसका उपन्यास बार-बार अटक जाता। अड़ियल टट्टू की भाँति आगे बढ़ने से इनकार कर देता। जब बीसियों स्लिपें काली करने पर भी उपन्यास ने यथेष्ठ प्रगति न की तो एक दिन हार कर उसने सब-की-सब स्लिपें उठा कर एक ओर रखीं और निश्चय किया कि वह पहाड़ी लोगों के जीवन पर कहानियाँ लिखेगा।

किन्तु पहाड़ी लोगों के जीवन का उसे कुछ भी ज्ञान न था। कल्पना की सहायता से उसने जो कहानी लिखी, वह उसे एकदम असम्भव लगी।

तब कहानी छोड़ उसने कविताएँ लिखने का प्रयास किया, किन्तु न

जाने उसकी कविता के सोते को क्या हो गया था ? यत्न करने पर भी उससे कोई कविता न बन पड़ी। कॉलेज के दिनों में जब उसने कुन्ती को देखा था तो कविताएँ उड़ती-सी, बहती-सी, उसके मस्तिष्क में आ जाती थीं। चलता-चलता वह गुनगुनाता तो किसी-न-किसी कविता की पंक्ति बन जाती, पर अब वह यदि कुन्ती का ध्यान करता तो उसके सामने उसके पति की मृत्यु के दिन देखी हुई उसकी आकृति, अपने विवाह का वह दिन, पिता और भाइयों का झगड़ा और बीसियों दूसरी बातें आ जातीं और कविता न जाने कहाँ पंख लगा कर उड़ जाती।

सिर को झटक, उन दृश्यों को फिर विस्मृति के महागर्त में ढकेल कर वह नीला का ध्यान करता और चाहता कि कोई सुन्दर-सी कविता लिखे। किन्तु इस बार पहले दृश्यों से भी कटु दृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगते। वह देखता कि नीला उससे रुष्ट है और वह उसे मना रहा है.... देखता कि नीला के पिता ने तत्काल उसका विवाह कर दिया है और वह कहीं सुदूर प्रदेश को जा रही है....उसके हृदय को प्रबल आघात-सा लगता और कविता की पंक्तियाँ उसकी पहुँच से कहीं दूर—कहीं बहुत दूर उड़ जातीं।

और वह सोचने लगता कि आखिर नीला के विवाह की बात सुन कर उसे दुख क्यों होता है ? वह स्वयं विवाहित है, अपनी पत्नी से घृणा भी नहीं करता। स्वयं ही उन्होंने पंडित वेणीप्रसाद से नीला का विवाह कर देने को कहा है। फिर यह पीड़ा कैसी ? और वह मन-ही-मन अपने आपसे लड़ता-झगड़ता कविता लिखने का विचार छोड़, कभी कविराज जी की पुस्तक लिखने में मग्न हो जाता और कभी माल रोड को चल देता।

●

४६ जब चेतन बार-बार उपन्यास या कहानी या कविता लिखने का विफल प्रयास कर थक गया और माल,' मिडिल या लोअर बाज़ार अथवा जाकू के चक्कर उसकी उदासी और एकाकीपन को कम

करने के बदले बढ़ाने लगे तो एक दिन सहसा उसे पता चला कि वह साहित्य के पीछे योंही लठ ले कर पड़ा हुआ है। वह तो संगीतज्ञ बनने के लिए बना है।

वह पाँच नम्बर की सीढ़ियों से हो कर खाना खाने जा रहा था कि मिडिल बाज़ार के कोने के एक रेस्तोराँ से उसे गाने की मधुर ध्वनि सुनायी दी।

कौन देस गया पिया मोरा बालम रे
मैं तो वाहु देश की बलिहारी

वहीं सीढ़ियों पर मन्त्र-मुग्ध-सा वह खड़ा रह गया। इतना तरल, मधुर, करुण संगीत था कि उसके पाँव वहीं जमे रह गये। जब वह ध्वनि बन्द हुई तो वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरने लगा, किन्तु उसे लगा जैसे वह करुण-मधुर ध्वनि बराबर उसका पीछा कर रही है।

गाना पक्का था और जैसा कि उसे बाद में पता चला 'ख़याल मुलतानी में गाया जा रहा था। न जाने रागिनी ही सुन्दर थी अथवा गाने वाले के स्वर में जादू था, उस समय जब वह फिर अपने आपको एकाकी अनुभव कर रहा था, इस गाने ने उसके एकाकीपन को मिटा दिया, उसकी कल्पना को फिर पंख लग गये और वह फिर नयी बस्तियों में घूमने लगा और घर जा कर जब वह लेटा तो उसके कानों में वही ध्वनि गूँजती रही।

दूसरे दिन दोपहर को वह फिर उसी गली से हो कर खाना खाने गया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने रेस्तोराँ के बाहर एक ओर, पूरी-की-पूरी दीवार को अपनी लम्बाई में लिये हुए, एक बड़ा भारी बोर्ड लगा हुआ देखा जिस पर बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा था :—

PROFESSOR G. SINGH'S
MUSIC COLLEGE

इस कॉलेज का दरवाज़ा शायद अन्दर की ओर था। बाहर की ओर सिर्फ़ एक खिड़की दिखायी देती थी जिस पर बड़ा सुन्दर पर्दा पड़ा हुआ

था। चेतन का जी चाहा कि अन्दर जा कर देखे, पर उसे साहस न हुआ। उस समय भी अन्दर कोई गा रहा था, किन्तु स्वर वह न था जो उसने पहले दिन सुना था। चेतन कुछ पल खड़ा रहा। फिर जैसे अपनी विपन्नता की विवशता से बेचैन हो कर वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गया।

उस दिन के बाद चेतन का नियम हो गया कि वह खाने के लिए दोनों समय सदैव माल के ऊपर से हो कर उसी गली से नीचे उतर कर जाता। नीचे सुरंग को पार करके जाना उसने छोड़ दिया था। दोपहर और शाम दोनों समय उसे उस रहस्यमय कमरे के अन्दर से कभी हारमोनियम के मन्दर और कभी मध्यम सप्तक के साथ उठता हुआ मीठा-मादक स्वर सुनायी देता। कभी तबला भी बजता। यों तो उसके अन्दर से कई आवाज़ें आतीं, किन्तु एक स्वर चेतन को बड़ा मन-मोहक प्रतीत होता। उसके हृदय को कुछ होने-सा लगता। जी चाहता कि उसे अनवरत सुनता जाय। जब तक वह स्वर आता, वहीं सीढ़ियों पर खड़ा वह मंत्र-मुग्ध-सा सुनता रहता। उसे विश्वास हो गया कि प्रो० जी० सिंह के अतिरिक्त यह गाने वाला कोई दूसरा नहीं, किन्तु स्वर किसी बड़े युवा कंठ का मीठा-मदभरा था। ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते जाते थे, उसकी उत्सुकता बढ़ती जाती थी।

एक दिन जब वर्षा हो रही थी और वह अपना वही पुराना ओवर कोट छाती से कसे खाना खाने के लिए जा रहा था, उसे फिर रेस्तोराँ के उस कमरे से वही मादक स्वर सुनायी दिया। चेतन चलना भूल गया। नन्हीं-नन्हीं बूँदों में निरन्तर भीगता सीढ़ियों के एक ओर खड़ा गाना सुनता रहा। जब गाना समाप्त हो गया तो एक लम्बी साँस भर कर वह चल पड़ा। ध्यान उसका उधर ही था और कल्पना में वह उस म्यूज़िक कॉलेज के रहस्यमय कमरे का भेद जानने का प्रयास कर रहा था कि उसका पाँव रपटा और वह फिसलता हुआ कई सीढ़ियाँ नीचे लोअर बाज़ार में आ रहा।

तभी सामने के हलवाई की दुकान में गर्म-गर्म इमरतियाँ खाते हुए चन्द महानुभावों ने ठहाका लगाया। एक ने कहा :

"कोई बात नहीं बाबू जी, किसी ने देखा नहीं!" और वे फिर हँसे।

चेतन खिन्नता से दाँत निपोरता हुआ उठा और कपड़े झाड़ कर जल्दी-जल्दी उस दुकान के सामने से निकल गया। यदि उसने ओवर कोट न पहना होता तो निश्चय ही उसकी कमर छिल जाती। ओवर कोट के कारण यद्यपि उसकी कमर तो न छिली, पर उसके चोट काफ़ी आयी। किन्तु उस समय अपनी चोट को भूल कर उन इमरतियाँ खाने वालों की उपहासमयी दृष्टि से शीघ्रातिशीघ्र ओझल हो जाना ही उसने श्रेयस्कर समझा।

चेतन ढाबे की ओर चला। उसके मस्तिष्क से क्षण भर के लिए प्रो० जी० सिंह का मादक संगीत और उसकी स्वर-लहरी सब हवा हो गयी। उन हँसने वालों पर उसे बड़ा क्रोध आया। किन्तु जब दूसरे क्षण ज़रा ठंडे दिल से उसने सारी घटना पर पुनः विचार किया तो उसके सामने कई घटनाएँ आ गयीं जब अपने मित्रों के साथ मिल कर वह स्वयं गिरने वालों पर हँसा था—साइकिल से गिरने वालों पर, साइकिल से बचने की कोशिश में गिरने वालों पर, बाज़ार की कीचड़ में फिसल कर गिरने वालों पर! मानव का यह कैसा स्वभाव है? उसने सोचा—दूसरों को दुख में देख कर उसे ख़ुशी क्यों होती है, गिरतों पर हँसने की अपेक्षा वह उन्हें उठा क्यों नहीं लेता?

खाना खाने के बाद चेतन जब लौटा तो उसने कनखियों से हलवाई की दुकान की ओर देखा। न जाने क्यों उन लोगों के सामने जाने में उसे झिझक-सी हो रही थी। खाना खाने में भी उसने रोज़ की अपेक्षा अधिक समय लगाया था।

वे लोग जा चुके थे। वर्षा बन्द हो चुकी थी और बादल कहीं जाकू की ओर उड़ गये थे। चेतन तनिक स्वस्थ हो कर फिर चल पड़ा।

म्यूज़िक कॉलेज में फिर कोई गा रहा था—'कौन देस गया पिया मोरा बालम रे!'—गीत वही था, किन्तु स्वर में वह मादकता कहाँ? चेतन कुछ क्षण तक खड़ा सुनता रहा। फिर साहस बटोर कर अन्दर चला गया। शायद सीढ़ियों से गिरने में जहाँ एक ओर उसके मन में संकोच पैदा हो गया था, वहाँ दूसरी ओर साहस का भी उद्रेक हुआ था।

प्रो० जी० सिंह का म्यूज़िक कॉलेज लखनऊ कॉलेज जैसा शानदार न

था, यद्यपि बोर्ड उस पर बहुत लम्बा और अत्यन्त कलापूर्ण ढंग से लिखा हुआ लगा था। लाहौर में किसी बाज़ार के चौबारे अथवा किसी मकान के एक ही कमरे में सीमित 'संगीत महाविद्यालयों' की भाँति यह कॉलेज भी रेस्तोराँ के एक हो कमरे की परिधि में सीमित था और वह कमरा भी, जैसा कि चेतन को अन्दर जाने पर ज्ञात हुआ, लम्बाई में बाहर लगे हुए बोर्ड से कम था।

सारे-के-सारे मकान में तीन कमरे थे। इनमें से पहला किचन का काम देता था। इसमें रेस्तोराँ के ग्राहकों के लिए चाय आदि बनती थी और क्योंकि खाना खाने की इच्छा रखने वालों के लिए खाना भी पकता था, इसलिए ऊँची बनी हुई अँगीठियों पर सदैव कोर्मा, कोफ़्ता, रोग़न जोश, मछली आदि पकती रहती थी। इसके साथ (अर्थात् बीच के कमरे में) प्रो० सिंह कॉलेज के विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा देते थे। तीसरे कमरे में रेस्तोराँ के ग्राहक चाय आदि पीते या खाना आदि खाते। यहाँ तीन-चार तिपाइयाँ लगी थीं, एक बड़ा-सा मेज़ भी था, जिसके इर्द-गिर्द कुर्सियाँ लगी थीं। तिपाइयाँ और मेज़ कैसे थे, इसका अनुमान मेज़-पोशों पर पड़े हुए सालन आदि के बड़े-बड़े धब्बों को देख कर ही लगाया जा सकता था। लेकिन यह सब बाहर से न दिखायी देता था। बाहर से तो इन तीनों कमरों की खिड़कियों पर लगे हुए पर्दे ही दिखायी देते थे जो इनको विचित्र रहस्य-मयता प्रदान कर रहे थे। इन तीनों कमरों के दरवाज़े एक छोटी और अपेक्षाकृत अँधेरी गैलरी में खुलते थे जो रेस्तोराँ के किचन के बराबर से आरम्भ हो कर खाने के कमरे में समाप्त हो जाती थी। केवल इसी गैलरी का दरवाज़ा बाहर से दिखायी देता था।

चेतन इसी दरवाज़े से अन्दर दाखिल हुआ। किचन से उठने वाली घटिया घी और प्याज़ की दुर्गन्ध से उसका दिमाग़ भन्ना उठा। नाक पर रूमाल रखे किचन के सामने से घूम कर वह म्यूज़िक कॉलेज के दरवाज़े के सामने आ खड़ा हुआ।

चिक को थामे-थामे उसने देखा—एक छोटा किन्तु साफ़ सुथरा कमरा

है, फ़र्श पर दरी बिछी हुई है जिस पर एक हारमोनियम और तबले की जोड़ी पड़ी है। मेंटलपीस पर कमरे की दीवारों के रंग से मेल खाता हुआ एक कपड़ा बिछा है जिस पर एक कैलेंडर, चीनी के फूल-दान और दो चीनी ही के चूहे क़रीने से रखे हैं। तबले और हारमोनियम के अतिरिक्त कमरे में और कोई साज़ नहीं।

उस कमरे के मध्य एक बारह-चौदह वर्ष का लड़का वही हारमोनियम लिये बैठा था। शायद वही मुल्तानी का ख़याल गा रहा था और यद्यपि वह खादी का एक धुला साफ़ पायजामा, छपी हुई खादी ही की अचकन और सिर पर रागियों जैसा साफ़ा पहने था, किन्तु रूप-रंग से वह झीवर मालूम होता था। (और चेतन का अनुमान ग़लत न निकला क्योंकि बाद में उसे मालूम हुआ कि वह झीवर ही था) उसे बैठे हुए देख कर चेतन आश्वस्त-सा हो अन्दर दाख़िल हुआ।

"आइए !" किवाड़ के पीछे से आवाज़ आयी। कुछ इस तरह जैसे किसी ने पूछा—कहिये कैसे कृपा की ?

चेतन ने चौंक कर देखा। दरवाज़े की ओट में दीवार के साथ तीन लोहे की कुर्सियाँ रखी थीं। उनमें से एक पर सुरुचिपूर्ण तथा बहुमूल्य सूट पहने एक सुन्दर सिख युवक शर्माये हुए मेहमान-सा बैठा था।

"बैठिए !"

चेतन को यह आवाज़ बड़ी मीठी लगी—दोपहर की निस्तब्धता में सहसा बज उठने वाली किसी बैल के गले में बँधी घंटी के स्वर-सी ! चेतन कुर्सी पर बैठ गया।

"फ़रमाइए !" उस युवक ने फिर कहा।

"प्रो० साहब कब आयेंगे ?" कुछ और कह सकने में अपने आपको अशक्त-सा पा कर चेतन ने पूछा।

"फ़रमाइए !"

उस स्वर में मिठास के साथ कुछ ऐसा आत्म-विश्वास था कि चेतन ने पूछा, "आप ही प्रो० सिंह हैं ?"

उस युवक ने सिर हिला कर उत्तर दिया कि 'हाँ।' तब चेतन निमिष भर के लिए चकित-सा उसे देखता रहा। उसका विचार था कि प्रो० सिंह कोई ईसाई होंगे अथवा कोई केश-रहित सिख। उम्र भी प्रो० साहब की उसने चालीस-पचास के ऊपर ही समझी थी और रागियों जैसी बड़ी-सी पगड़ी की भी उसने कल्पना की थी। किन्तु उस काल्पनिक व्यक्ति के स्थान पर इस चौबीस-पच्चीस वर्ष के कोमल कान्त सिख युवक को देख कर वह चकित-सा रह गया। इन प्रोफ़ेसर महोदय का क़द न बहुत लम्बा था न बहुत छोटा (पाँच फुट पाँच-छः इंच होगा) शरीर छरहरा और रंग गेहुआँ था। मसें अभी भींग रही थीं। ओठ पतले और गुलाबी थे। जबड़ों की हड्डियाँ हल्की-सी उभरी हुई थीं जिनसे कल्लों में हल्के-हल्के सुन्दर गढ़े बन गये थे। आँखें बड़ी-बड़ी, हैरान और रौशन थीं। मस्तक चौड़ा और प्रशस्त। सिर पर उन्होंने बड़े श्रम और सफ़ाई से दस्तार सजा रखी थी। सुन्दर कंठ में सूट से मेल खाती टाई थी और कुल मिला कर उनके मुख पर हल्का-सा स्त्रैण भाव था। जब वे मुस्कराते थे तो उनकी मुस्कान संकोच के पर्दे में लिपटी हुई, बड़ी भली लगती। चेतन को विश्वास हो गया कि जो मादक स्वर-लहरी वह सीढ़ियों पर खड़ा नित्य सुनता रहा है, वह इसी सुन्दर कंठ से निकली होगी। उसका जी चाहा कि किसी प्रकार सामने बैठ कर उनका गाना सुने, किन्तु उसके मुँह से तो शब्द भी न निकल रहा था। आखिर प्रोफ़ेसर साहब ने उसकी मुश्किल हल कर दी, "कहिए कैसे आये?"

"इधर खाना खाने आया करता हूँ।" चेतन ने साहस बटोर कर कहा। "आपका बोर्ड पढ़ा। आपसे मिलने का शौक पैदा हुआ। गाना सुनने और सीखने का मुझे शौक है, इसलिए चला आया।"

प्रोफ़ेसर साहब खुश हुए, क्योंकि वे मुस्कराये। चेतन भी खुश हुआ, क्योंकि उसे उनकी मुस्कान बड़ी भली लगी। कुछ और साहस पा कर उसने पूछा, "आप यहीं गाना सिखाते हैं?"

प्रश्न कुछ निरर्थक-सा था, इसलिए प्रोफ़ेसर साहब केवल मुस्कराये।

वे इतना अच्छा मुस्कराते थे कि चेतन शायद फिर कोई ऐसा ही निर-

र्थक प्रश्न करता, किन्तु उसी समय प्रो० साहब ने अपनी टाई की गिरह को ठीक किया और चेतन को उनके और अपने कपड़ों के अंतर का ध्यान आ गया। वह ज़रा-सा घबरा भी गया। हकलाते हुए उसने पूछा :

"यहाँ सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते हैं?"

"पाँच रुपये।"

चेतन पूछने वाला था कि घर पर सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते हैं? किन्तु उसे यह प्रश्न सर्वथा निरर्थक लगा। वह घर पर कहाँ सीख सकता है? कुछ सोच कर उसने पूछा, "आप किस समय सिखाते हैं?"

"सुबह दस से एक बजे तक, फिर शाम को चार से छः बजे तक।"

चेतन जानना चाहता था कि जो गाना वह सुना करता था वह किसका है? निश्चय ही वह उस भीवर लड़के का तो नहीं हो सकता। वह चाहता था कि वह किसी प्रकार प्रोफ़ेसर साहब का गाना सुने। किन्तु प्रोफ़ेसर साहब चुप थे। बस प्रोफेसर बने बैठे थे। तब चेतन कुछ और न कह सका। वह उठा। चलते-चलते उसने केवल इतना और पूछा कि फ़ीस तो वे पहले ही लेते होंगे। जब उत्तर में प्रोफ़ेसर साहब फिर मुस्कराये तो चेतन ने इतना और कहा कि वह शिमले में कविराज रामदास के साथ आया हुआ है, उन्हीं के साथ काम कर रहा है। पहली को वेतन मिलेगा तो वह उनकी सेवा में उपस्थित होगा।

प्रोफ़ेसर साहब की मुस्कान ज़रा देर तक फैली रही। चेतन स्वभावानुसार 'नमस्ते' और फिर ज़रा घबरा कर 'सत श्री अकाल' कह कर चला आया।

●

४७ चेतन म्यूज़िक कॉलेज से चला तो अकेला न था, बल्कि अगणित राग-रागनियाँ उसके साथ थीं। उसे बचपन से संगीत का शौक था। बचपन में जब वह 'हरबल्लब'* के प्रसिद्ध मेले में भारत के बड़े-बड़े

*जालन्धर का प्रसिद्ध संगीतज्ञ जिसकी याद में मेला लगता है।

संगीताचार्यों के गाने सुनता था तो यद्यपि वह उनके तान-पलटे और अलाप-विलाप न समझ पाता था, किन्तु उसके मन में सहस्त्रों पुलक जाग उठते और वह चाहा करता कि स्वर और लय की इस दुनिया पर उसका अधिकार हो जाय। किन्तु संगीत-शिक्षा पर आज के सभ्य संसार में फ़ीस लग गयी है। या तो पानी की तरह रुपया बहाया जाय, या घर-घाट छोड़ कर चौबीसों घंटे उस्तादों की शागिर्दी की जाय, और रात-दिन उनकी चिरौरी करके कला के समुद्र से दो चुल्लू पानी पिया जाय—दो चुल्लू ही। पूरी प्यास वे बुझा सकेंगे, इसकी आशा आज के गुरुओं से नहीं।

चेतन के पास न पहली बात के लिए पैसे थे, न दूसरी के लिए समय। घर के कामों और पढ़ाई-लिखाई के बाद उसके पास बहुत समय न बचता था। फिर उसे एक ही साथ कई बातों का शौक था। वह एक ही समय अच्छा कवि, लेखक, चित्रकार, संगीतज्ञ, अभिनेता, वक्ता, सम्पादक और न जाने क्या-क्या बन जाना चाहता था।

वास्तव में घर के घुटे-घुटे वातावरण और अत्यधिक दबाव के कारण बचपन ही से उसके अंतर में कुछ जमाव-सा जो था, वह तनिक उन्मुक्त होने पर, सहसा पिघल कर सहस्त्र धाराओं में बह निकलना चाहता था।

जब माँ उन्हें जालन्धर ले आयी थी और पिता का उतना डर न रहा था तो चेतन के सहमे-डरे बचपन ने नवजात मृग-शावक की भाँति पहली बार आँखें खोल कर अपने इर्द-गिर्द देखा था। पर उसकी दशा उस मृग-शावक की-सी थी, जिसकी टाँगें जन्म ही से निर्बल हों और जो अपने मन की समस्त चंचलता के होते भी दुनिया की रंगीनी को मुटर-मुटर तकता हुआ कुलाँचें भरने की इच्छा को मन-ही-मन दबा कर रह जाय!

मुहल्ले में अगणित लड़के नंगे सिर, नंगे शरीर, चंचल, चपल बन्दरों की भाँति दिन भर हुड़दंग मचाते थे; गिल्ली-डंडा, तंग-गोली, ठैया टापू, गेंद-बल्ला, कबड्डी आदि खेलते रहते थे, किन्तु चेतन अपने इन समवयस्कों के खेलों में भाग न ले पाता। वह हृष्ट-पुष्ट न था। यदि उसे कोई पीट

देता अथवा साथ न खेलता तो उसका प्रतिकार उससे न होता। 'खेलाओ नहीं तो खेलने न देंगे!' या 'न खेलेंगे न खेलने देंगे'—इन 'स्वर्ण सिद्धांतों' को दूसरे लड़कों की भाँति वह क्रिया-स्वरूप में परिणत न कर पाता। वह तो बस अलग हो जाता। आहत हो कर उसका अहम् उनसे परे खिंच जाता। जब कभी लड़के उसे न खेलाते तो वह अपने पुराने मकान की कच्ची छत पर जा बैठता और सामने डिप्टी साहब के मकान की खिड़कियों पर बने हुए मोर और तोते देख कर उन्हें उँगली से कच्ची छत पर बनाया करता। कभी-कभी आटे में भिन्न रंग मिला कर वह उससे उन खाकों में रंग भी भर देता। वह इस चित्रकारी में इतना निमग्न हो जाता, कि उसे लड़कों का खेल, अपना अपमान, मुहल्ले का शोर-सब कुछ भूल जाता।

उन्हीं दिनों उसकी मित्रता बराबर की गली के एक अपने ऐसे कलाकार बालक से हो गयी।

यह कलाकार उनके मुहल्ले में पानी भरने वाले दलाराम कहार का लड़का महँगाराम था। ऊँची जात के हिन्दू राम के पवित्र नाम को उन नीचों के नाम के साथ लगाना पाप समझ कर बाप को केवल दला और उसके लड़के को केवल महँगा कह कर पुकारते थे। यह महँगा यद्यपि चेतन से डेढ़-एक वर्ष छोटा था, परन्तु बड़े ऊँचे दरजे का कलाकार था। मिट्टी के ऐसे सुन्दर खिलौने बनाता कि चेतन उसके शिल्प को देख कर मन्त्र-मुग्ध रह जाता। शीघ्र ही उसने उससे मित्रता पैदा कर ली। खाना-खेलना छोड़ कर चेतन उसके साथ घूमता रहता। उसके छोटे-मोटे काम करता ताकि प्रसन्न हो कर वह कला के कुछ अमूल्य भेद उसे बता दे। धीरे-धीरे उसने चिड़ियाँ, तोते, कुत्ता, बिल्ली आदि बनाना सीख लिया। और छोटे-छोटे सुन्दर खिलौने बना कर ऊपर चौबारे को उनसे पाट दिया।

जब वह कुछ और बड़ा हुआ तो इन्हीं कुत्ते-बिल्लियों को रेखाओं में अङ्कित करने लगा। उसकी तख्ती-स्लेट और बाद में उसकी कापियाँ इन्हीं चित्रों से भरी रहतीं।

बचपन ही से उसे कविता का भी शौक़ था। उसकी पाठ्य-पुस्तकों में

जो कविताएँ होती थीं, उन्हें वह कंठस्थ कर लेता था। 'आता है यदि मुझको गुज़रा हुआ जमाना,' 'अरे प्यारे लड़को बहादुर बनो तुम !' 'तारीफ़ उस खुदा की जिसने जहाँ बनाया' और दूसरी कई ऐसी कविताएँ उसे ज़बानी याद थीं। वह घर में अपने दादा, माँ, भाभी अथवा भाई के सामने अभिनय के साथ उन्हें सुनाया करता था।

वह पाँचवीं श्रेणी में पढ़ता था जब पहली बार 'आर्य भजन पुष्पांजलि' प्रकाशित हुई। स्कूल के वार्षिकोत्सव पर चेतन ने उसे भजन-मंडली के मुखिया के हाथ में देखा और फिर किसी-न-किसी तरह पैसे जोड़ कर वह एक प्रति खरीद लाया। वह भजन पुष्पांजलि उसे इतनी अच्छी लगी कि उसके प्रसिद्ध भजन उसने एक दूसरी कापी में बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखे। इसके बाद प्रति वर्ष भजन पुष्पांजलि का परिवर्द्धित संस्करण निकलता रहा और प्रति वर्ष वह उसे खरीद कर अपनी उस कापी में सुन्दर भजनों की वृद्धि करता रहा। वह उन्हें कंठस्थ करता रहा और बिना इस बात की चिन्ता किये कि उसका स्वर अच्छा है या नहीं, वह उन्हें गाता भी रहा।

धीरे-धीरे वह उन भजनों की तर्ज़ पर अपने भजन लिखने लगा। उसे मात्राओं अथवा छंदों का ज्ञान न था। बस गा कर ही वह देख लेता था और तुक के साथ तुक मिला लेता था।

जब वह ज़रा बड़ा हुआ तो कविता के साथ-साथ उसके मन में संगीत का भी शौक पैदा हो गया। वास्तव में जालंधर के हर लड़के को किसी-न-किसी हद तक संगीत का शौक अवश्य होता है। चेतन संगीतज्ञ तो क्या बनता (दोआबा के दूसरे तरुणों की तरह) बैतबाज बन गया और पंजाबी बैत* लिखने लगा। जालन्धर के लड़कों में कविता और संगीत की रुचि वास्तव में वहाँ प्रति वर्ष होने वाले 'हरबल्लब' के संगीत मेले के कारण होती है। हरबल्लब के संगीत-सम्मेलन में गाये जाने वाले पक्के गाने उसके अन्तर को झंकृत करने पर भी उसकी समझ से बाहर की चीज़ थे, इसलिए

*बैत पंजाबी भाषा में चार पंक्तियों की कविता को कहते हैं। यह हिन्दी के चौपदों की भाँति होती है।

वह दूसरे बेगिनती युवकों की भाँति संगीतज्ञों के मंडप को छोड़ 'पोने'† के बैतबाज़ों में जा शामिल होता। बैत सुनते-सुनते वह स्वयं बैत कहने लगा। उसे एक-दो बार पंजाबी कवि-सम्मेलनों में पुरस्कार भी मिले।

वह तनिक बड़ा हुआ तो उसका झुकाव उर्दू कविता की ओर हो गया। (हिन्दी कविता को तब दोआबा में कोई न जानता था। उर्दू पहली श्रेणी से पढ़ायी जाती थी और उर्दू कविता का रिवाज़ था।) बात यह थी कि कविता का शौक मन में उत्पन्न होते ही वह कवि-सम्मेलनों में जाने लगा और जालन्धर में पंजाबी के कवि-सम्मेलनों के साथ उर्दू मुशायरे भी होते थे। वह उधर भी कभी-कभी चक्कर लगाने लगा। वहाँ का अपेक्षाकृत सभ्य तथा सुसंस्कृत वातावरण उसे अच्छा लगा और उसके मन में उर्दू में शेर कहने का शौक पैदा हुआ और वह धड़ाधड़ ग़ज़लें लिखने लगा। इस प्रकार उसका संगीत-प्रेम जो हरबल्लब के मेले में आरम्भ हुआ था, उसी कारण काव्य-प्रेम में परिणत हो गया।

किन्तु उसका यह शौक मरा न था। इसी शौक के अधीन वह तंगदस्ती में भी ३५ रुपये का बाजा ख़रीद लाया था और न केवल उसने चन्दा को गाने सिखाये थे, वरन् स्वयं भी उसने दो-एक महीने पंडित नत्थूराम से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी और संगीत विद्या पर दो-चार पुस्तकें ख़रीद क़र पढ़ डाली थीं।

प्रो० सिंह से मिलने पर उसने सोचा कि यहाँ से वह यथेष्ट निपुणता प्राप्त करके जायगा। लाहौर जा कर गंधर्व महाविद्यालय में दाखिल हो जायगा। पहले स्वयं निपुणता प्राप्त करेगा, फिर चन्दा को निपुण बनायगा। बस और क्या चाहिए। वह गीत लिखेगा, वह गायगी। जीवन का सब कलुष, सारी मलिनता, समस्त कटुता, आत्मा की निमल निर्झरनी में शराबोर

---

† पोना देवी तालाब के उस भाग को कहते हैं जिसे चार दीवारों से घेर कर स्त्रियों के स्नान को सुरक्षित किया गया है। मेले के दिनों में वहीं बैतबाज़ी होती है।

हो कर धुल जायगी। बला से उन्हें धन प्राप्त न हो, संगीत की अमूल्य निधि तो उन्हें प्राप्त होगी। वे नदी पर जाया करेंगे, रावी के तट पर घूमा करेंगे। लहरों की कल-कल, छुल-छुल वाद्य-यन्त्रों का काम देगी और वे देश, काल और सुधि के बन्धनों को तोड़ कर, विसुध और तन्मय हो कर, स्वरों के पंख लगा कर विशाल, विस्तीर्ण अनन्त प्रसार में उड़ते फिरेंगे।

●

४८ संध्या का समय था और पश्चिम में अस्त होता हुआ सूर्य तेज़ आग से चमकते हुए पिघले सोने के से रंग का हो रहा था। लगता था जैसे किसी अज्ञात, अदृश्य आतप ने साँझ के उस सोने को पिघला दिया है और उसका पीला रंग लाल होता-होता आँच की तीव्रता में उन्नाबी लग रहा है। जाकू के ऊपर बादल गुलनार हो रहे थे और माल की दुकानों के कंगूरों पर उस जलते हुए सोने का अन्तिम प्रतिबिम्ब झलक रहा था। बगल में अपना नया खरीदा सितार दबाये, चेतन रिज पर से होता हुआ माल की ओर जा रहा था। सितार पर गहरे नीले रंग की खादी का ग़िलाफ़ चढ़ा हुआ था, जिसके सिरे पर लाल रंग का फूल बना था। ग़िलाफ़ का नेफ़ा और डोरी भी फूल ही के रंग की थी। पिछले दो महीने से दस रुपये मासिक अपने बड़े भाई को और सात रुपये ढाबे की भेंट करके शेष जो बचता था, वह चेतन म्यूज़िक कॉलेज की भेंट करता आ रहा था। उसने एक दिलरुबा ख़रीद कर कॉलेज में रख दिया था कि उसके बदले में प्रोफ़ेसर सिंह उसे अपने हारमोनियम पर अभ्यास कर लेने दिया करें। अपने तीसरे महीने के वेतन से उसने यह सितार ख़रीद लिया था और जो पैसे बचे थे, उनसे ग़िलाफ़ बनवा लिया था। सारा महीना कैसे बीतेगा, इस बात की उसे चिन्ता न थी। कलाकार के गर्व से सिर उठाये वह चला जा रहा था। उसे लग रहा था, जैसे उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे, हवा में पड़ रहे हैं। उस काली, कठोर सड़क से वह ऊपर उठ गया है और राग-भीनी साँझ के उस रँगीले सौन्दर्य में उड़ा जा रहा है।

उस समय ही क्यों, प्रायः महीने भर से—प्रायः उसी क्षण से जब उसने पाँच नम्बर की सीढ़ियों पर खड़े हो कर सुना था—कौन देश गया पिया मोरा बालम रे—वह धरती से ऊपर उठ गया था। उसके क्षण उन्मन और एकाकी न रहे थे। उसके स्वप्न उसे मिल गये थे।

उसे सपनों ही की आवश्यकता थी—सदैव सपनों ही की आवश्यकता रही थी—फिर वे स्वप्न चाहे नीला का प्रेम पाने के हों; चन्दा के साथ सफल-सुखद जीवन व्यतीत करने के हों; महान् चित्रकार, वक्ता अथवा लेखक बनने के हों; या फिर एक बार पुनः कॉलेज में प्रविष्ट होकर लाहौर के विद्यार्थी-जीवन का आनन्द लूटने के हों। वे स्वप्न ही उसका जीवन थे, जीवन की स्फूर्ति थे। उसी के क्यों, कदाचित् मानव-मात्र के जीवन की स्फूर्ति यही स्वप्न हैं। शास्त्र कहते हैं, जीवन सपना है, किन्तु जीवन शायद, सपना नहीं। जीवन तो सड़क है—काली कठोर और ऊबड़-खाबड़! और स्वप्न वह स्फूर्ति है जो मानव को इस सड़क की कठोरता, इसकी कालिमा, इसकी कंटकाकीर्णता भुला कर इससे ऊपर उठा देती है और मानव हवा में तैरता हुआ-सा अनुभव करता है। ये स्वप्न जितने रंगीन होते हैं, उतनी ही लगन से वह इस कठोर, काली, ऊबड़-खाबड़ सड़क पर भागा चला जाता है।

चेतन के स्वप्न भी उन दिनों आषाढ़ के बादलों की भाँति उमड़े आते थे और चेतन की गति भी इनके साथ तीव्र हो रही थी। काम करने में अब उसका जी लगता था। वह प्रायः रोज़ पुस्तक का एक परिच्छेद लिखता और उसका संशोधन करता आ रहा था। वह इतनी तेज़ी से काम कर रहा था कि पुस्तक लगभग लिखी जा चुकी थी। उसी तेज़ी से वह संगीत की शिक्षा भी ग्रहण कर रहा था। स्वर-अध्याय को पार करके और विभिन्न सुरगमों को पकाने के बाद अब उसने एक-दो रागनियों के बोल भी सीख लिये थे। किन्तु उसके स्वप्न सदा की भाँति उससे कहीं आगे भाग रहे थे। यही कारण था कि यद्यपि उसका संगीत सम्बन्धी ज्ञान अभी न होने के बराबर था और यद्यपि उसका हाथ अभी ठीक ढंग से हारमोनियम के पर्दों पर चला भी न था, किन्तु उसने दिलरुबा और सितार खरीद लिये थे और तबला

लेने की चिन्ता में था। उसके पास धन का अभाव था, नहीं उसका बस चलता तो वह सारे-के-सारे बाजे एक ही बार ख़रीद लेता।

ये दोनों बाजे ख़रीद लेने पर चेतन ने बस नहीं की। दिलरुबा के लिए प्लाईवुड का खोल और सितार के लिए यह ग़िलाफ़ उसने बनवाया। दिलरुबा तो ख़ैर कॉलेज ही में पड़ा रहता था, किन्तु यद्यपि उसे सितार ले कर बैठना भी न आता था, वह प्रति दिन संध्या के समय उसे ले कर कॉलेज जाता और जाते अथवा आते समय सितार को बग़ल में दबाये माल अथवा लोअर बाज़ार का एक चक्कर लगाना न भूलता। इसके अतिरिक्त वह सारा दिन मिज़राब पहने रहता और जब किसी से बात करता तो अनजाने ही में मिज़राब वाली उँगली एक-दो बार अवश्य दिखाता।

यह मिज़राब छोटी थी, या चूँकि उसने पहले कभी न पहनी थी, इस-लिए इससे चेतन की उँगली पर निशान बन गया था, पीड़ा होने लगी थी और अब वह मिडिल बाज़ार के साज़-वाले की दुकान पर जा रहा था कि अपेक्षाकृत कुछ बड़ी मिज़राब ले आये।

शिवालय के पास से हो कर चेतन मिडिल बाज़ार में दाखिल हुआ। नानबाइयों की दुकानों से धुआँ उठ रहा था। संध्या के धूमिल प्रकाश को और भी धूमिल बनाने वाले उस धुएँ में कुछ हातो अपने मैले गंदे शरीरों पर कीचड़-से चीथड़े लपेटे खाना खा रहे थे! चेतन अपने ध्यान में मग्न पथरीली गली में चलता-चलता वाद्य-यन्त्रों वाले की दुकान पर पहुँचा और उसने एक मिज़राब माँगी।

उस समय वहाँ एक और व्यक्ति चेतन ही की तरह पुराना ओवरकोट पहने खड़ा था। चेतन के सामने उसने भी मिज़राब खरीदी। चेतन ने उस व्यक्ति को एक नज़र देखा। उसके सिर पर एक तुर्की टोपी थी, किन्तु गंजेपन की हद को पहुँचे हुए उसके मस्तक को छिपाने में वह सर्वथा अशक्त थी। उसके गले में मोटी मलमल की चुन्नटदार कमीज़ और टाँगों में मैला-सा पायजामा था। 'कोई पहुँचा हुआ कलाकार है'—चेतन ने मन-ही-मन

सोचा। प्रो० सिंह सितार के उतने विशेषज्ञ न थे, यह उसने सितार खरीदते ही जान लिया था और यद्यपि चेतन का दिलरुबा भी उन्होंने बड़ी शान से अपने कॉलेज में रख छोड़ा था, किन्तु उसे बजाने का अवसर कभी न आया था। उनके गले में रस था और हरमोनियम वे बड़ी निपुणता से बजा लेते थे, बस इससे अधिक वे कुछ न जानते थे। इसलिए चेतन बहुत दिनों से किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में था जो उसे सितार की शिक्षा दे सके। इस कलाकार को देखते ही उसने तत्काल फ़ैसला कर लिया कि वह अवश्य उससे सितार बजाना सीखेगा। जब वह व्यक्ति मिज़राब ले कर चलने लगा तो चेतन ने उसके साथ चलते हुए पूछा, "आप भी सितार का शौक़ रखते हैं?"

कलाकार के ओठों पर थकी-सी मुस्कान फैल गयी, "जी योंही कुछ बजा लेता हूँ!

चेतन ने समझा अपरिचित कलाकार-सुलभ-विनम्रता से काम ले रहा है। उसने अपना परिचय दिया, प्रो० सिंह से अपने सम्बन्ध का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि यदि वे अपना निवास-स्थान दिखा दें तो वह कभी-कभी आ जाया करेगा। और जब उस अपरिचित कलाकार ने किसी प्रकार की आपत्ति प्रकट न की तो चेतन उसी तरह बगल में सितार लिए उसके साथ चल पड़ा।

मिडिल बाज़ार को पार करके वे माल पर चढ़े और वहाँ से स्टेशन को जाने वाली सड़क की ओर मुड़ गये। सूरज कब का छिप गया था। अंधकार में बिजली के लैम्प किसी विपन्न की आशाओं-से द्युतिमान थे। कलाकार चुप था। चेतन भी चुप था। वातावरण भी चुप था। उस बढ़ते हुए अंधकार में चेतन को दिशा अथवा मार्ग का कोई ज्ञान न रहा। उसे लगा, जैसे वे कई मील चले आये हों, जैसे उन्हें चलते घंटों बीत गये हों। उसका जी वापस होने को व्यग्र हो उठा। यदि उसे ज्ञात होता, अपरिचित कलाकार इतनी दूर रहता है तो कभी न आता। उसे तो दस बजे घर पहुँच जाना चाहिए। पर अब इतनी दूर आ कर वापस लौटने को उसका मन न हुआ। वह चुपचाप

चलता गया।

सीधी सड़क से हट कर कई दूसरी सड़कों और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों को पार करके वह अपरिचित उसे जिस कमरे में ले गया, वह किसी कोठी का किचन (रसोई घर) था—अत्यन्त गंदा और दुर्गन्ध भरा। पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध, अँगीठी के जल चुकने के बाद भी, अभी तक कमरे में बसी हुई थी। चेतन का दम घुटने-सा लगा। कुछ क्षण बाद उसे ज्ञात हुआ कि रसोई-घर में केवल पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध ही नहीं, बल्कि न जाने कितने प्रकार के मांस-मछली की दुर्गन्ध भी मिला है—इस प्रकार कि उसका विश्लेषण करना कठिन है। चेतन को म्यूज़िक कालेज के बराबर वाले रेस्तोराँ की याद हो आयी। उसके पास से गुज़रने पर भी उसके किचन से ऐसी ही बू नाक में प्रवेश कर दम घोंटने लगती थी। किचन की दशा देखने पर चेतन को लगा जैसे साहब को कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता कि जो पदार्थ धुली-धुलाई प्लेटों में लगा, अत्यन्त स्वादिष्ट हो कर उसके सामने पहुँचता है, वह अपने पीछे कितनी दुर्गन्ध छोड़ आता है। चेतन का अपना बचपन अत्यन्त स्वच्छ वातावरण में बीता था। उनका रसोईघर अत्यन्त साफ़-सुथरा था। फ़र्श धुला, चूल्हा-चौका पुता और बर्तन टोकरे में पड़े चमचमाते रहते थे। स्वच्छता की सुगन्ध-सी वहाँ से आती रहती थी। वह क्षण भर भी उस किचन में रहना न चाहता था, किन्तु जब उस कलाकार ने एक कोने में पड़े हुए मैले-से सन्दूक की ओर संकेत किया तो वह बिना कुछ कहे विमूढ़-सा उस पर बैठ गया।

तब वह कलाकार वहीं एक खूँटी पर टँगा हुआ एक छोटा-सा धुआँ-सा कछुआ उठा लाया जिसकी चिकारियाँ टूटी हुई थीं और जिनके तूम्बे पर धुएँ की इतनी मैल जमी हुई थी कि असली रंग ही लुप्त हो गया था। तब वहीं एक मैले-से स्टूल पर बैठ कर कलाकार ने चेतन को सितार का पहला पाठ पढ़ाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

चेतन की समझ में कुछ न आया। उसने पूछा, "आप क्या बाजा

रहे हैं?"

"मेरी भैंस के डंडा क्यों मारा!" कलाकार ने सितार बजाते हुए गम्भीरता से कहा।

चेतन स्तम्भित-सा उसके मुँह की ओर देखने लगा।

"हमारे उस्ताद ने हमें पहले यही सिखाया था," पहुँचे हुए कलाकार ने कहा, "ज़रा अपना सितार निकालो।"

चेतन का जी वहाँ से भाग जाने को हो रहा था। पर उसने अपना सितार निकाला। तब कलाकार ने चेतन को बताया कि तार पर मिज़राब की चोट से 'दा' कब बजता है, 'रा' कब 'दिर' कब, और उसने बजाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

और गाया

मेरी भैंस के डंडा क्यों मारा!

चेतन ने यह पाठ काग़ज पर लिख लिया, एक-दो बार सितार पर बजा भी लिया, किन्तु उसे लगा कि यदि वह कुछ और देर उस रसोई घर में बैठा तो उसके सिर में असह्य पीड़ा होने लगेगी। उसकी कनपटियों में दर्द होने लगा था और जी घबरा रहा था, इसलिए उसने जाने की आज्ञा माँगी।

किन्तु उस समय वह कलाकार, जो न जाने साहब का बैरा था, जमादार था, या धोबी, तन्मय हो कर सितार बजाने में लीन था। ख़ानसामा फ्राइंग पैन में जाने किस चीज़ को छौंक रहा था कि धुएँ से चेतन की आँखों में पानी निकल आया और वह खाँसने लगा। बेबसी की दृष्टि से उसने उस कलाकार की ओर देखा—आँखें बन्द थीं और मिज़राब तारों पर चल रही थी।

अन्तोगत्वा जब उस कलाकार ने गाना समाप्त करके आँखें खोलीं तो चेतन ने भरे हुए गले से फिर जाने की आज्ञा चाही। कलाकार अपने उस कछुए को साथ ही लिए हुए किचन से बाहर निकल आया और चेतन को अपने निवास-स्थान पर ले गया, जो अत्यन्त अँधेरी, सील भरी, दिये की लौ से प्रकाशित, उस कोठी के सर्वेण्टस क्वार्टरज़ की एक कोठरी थी—नौकरों

के ये क्वार्टर एक-दो मंज़िले छप्पर की सूरत में थे। इस छप्पर में तीन-चार कोठरियाँ नीचे और तीन-चार ऊपर थीं। लकड़ी की एक हिलती-सी सीढ़ी से चढ़ कर उस कलाकार के पीछे-पीछे चेतन ऊपर उसकी कोठरी में पहुँचा। और क्योंकि उसे वापस जाने का मार्ग न ज्ञात था और उस कलाकार को उस जैसे प्रशंसक के आगे अपनी कला के प्रदर्शन का कदाचित पहला ही अवसर मिला था, इसलिए उस सील भरी कोठरी के मद्धिम प्रकाश में एक पुरानी-सी चटाई पर बैठ कर चेतन को दो-चार गतें और सुननी पड़ीं। उस के हृदय में उस समस्त वातावरण के प्रति कुछ ऐसी घृणा उत्पन्न हो रही थी कि उस समय कलाकार ने क्या गाया, उसने कुछ भी नहीं सुना। उसका जी तो उस समय उस कलाकार को एक-दो बार झकझोर, उसके कछुए को उसके सिर पर पटक, उस कोठरी, उस किंचन, उस घुटन, उस अंधकार से एक दम भाग कर बाहर की स्वच्छ, स्वच्छन्द वायु में साँस लेने को व्यग्र हो रहा था।

किन्तु जब उसे वह स्वच्छ वायु साँस लेने को मिली तो न जाने क्या बजा था। सड़क पर दूर-निकट एक भी व्यक्ति दिखायी न देता था। आकाश पर से चाँद की एक फाँक धूमिल प्रकाश फेंक रही थी। चेतन को लगा जैसे वह उसकी विवशता पर वक्र हँसी हँस रही है और समस्त तारे उस हँसी में योग दे रहे हैं। उसकी आँखों में आँसू छलक आये और उसके जी में आया कि सितार को पूरे ज़ोर से किनारे के पत्थर पर पटक कर टुकड़े-टुकड़े कर दे और घुमा कर खड्ड में फेंक दे, ज़ोर-ज़ोर से उस पहुँचे हुए कलाकार को गालियाँ दे और सरपट घर की ओर भागे, लेकिन तभी उसके सामने छः महीने पहले की एक घटना घूम गयी, जब उसने स्वयं उस कलाकार का-सा व्यवहार किया था।

वह चंगड़ मुहल्ले में रहता था और उसकी कुछ कहानियाँ उसके दैनिक पत्र में छपी थीं। उन्हीं दिनों एक प्रातः एक युवक उससे मिलने आया।

चेतन उस समय कमरे की सफ़ाई करके दातौन मुँह में दबाये मेज़ के काग़ज़ ठीक कर रहा था। जब उसे ज्ञात हुआ कि वह उनके समाचार-पत्र का प्रतिनिधि है, उसे कविता और कहानी लिखने का शौक है और चेतन की नयी कहानी उसने पढ़ी है (जो उसे बहुत अच्छी लगी है) तो चेतन ने अपनी पुरानी कहानियों का उल्लेख किया। वह अपनी फ़ाइल उठा लाया, दातौन उसने एक ओर रख दी और एक कहानी सुनाने लगा। इसके बाद बिना अपने सुनने वाले के भावों को जाने, वह एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी कहानी सुनाता गया था। जब उसकी सब लिखी हुई कहानियाँ समाप्त हो गयीं तो दो बजे थे और बेचारे पत्र-प्रतिनिधि के ओठों पर भूख-प्यास के कारण पपड़ियाँ जम गयीं थीं। उस प्रतिनिधि की आकृति चेतन की आँखों में घूम गयी और उसके आँसू एक हल्की-सी मुस्कान में बदल गये। फिर वह ज़रा हँसा और फिर उस सड़क पर खड़े-खड़े उसने अपनी और उस कलाकार दोनों की मूर्खता पर और भी ज़ोर से ठहाका लगाया और सितार को उसी प्रकार बग़ल में लिये हुए चल पड़ा।

जब वह घर पहुँचा तो रात बहुत बीत चुकी थी। वह इतना थक गया था कि वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया। चारों ओर शांति थी। चेतन ने चाहा, किवाड़ खटखटाये, किन्तु उसे साहस न हुआ। कल्पना-ही-कल्पना में बीबी जी के मस्तक के तेवर उसकी आँखों के सामने घूम गये। वह कई बार उठा और कई बार बैठा, पर उसे किवाड़ खटखटाने का साहस न हुआ। फिर न जाने कब नींद ने उस पर अधिकार जमा लिया और सीढ़ियों के कोने में, दरवाज़े और दीवार का सहारा लिये, टाँगों को सिकोड़ कर ओवर कोट में छिपाये वह सो गया।

●

४८ यद्यपि वह सारी रात बाहर शीत में पड़ा ठिठुरता रहा था, किन्तु इससे उसके संगीत-प्रेम में किसी प्रकार की कमी न आयी थी। कलाकारों को प्रायः ऐसी परिस्थितियों का सामान करना पड़ता है, उसने

मन में सोचा था और संगीत में निपुण होने का निश्चय उसके हृदय में दृढ़ से दृढ़तर हो गया था।

स्वर का यह जादू भी कैसा जादू है! लय और तान में बँधा हुआ सुन्दर कंठ से निकला स्वर न जाने कैसा मन्त्र फूँक देता है कि मनुष्य तन्मय हो कर, सुध-बुध बिसरा कर, मन्त्र-मुग्ध-सा हो जाता है। चेतन चाहता था, उसके स्वर में भी ऐसी ही मोहिनी उत्पन्न हो जाय और वह भी अपने स्वर की तरलता से श्रोताओं को मुग्ध कर सके। कैसा होगा वह दिन जब वह तन्मय हो कर जायगा और श्रोता उस स्वर के सम्मोहन से विमुग्ध सुनेंगे! उस दिन को लाने के लिए वह कटिबद्ध हो गया।

उसकी इस सनक में सहयोग देने और उसके उत्साह को दुगना करने के लिए एक साथी भी उसे मिल गया—दुर्गादास।

एक दिन चेतन इतना उदास और विक्षुब्ध था कि कमरे में बैठना उसके लिए दुष्कर हो रहा था। बात कुछ भी न थी। सुबह-सुबह सामने के मकान में रहने वाले बाबू चरणदास से उसकी झपट हो गयी थी। वे मिलिट्री एकाउण्ट्स में हेड क्लर्क थे, उनके अति कुरूप काली-कलूटी दो लड़कियाँ थीं, इस पर भी बाबू साहब ने कुदृष्टि से शायद उनकी रक्षा करने के हेतु बरामदे में मोटी-मोटी चिकें लगा रखी थीं, चिकों के पीछे पर्दे थे और वे स्वयं आठों पहर चौकस बने रहते थे।

उनकी इस सन्देहशीलता को देखते हुए चेतन जब व्यायाम करता था तो अपने कमरे के किवाड़ लगा लेता था। किन्तु कमरे में कोई वातायन नहीं था (और खिड़की भी क्योंकि उनके बरामदे के सामने खुलती थी, इसलिए वह उसे भी बन्द कर लेता था) इस कारण कई बार उसका दम घुटने लगता था और वह कभी-कभी साँस लेने को किवाड़ खोल लेता था। उस सुबह जब उसका दम घुटा, उसने उसी प्रकार मालिश किये, लँगोट लगाये हुए साँस लेने को किवाड़ ज़रा से खोले। तभी बाबू चरणदास ने अंग्रेज़ी भाषा में उसे डाँटा कि वह क्यों यों अपने शरीर की नुमाइश कर रहा है।

चेतन ने स्तम्भित हो सहसा किवाड़ बन्द कर लिये, पर किवाड़ लगाते ही क्रोध से उसका तन-मन जल उठा। शब्द-कोष की सहायता से उसने अंग्रेज़ी में एक ज़ोरदार पत्र बाबू चरण दास को लिखा कि उन्होंने भ्रम-वश उस पर ऐसा आरोप लगाया है और उसने तो केवल दम घुट जाने के कारण किवाड़ तनिक-से खोले थे, उसने उनके उस व्यंग्य पर आपत्ति की और उनसे अपने शब्द वापस लेने को कहा। बाबू साहब ने उससे क्षमा माँग ली, किन्तु उन्होंने कविराज जी से शिकायत कर दी और कविराज जी ने अन्दर से एक पर्दा ला कर चेतन के दरवाज़े पर डाल दिया।

यह घटना प्रकट में बड़ी साधारण थी, पर चेतन के अति भावप्रवण मन पर इसका बड़ा प्रभाव हुआ। उसे अपनी हीनता का एक बार फिर आभास मिला। किन्तु इस बार उसके पाँव नहीं उखड़े। कविराज जी ने जब मीठे शब्दों में उससे पर्दा गिरा कर व्यायाम करने के लिए कहा तो वह मन-ही-मन हँस दिया।

परिस्थितियों को उनके यथार्थ रूप में लेना उसने सीख लिया था। इस घटना को उस परिस्थिति में घटने वाली एक अति साधारण घटना समझ कर उसने पूर्ववत् काम भी करना आरम्भ कर दिया था।

आरम्भ तो कर दिया था, किन्तु प्रयास करने पर भी वह उसे आगे न बढ़ा सका था। जब वह कविराज जी के साथ दरवाज़े पर पर्दा लगा रहा था तो क्षण भर को वे पड़ोसी महाशय बरामदे में आये थे और चेतन की निगाहें उनसे चार हुई थीं। कुटिल चातुर्य के साथ विजय के उल्लास की एक हल्की-सी रेखा उनकी आँखों से निकल कर चेतन को उनके ओठों पर फैलती हुई दिखायी दी थी। यही रेखा काम करते-करते अनजाने ही उसके सामने आती। एक बेबस क्रोध से पीड़ित हो कर वह मन-ही-मन घायल साँप की तरह बल खाने लगता। सिर को झटक उस आकृति को मस्तिष्क के पर्दे से हटा कर, वह काम बढ़ाने का प्रयास करता, पर घूम-फिर

कर वही विजय के उल्लास से आच्छन्न उनकी आकृति उसके सामने उभरने लगती—वही कुंचित, कुटिल, हास-व्यंग्य-युक्त मुस्कान ! और एक तीव्र आक्रोश से भर कर वह चाहता कि उस प्रसन्न मुख पर तेज़ छुरे से ऐसी गहरी लकीर खींच दे कि वह प्रसन्नता एक झुलसे हुए फूल की भाँति मुरझा कर स्याह पड़ जाय। कल्पना-ही-कल्पना में चेतन के आक्रोश ने कई बार वह गहरा घाव वहाँ बनाया, पर वह आकृति रक्त-स्राव के कारण श्वेत और फिर काली पड़ने के बदले और भी प्रसन्न, और भी उत्फुल्ल बन-बन उसके सामने आयी।

तब सिर को एक ज़ोर का झटका दे और काग़ज़ कलम, दावात पटक कर चेतन उठा, उसने किवाड़ लगाये और चल पड़ा। किधर जाय ? वह निश्चय न कर सका। निरर्थक और निरुद्देश्य माल पर घूमने को उसका मन न हुआ। वह चुपचाप कमेटी के नल के निकट नीचे को जाने वाले मार्ग के जँगले पर जा खड़ा हुआ। कितनी देर तक वहीं कोहनी टिकाये अन्यमनस्क खड़ा रहा। नीचे घाटी में चीड़ के वृक्षों को अनिमेष तकता रहा। ऊपर से आने वाला नाला सूखा पड़ा था। उसे देख कर सहसा उसे विचार आया कि नीचे, कहीं बहुत नीचे उपत्यका में, जहाँ पहाड़ों से रिस-रिस आने वाली पानी की धाराएँ मिल कर कल-कल बहती सरि का रूप धर लेती होंगी, वह अवश्य बह रहा होगा। 'तो क्यों न आज वह नीचे खड्ड में जाय,' उसने सोचा, 'कुछ क्षण के लिए नीचे द्रोणी की गोद में लेटे किसी एकाकी झरने के किनारे, किसी पत्थर या चट्टान पर जा बैठे; प्रकृति के विशाल सुख भरे अंक में क्षण भर के लिए अपने आप को विसर्जित कर दे; पत्तों की 'मर-मर' और पानी की 'कल-कल' अपने संगीत से उसके मन का समस्त कलुष, सारा क्रोध, सब आक्रोश हर दे; उसके दुःख को, हीनभाव को मिटा दे; एक स्वप्निल तन्द्रा, एक तन्द्रिल व्यामोह, शीतल ठंडे लेप सरीखा उसके शरीर को परिप्लुत कर, उसके सारे घावों को भर दे !....और वह नीचे की ओर चल पड़ा।

इतने दिन उसे यहाँ आये हो गये थे, किन्तु वह कभी नीचे की ओर

न उतरा था। उसे उधर जाने का कभी ध्यान न आया था। उत्साह से भरे उसके पग जब भी उठे थे, ऊपर ही की ओर उठे थे। नीचे की ओर भी कुछ है, उसने कभी न जाना था। चलते-चलते चेतन को ज्ञात हुआ कि 'रुल्दू भट्टा' उतना ही नहीं जितना वह समझता था। आठ-दस मकान और उनसे घिरा हुआ एक चौक—उस स्थान की कुल परिधि को वह इतने तक ही सीमित समझता था। किन्तु उस निचले मार्ग पर चलते हुए उसने देखा—मकानों की दो पंक्तियाँ उस मार्ग के दोनों ओर भी बनी हुई हैं। दायीं ओर की पंक्ति कुछ ऊपर को है। और बायीं ओर की कुछ नीचे को। चेतन अपने ध्यान में मग्न चला जा रहा था कि उसे एक बड़ा मंडुवा दिखायी दिया—बिलकुल वैसा ही जैसा पुराने ज़माने में सफ़री थीयेट्रों के लिए बनाया जाता था। अंतर केवल इतना था कि यह पक्का था उस मंडुवे के परे मकानों की पंक्तियाँ समाप्त हो गयी थीं और मार्ग नीचे खड्ड को उतर जाता था। मंडुवे को देख कर चेतन को बड़ा कुतूहल हुआ और नीचे की ओर जाने के बदले वह उसके अन्दर चला गया। उसने देखा कि नीचे एक बहुत बड़ा हाल है और वह उसकी बालकोनी में खड़ा है।

उस हाल का नाम (जैसा कि चेतन को बाद में पता चला) 'विश्वकर्मा हाल' था। उसके बनाने वाले अपने आप को देवराज इन्द्र के उस प्रवीण शिल्पी का वंशज बताते थे, जिसने भक्त सुदामा के घर पहुँचने से पहले, भगवान कृष्ण की इच्छानुसार उसके झोपड़े की जगह एक अपूर्व भव्य प्रासाद निर्मित कर दिया था। यह और बात है कि विश्वकर्मा के ये वंशज इस कलि-काल में निरे बढ़ई हो कर रह गये थे। १९१४ के महायुद्ध में जब बढ़इयों में से कुछेक को सरकारी ठेके मिल गये और उन्होंने राशि-राशि धन संचित किया और धन के साथ-साथ उसकी जाति-चेतना भी बढ़ी तो वे विश्वकर्मा के वंशज बन गये। अपनी जाति को संगठित करके उन्होंने एक समाज की नींव रख दी और फिर उस समाज के मिल बैठने के लिए एक भवन का भी निर्माण हो गया।

हाल में जाने का मार्ग नीचे से था। ऊपर का मार्ग तो एक छोटी-

सी बालकोनी में खुलता था जो चारों ओर बनी हुई थी। इसी ऊपर के मार्ग से हो कर चेतन बालकोनी में पहुँचा। यह मार्ग साधारणतः महिलाओं के लिए था जो वार्षिक अधिवेशन पर बालकोनी में बैठ कर तमाशा देखती थीं। किन्तु यह तमाशा तो साल में एक बार होता था, इसलिए बालकोनी खाली पड़ी थी, उसमें एक ओर को दो टूटी चारपाइयाँ खड़ी थीं और कुछ लकड़ी का टूटा-फूटा फ़र्नीचर पड़ा था। इस बालकोनी के साथ दक्खिन की ओर दो कमरे बने हुए थे। उत्सुकता चेतन को वहाँ ले गयी। एक कमरे में नंगे शरीर, केवल एक साफ़ा बाँधे एक महाशय चूल्हे में फूँकें मार रहे थे। चेतन के पैरों की चाप सुन कर उन्होंने सिर उठाया। मँझला क़द, छरहरा शरीर, गोरा रंग, पीठ और वक्ष पर हल्के-हल्के बाल, उम्र शायद कम, किन्तु देखने पर बत्तीस-पैंतीस की, कल्ले धँसे, चुंधी आँखों के गिर्द गढ़े और उन पर चश्मा—चेतन को देख कर नमस्कार के रूप में तनिक-सा हँसते हुए वे उसके पास आये तो चेतन ने देखा कि उनके मुख पर अभी से झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं और इस हँसी में एक विचित्र प्रकार का नम्र-भाव है।

"बैठिए, बैठिए!" उन महाशय ने चारपाई की ओर संकेत करते हुए कहा।

चेतन वहाँ बैठ गया और फिर दो घंटे तक बैठा रहा। जब वह उन महाशय के खाना पकाने, नहाने, खाने, गाना सुनने, सुनाने, कपड़े पहनने, किवाड़ बन्द करके दफ़्तर चलने तक साथ-साथ बातें करने के बाद, कमेटी के नल पर उनका साथ छोड़ कर, घर आया तो वह अपना प्रातः का अपमान और उसके फल-स्वरूप प्रकृति के अंक में जा सोने की बात सर्वथा भूल चुका था। एक नया उत्साह, एक नयी स्फूर्ति से उसके पाँव जैसे धरती पर न पड़ रहे थे।

●

५० दुर्गादास जन्म से बढ़ई थे, किन्तु अपने जन्मजात कर्म को छोड़ कर, मैट्रिक पास कर के, वे शिमले के बड़े डाकखाने में क्लर्क

हो गये थे। क्योंकि वे अपने साथियों से अधिक पढ़े-लिखे थे, इसलिए उस सभा के अवैतनिक उप-मन्त्री भी बन गये और सभा ने उनके रहने के लिए बालकोनी के साथ बने हुए दो कमरे दे रखे थे।

वे अपना खाना स्वयं पकाते थे और विचारों से आर्य-समाजी होने के कारण प्रातः संध्या-वन्दन भी करते थे। चेतन को उनसे यह भी ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका है, उन्हें उससे बहुत प्यार था और उसी के हेतु उन्होंने अपना आध सेर रक्त दिया था।

अपनी वयस से जो वे कुछ अधिक लगते थे तो उसका कारण दूसरी बातों के अतिरिक्त उनकी वेश-भूषा भी थी। सिर पर पगड़ी, गले में गबरून की कमीज़ और कोट और टाँगों में उटुंग पायजामा। यह भूषा उनकी आँखों और कल्लों के गढ़ों और उनके गालों पर पड़ने वाली झुर्रियों के साथ मिल कर उनकी वयस को बढ़ा देती थी। जब भी उनके स्वास्थ्य की चर्चा चलती, वे अपनी पत्नी के मर्मान्तक रोग और उसके हेतु किये गये अपने रक्तदान का सविस्तार बखान करते। उस ज़माने में अस्पतालों में ब्लड-बैंक* नहीं थे। जब डाक्टर ने कहा कि उनकी पत्नी के शरीर में रक्त बेहद कम हो गया है, यदि कोई रक्त देने को तैयार हो जाय तो उसकी जान बच सकती है तो उन्होंने झट अपने आपको पेश कर दिया। हर बार जब वे अपने उस त्याग का उल्लेख करते तो रक्त की मात्रा को कुछ-न-कुछ बढ़ा देते। उनके स्वर में अपने आपको संतोष देने का कुछ ऐसा प्रयास था कि चेतन को कभी-कभी लगता, मानो उन्हें अपने इस त्याग पर पश्चात्ताप है और मानो बार-बार उसका बखान वे अपने आपको उस त्याग की महिमा जताने के लिए ही करते हैं। चेतन को लगता था जैसे उनके अन्तर में सदैव कोई कहता रहता है—"तुम मूर्ख हो, निरे गधे! भला एक मरने वाली नारी के लिए कोई यों प्राण देता है?" और जैसे उस आवाज़ को झुठलाने के लिए वे नित्य द्विगुण उत्साह से इस घटना का बखान करते हुए अपने त्याग की

*Blood Bank = अस्पतालों के ऐसे विभाग जहाँ दुर्बल रोगियों की सहायता के लिए सबल लोगों का रक्त इकट्ठा किया जाता है।

महिमा को सिद्ध करते थे।

जब भी चेतन उनके त्याग का यह बखान सुनता, एक बुड्ढे मियाँ की याद आ जाती—

एक बार वह बड़े डाकखाने में टिकट लेने गया। भीड़ अधिक थी। टिकट देने वाला युवक कुछ खोया-खोया-सा काम कर रहा था। न जाने उसके घर में कोई मृत्यु हो गयी थी अथवा कोई दूसरी बात थी—उसका ध्यान अपने काम में न था। खोया-खोया-सा वह दाम लेता और टिकट आदि खिड़की से बढ़ा देता। उन मियाँ जी को उसने बारह आने के टिकट अधिक दे दिये थे। मियाँ जी ने जब उन्हें गिना तो निमिष भर के लिए उनके मन में द्वन्द्व हुआ—बारह आने! वे निर्धन थे और बारह आने उनके लिए कम महत्व न रखते थे। हो सकता है वे कुछ अधिक सोचते तो बारह आने रख ही लेते, किन्तु उन्होंने सोचा नहीं और उस बाबू से पूछा कि उसने हिसाब ठीक कर लिया है कि नहीं। जब उसने अन्यमनस्कता से 'हाँ' कहा तो वे हँसे और उन्होंने फिर एक बार (सब को सुना कर) उससे हिसाब जोड़ने को कहा। उनका स्वर जैसे कह रहा था—"मियाँ साहबज़ादे, इस बेपरवाही से काम करोगे, तो कै दिन चलेगा? कुछ मन लगा कर काम किया करो, नहीं नौकरी से हाथ धो बैठोगे या सारा वेतन घाटे में भर दोगे!' पर जब इस पर भी उस युवक ने उनकी ओर ध्यान न दिया तो कुछ खिन्नता और कुछ क्रोध से हँसते हुए उन्होंने उसे बताया कि बारह आने के टिकट बाबू साहब तुमने ज़्यादह दे दिये हैं। इस पर जब उस युवक ने अनमनी-सी मुस्कान के साथ ओठों ही में उन्हें धन्यवाद दे कर टिकट वापस ले लिए तो उन मियाँ जी को लगा कि उन्होंने व्यर्थ ही उस कृतघ्न को बारह आने के टिकट लौटाये। बारह आने से उनकी एक दिन की रोटी चल जाती। किन्तु फिर कदाचित् उन्होंने अपने आप को समझाया कि उनका धर्म तो दयानतदारी है, कोई धन्यवाद दे या न दे! और वे शेष लोगों को सुना कर अपनी ईमानदारी का बखान करने लगे कि बेईमानी की सारी से ईमानदारी की आधी भली। इस तरह बददयानती से क्या बरकत होती है? बरकत तो उसी

में है, जो मौला देता है ! आदि-आदि....।

नेकी कर और दरिया में डाल—जिसने भी मानवों को यह परामर्श दिया, उसे मानव-मन का ज्ञान कदाचित लेश-मात्र भी नहीं था। मानव अपने किये का प्रतिकार चाहता है। यह प्रतिकार वैसे ही किसी काम के रूप में हो अथवा कृतज्ञता के दो मधुर शब्दों के रूप में—यह प्रतिकार ही उसके कृतित्व को स्फूर्ति प्रदान करता है। जहाँ नेकी कर के दरिया में डाली जाती है या जहाँ बदला नहीं मिलता, वहाँ धीरे-धीरे वह लुप्त हो जाती है या फिर नेकी करने वाले जीवन भर अपने मन को, अपने मित्रों को, उसकी महत्ता बताते रहते हैं और इस प्रकार स्वयं ही उस अभाव की पूर्ति कर लेते हैं। अपनी पत्नी के लिए दुर्गादास ने जो रक्त दिया था, उसके लिए कृतज्ञ होने वाला इस संसार में न रहा था और कदाचित इसलिए उस कृतज्ञता की भूख भी उनमें प्रबल थी।

पत्नी के देहावसान के पश्चात् दुर्गादास ने अभी तक दूसरा विवाह न किया था। जिस दिन चेतन पहले-पहल उनसे मिला, उसे ज्ञात हुआ कि विवाह की ओर से वे वीतराग-से हो गये हैं। उन्हें इच्छा ही नहीं होती। किन्तु धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों चेतन की घनिष्ठता उनसे बढ़ती गयी, उसे लगा कि प्रकट विवाह के प्रति वे जितनी उदासीनता दिखाते हैं, अप्रकट वे उसके लिए उतने ही लालायित हैं। जब भी उनकी बिरादरी के लोग आते तो किसी-न-किसी तरह अपनी स्वर्गीया पत्नी की बात चला कर उस समस्त सेवा तथा त्याग का वर्णन बड़े उत्साह से करते ताकि लड़की वालों को आभास मिल जाय कि उनकी लड़कियों के लिए उनसे अच्छा वर मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अपनी पत्नी की इतनी सेवा, उसके लिए इतना त्याग कोई विरला ही कर सकता है ! किन्तु न जाने उनकी आकृति में, उनके पहनावे में, उनके समस्त व्यवहार में क्या बात थी कि लड़कियों वाले मतलब की बात पर मौन साध जाते। वे सहर्ष उनका

आतिथ्य ग्रहण कर लेते; उनसे उनकी जमा-पूँजी उधार लेने में भी संकोच न करते; उनके घर ठहर कर उनके हाथों पकायी हुई खीर, दलिया, खिचड़ी या पराठे स्वाद ले-ले कर खाते, किन्तु जब मतलब की बात आती तो ऐसे उड़ा जाते मानो जिस लड़की की ओर दुर्गादास संकेत करते, वह उनकी नहीं, किसी दूसरे की रिश्तेदार हो।

और दुर्गादास अभी तक विधुर बने हुए थे। उनकी स्वर्गीया पत्नी के गुणों में दिन-प्रति-दिन वृद्धि हो रही थी और उसके लिए उन्होंने जो रक्त दिया था, उसकी मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी।

अपने एकान्त का समय दुर्गादास रोटी पकाने अथवा बाजा बजाने में बिताते थे। आठ वर्ष पहले उनके विवाह पर एक साधारण सा हार-मोनियम बाजा भी दहेज़ में आया था। एक दो-आर्य समाजी गीत उनकी पत्नी जानती थी। वही उससे उन्होंने सीख लिये थे। जब उनका मन उदास होता तो वे चारपाई के नीचे से हारमोनियम निकाल कर गाया करते।

तुम हो प्रभु चाँद मैं हूँ चकोरा

या

प्रभु प्रीतम जिसने बिसारा

गाते-गाते वे तन्मय हो जाते। भूल जाते कि उनका स्वर बाजे के स्वर से मिलता है या नहीं। वे आँखें बन्द किये, तन्मय, झूमते हुए, भक्ति भाव से गाते। उन्होंने 'भजन' पुष्पांजलि' से स्वयं भी कुछ गीत सीखे थे, यद्यपि पत्नी से सीखे हुए ये दो गीत उनको अत्यन्त प्रिय थे। जिस दिन चेतन से उन्होंने सुना कि वह प्रो० सिंह के कॉलेज में गाना सीखता है तो उन्होंने उसको अपने सारे गीत सुनाये—दयानन्द के आवाहन का गीत :—

"वेदां वालियाँ ऋषिया ओ तेरे आवन दी लोड़!"

महाराणा प्रताप के त्याग का गीत :—

"आया जब अकबर का क़ासिद वक्त था वह शाम का!"

मांसाहार के निषेध का गीत :—

"है भला तेरा इसी में मांस खाना छोड़ दे !"

ये सब, और ऐसे ही और एक दो गाने सुना कर उन्होंने चेतन से भी कुछ सुनाने को कहा।

"मैं तो पक्के गाने ही पसन्द करता हूँ," उन आर्यसमाजी भजनों पर नाक-भौं चढ़ाते हुए चेतन ने कहा, बड़ी शान से बाजा अपने सामने खींचा और यह भूमिका बाँध कि अब दस बजे हैं इसलिए वह भैरव के बोल ही सुनायेगा, उसने—

स ध, प ध, मप, गम, ग रे गम, गा रे स स

बजाया और जब दुर्गादास ने पूछा कि भाई गीत के बोल भी सुनाओ तो एक वेत्ता की-सी मुस्कान के साथ 'प्रसिद्ध गाना है' यह विवरण देते हुए चेतन ने गाया :—

"जागियो गोपाल लाल, जागियो गोपाल लाल !"

चेतन को तान और पलटों का अभ्यास न था, लय और ताल का भी उतना ज्ञान न था, इसलिए उसने एक-दो बार अस्थाई और अन्तरा और बीच में केवल सरगम गा कर बाजा रख दिया, किन्तु इतने ही से दुर्गादास पर उसका रौब जम गया और वहीं, पहली ही भेंट में यह तय हो गया कि चेतन प्रो० सिंह से जो सीखेगा, उसका अभ्यास दुर्गादास के यहाँ आ कर करेगा। दुर्गादास ने यह प्रस्ताव भी किया कि वह चाहे तो काम भी वहीं किया करे—एकांत जगह है, किसी प्रकार का शोर नहीं और दूनी एकाग्रता से काम हो सकता है। और चेतन ने उनका प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिया।

धीरे-धीरे दुर्गादास ने भी वे सब रागनियाँ सीख लीं जो चेतन को आती थीं और सुबह-शाम दोनों तन्मय हो कर उन्हें गाने लगे। पहले वे अकेले-अकेले गाया करते। एक दिन भैरवी की एक रागिनी उन्होंने मिल कर जो गायी तो दोनों चौंक पड़े, अपना सम्मिलित स्वर उन्हें बड़ा मधुर लगा। इसके बाद वे प्रायः इकट्ठे ही गाने लगे।

मोरी बैय्याँ पकर झकझोरी
श्याम ! तू तो निपट अनारी
मानत नहीं मोरी !

भैरवी की यह रागिनी उन्हें बड़ी प्रिय थी और वे प्रायः इसे गाया करते थे। ज्ञेय काव्य के रचयिताओं ने गोकुल के उस अमर ग्वाले के नाम पर न जाने कितनी तृष्णा, अतृप्ति, वासना, प्रेम इन अगणित छोटे-छोटे गीतों में समो दिया है कि गाने वाला या कान्ह बन जाता है या राधा और अपने यथार्थ कटु वातावरण को भूल कर उस काल्पनिक आनन्द भरे वातावरण में साँस लेने लगता है। चेतन और दुर्गादास भी इस गीत को गाते हुए अपनी समस्त विषमताओं और कटुताओं को भूल जाते। प्रत्यूष बेला के उस शांत-स्निग्ध वातावरण में इस सुकोमल रागिनी को गाते हुए तन्मय हो कर वे व्यामोहावस्था को पहुँच जाते।

सन्ध्या को वह कभी-कभी दुर्गादास को म्यूज़िक कॉलेज ले जाता। दोनों वहाँ प्रो० सिंह का गाना सुनते, कोई छोटी-मोटी रागिनी सीखते, किन्तु अभ्यास दोनों घर ही पर करते।

उन्हीं दिनों आर्य समाज का वार्षिक अधिवेशन आ गया और उसके उपलक्ष्य में संगीत-सम्मेलन के आयोजन की भी घोषणा की गयी। म्यूज़िक कॉलेज में चेतन को पता चल गया कि प्रो० सिंह अपने छात्रों को लेकर इस अवसर पर अवश्य जायँगे और उसने मन-ही-मन निश्चय भी कर लिया कि वह इस अवसर पर गाने का सुयोग अवश्य प्राप्त करेगा।

अकेले गाने का साहस अभी चेतन में था नहीं, इसलिए उसने सोचा कि वह और दुर्गादास इकट्ठे गायेंगे। अधिवेशन पर कवि-सम्मेलन भी हो रहा था और यद्यपि चेतन ने उसके लिए भी कविता लिखी थी—शिमले आने से पहले वह कई कवि-सम्मेलनों में भाग ले चुका था—पर किसी संगीत-सम्मेलन में उसने आज तक भाग न लिया था। इसलिए इस अवसर पर एक संगीतज्ञ के रूप में प्रकट होने की प्रबल लालसा उसके मन में थी। घर पहुँचते ही उसने यह समाचार दुर्गादास को सुनाया, अपने निश्चय की

बात भी बतायी और यह भी कहा कि हम दोनों इकट्ठे गायेंगे। सुन कर दुर्गादास की गढ़ों में धँसी हुई आँखें एक अपूर्व ज्योति से जगमगा उठीं। उसी दिन से दोनों मित्र इकट्ठे मिल कर अपने प्रिय गीतों के अभ्यास में संलग्न हो गये।

यद्यपि आर्य समाज के उस संगीत-सम्मेलन में कोई बहुत बड़े संगीतज्ञ न आये थे, पर भीड़ काफ़ी थी, क्योंकि विज्ञापन में कई लड़कियों के नाम भी थे। निम्न-मध्य-वर्गीय घरानों की लड़कियों को, जिन्हें वर-प्राप्ति के लिए गाने की शिक्षा लेनी पड़ती है, अपनी कला के प्रदर्शन का सुअवसर इन धार्मिक सम्मेलनों के अतिरिक्त कहीं और नहीं मिलता। निम्न-वर्ग के बेकार युवक भी बिना टिकट तमाशा देख लेते हैं। बेकार समय का इससे अधिक अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है। इसीलिए समाज के साधारण अधिवेशनों से कहीं अधिक भीड़ संगीत-सम्मेलन में थी।

रात चेतन देर से सोया था, पर प्रातःकाल ही उठ कर वह दुर्गादास के यहाँ पहुँचा और निरन्तर कई घंटों तक दोनों इकट्ठे मिल कर गाने का अभ्यास करते रहे थे। दुर्गादास को आते समय संकोच हो रहा था, किन्तु चेतन उन्हें अपने संग घसीट लाया था।

सबसे पहले कुछ लड़कियों ने 'वन्दना' गायी। इसके बाद प्रोग्राम आरम्भ हुआ। किन्तु किसने क्या गाया, चेतन ने कुछ नहीं सुना। मौन रूप से अपने गानों की रिहर्सल करने के साथ-साथ वह इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब प्रो० सिंह और उनके छात्रों की बारी आती है और कब वह उनसे कुछ क्षण अपने और दुर्गादास के लिए ले पाता है।

जब आर्य समाजी भजनीक (जो अपने गाने के साथ भाषण का पुट भी देते रहे) और लड़कियाँ (जिनकी प्रशंसा उनके सौन्दर्य और कंठ की मधुरता के परिमाण से कम या ज्यादह हुई) और दूसरे गवैये गा चुके तो प्रो० सिंह और उनके साथियों की बारी आयी। पहले उनके शिष्यों ने

अपनी-अपनी कला के चमत्कार दिखाये। फिर प्रो० साहब ने स्वयं बाजा खींचा। तभी चेतन ने प्रार्थना की कि उसे और दुर्गादास को गाने का अवसर दिया जाय। "तुम अभी सभा में गाने योग्य नहीं हुए!" इतना कह कर प्रो० सिंह स्वयं गाने लगे। वे बहुत अच्छा गाये। उन्हें कई चीज़ें गानी पड़ीं। वही उनके गले का जादू जिसने चेतन को गली की सीढ़ियों पर जाते-जाते बाँध लिया था, सारे-के-सारे श्रोताओं को बाँधे हुए था। सीधे-सादे गाने, कम तान पलटे, सुन्दर गला और शुद्ध उच्चारण! और एक गाने के समाप्त होते ही लोग दूसरे के लिए अनुरोध करते। कई गीत गाने के बाद प्रोफ़ेसर साहब थक गये, किन्तु समय अभी बहुत न हुआ था। आयोजक चाहते थे कि वे और कुछ देर तक गायें। तभी चेतन ने एक बार फिर साहस करके अपनी प्रार्थना दुहरायी और उस जल्दी और घबराहट में जब श्रोता तालियाँ पीट रहे थे, 'एक और' 'एक और' के नारे लगा रहे थे और आयोजक उनसे कम-से-कम एक गाना और गाने का अनुरोध कर रहे थे, प्रो० सिंह ने चेतन की ओर संकेत करते हुए कहा—"अब कुछ क्षण के लिए ये गायेंगे, मेरे ही शागिर्द हैं, मैं ज़रा साँस ले लूँ।" तब आयोजक महाशय ने सोल्लास इस बात की घोषणा कर दी कि अब प्रो० साहब के दो नये शागिर्द गायेंगे, जिसके बाद वे स्वयं अपने संगीत से श्रोताओं को मुग्ध करेंगे। और अपने उस उल्लास में संयोजक महोदय ने चेतन और दुर्गादास को संगीत-विद्या में विशारद बना डाला।

घोषणा को सुन कर दोनों धड़कते हुए दिलों के साथ आगे आये। दुर्गादास ने बाजा आगे खींचा। दोनों की आँखें मिलीं—कौन-सा गाना गाया जाय? और जैसे आँखों-ही-आँखों में दोनों ने निश्चय कर लिया।

'मोरी बैय्याँ पकर झकझोरी'

बाजा बजने लगा और वे गाने लगे।

दोनों तन्मय भाव से गा रहे थे कि चेतन की दृष्टि सामने बैठे दो गवैयों की ओर गयी। वे हँस रहे थे। उसने प्रो० सिंह की ओर देखा। उनका माथा सिकुड़ गया था और वे तिलमिला रहे थे। चेतन को लगा कि

उनका स्वर नहीं मिल रहा। वह आनन्द नहीं आ रहा, जो उन्हें सदैव इस गीत को गाने में आया करता था। उसने दुर्गादास की ओर देखा। वे आँखें बन्द किये, तन्मयता से झूमते हुए, आधी रात को भैरवी गा रहे थे। अचानक सामने बैठे हुए गवैये ज़ोर से हँस पड़े। इसके बाद जैसे हँसी छूत की तरह फैल गयी। तभी चेतन को ध्यान आया कि उन्हें तो 'खम्माच' गाना था। उसने चाहा दुर्गादास से कहे कि दूसरा राग लगाओ :

बैय्याँ न पकर मोरी....

किन्तु उसी क्षण प्रोफ़ेसर सिंह ने आगे हो कर बाजा थाम लिया और उनका प्रिय शिष्य वही झीवर कुमार अपनी सुरीली आवाज़ से गाने लगा—

कौन देश गया पिया मोरा बालम रे

दर्शकों की हँसी एक दम थम गयी। चेतन को इतनी लज्जा आयी कि वहाँ एक क्षण भी ठहरना उसके लिए असम्भव हो गया। दुर्गादास की समझ में कुछ भी न आ रहा था। अपनी गढ़ों में धँसी हुई आँखों की पलकें, मरती हुई तितली के पंखों-सी फटफटाते हुए, वे आश्चर्य-चकित से चारों ओर देख रहे थे। किन्तु चेतन बिना किसी से आँख मिलाये पिछले दरवाज़े से निकला और रात के अँधेरे में चोरों की भाँति घर की ओर भाग चला।



५१

तीन दिन तक चेतन बाहर न निकला था। उसे लगता था जैसे सारा नगर उसकी असफलता को जान गया है। वह बाहर निकलेगा तो लोग अँगुलियाँ उठायेंगे कि यही वे संगीत-विशारद हैं जो रात के ग्यारह बजे भैरवी गा रहे थे। कमरे के एकाकीपन से उकता कर वह एक दिन दोपहर को सीढ़ियों के छज्जे पर आ खड़ा हुआ था, पर जाने क्यों सामने के बरामदे में खड़ी बाबू चरणदास की साँवली बड़ी लड़की उसे देख कर मुस्करा दी और वह हड़बड़ा कर मुड़ा। उस बेचारी ने चाहे उसका गाना सुना भी न हो, परन्तु चेतन को लगा, जैसे वह मुस्कान उस घटना की

ओर ही संकेत कर रही है। घोंघे की भाँति वह अपने खौल में आ बैठा और माल अथवा लोअर बाज़ार तक जाना तो दूर रहा, वह रुल्दू भट्टे के चौक तक जाने का भी साहस न कर पाया था। रात के पिछले पहर मुँह अँधेरे ही वह उठता, शौचादि से निवृत्त हो, व्यायाम कर, नल पर हाथ-मुँह-धो कर या स्नान करके अपने कमरे में आ बैठता। कविराज जी की पुस्तक ख़त्म हो गयी थी। वह उसे फिर एक नज़र देखता अथवा अपने उपन्यास का कोई परिच्छेद लिखने का प्रयास करता या फिर अन्यमनस्क लेटा रहता।

न जाने वह कब तक इस प्रकार उस अँधेरे कमरे में पड़ा रहता, यदि चौथे दिन प्रो० सिंह ही के यहाँ बना, उसका एक नया मित्र नारायण उसे न आ पकड़ता।

"अरे भई क्या हो गया तुम्हें जो छुट्टी के दिन भी इस अँधेरी कोठरी में बन्द पड़े हो ?" नारायण ने कहा।

चेतन ने कुछ उत्तर देने का प्रयास किया, पर अस्फुट बड़बड़ाहट के अतिरिक्त उसके ओठों से कुछ भी न निकल सका।

तब चश्मे के पीछे से अपनी आँखों की चमकती रेखा को कटाक्ष के रूप में चेतन पर डाल कर नारायण ने कहा—"बाहर तो आओ! देखो तो कैसे बादल घिर के आये हैं। ऐसे में कोई भलामानुस कमरे में बैठा रह सकता है? ऐसे में तो जी चाहता है दिन भर शिमले की सड़कों पर घूमते रहें।"

और दफ़्तर के वातारण में सूख जाने वाला रस जैसे इन बादलों को देख, नव-जीवन पा, नारायण की आँखों में उमड़ने लगा।

"मेरा जी कुछ स्वस्थ नहीं!" चेतन ने कहना चाहा, किन्तु नारायण जैसे बरबस घसीटता हुआ-सा बाहर आया। कमरे के किवाड़ लगा कर दोनों नीचे उतरे और सच ही दिन भर शिमले की सड़कों और बाज़ारों में घूमते रहे।

बादल सामने घाटियों से उठते; धीरे-धीरे बढ़ते हुए, धुनकी हुई रुई की भाँति ऊपर चढ़ते; समीप की घाटियों में रेंगते; चोटियों पर लटकते;

दुकानों, मकानों पर छाते, बरसते और हल्के हो कर और भी ऊपर उठ जाते। दिन भर दोनों ने उस सैर का आनन्द लूटा। वर्षा होने लगती तो वे किसी हवाघर में बैठ जाते या किसी दुकान के बरामदे में हो जाते और थमने पर फिर चल पड़ते। उन्हें भूख भी खूब लगी थी और न केवल उन्होंने नारायण के घर जा कर स्वादिष्ट, खस्ता, मठरियाँ अत्यधिक पुराने और मन्दाग्नि को प्रज्वलित करने वाले नींबू के अचार के साथ चटखारे ले कर खायी थीं, बल्कि लोअर बाज़ार के हलवाई की दुकान से गर्म-गर्म इमरतियाँ भी चट की थीं और मशोबरे के सेब भी खाये थे। इसी बीच में उन्होंने जी भर कर बहस की थी और आत्मा-परमात्मा ऐसे सूक्ष्म आध्यामिक विषयों से ले कर समाजवाद, यथार्थवाद आदि स्थूल सांसारिक विषयों पर तर्क-वितर्क भी किया था। दोनों इन विषयों में पारंगत हों, यह बात न थी। बहस करने के लिए वे उलझते रहे थे और संध्या को जब चेतन नारायण को उसके होटल के सामने छोड़ कर अपने ढाबे की ओर जाने लगा तो नारायण ने उसे भी अपने साथ ऊपर खींच लिया था।

चेतन उस होटल के सामने से प्रायः रोज़ गुज़रता था। कई दिन से वह नारायण को वहाँ तक छोड़ने भी जाता था, किन्तु उसे स्वयं कभी उसके ऊपर जाने का साहस न हुआ था। बात वास्तव में यह थी कि आरम्भ ही में कविराज जी के व्यवहार, शिमले की माल और उस माल के वासियों की तड़क-भड़क, दर्प और अभिमान ने उसके हृदय में कुछ ऐसा हीन-भाव भर दिया था कि वह अपने आपको एक दम हेय समझने लगा था। और जब कविराज जी के साथ ही खाना-खाने का उसका स्वप्न टूटा और किसी दूसरी जगह भोजन पाने की समस्या उसके सामने उपस्थित हुई तो सीधे लोअर बाज़ार के किसी होटल वाले से जा कर पूछने का साहस उसे न हुआ। (माल के किसी होटल की ओर तो वह बाहर से देख ही सकता था, अन्दर जाने तक की कल्पना न कर सकता था।) उसके इस संकोच का एक और भी कारण था। कविराज जी से वह कुछ रुपये पेशगी ले चुका था, अब और अधिक रुपये वह माँगना न चाहता था और होटल वाले, उसने सुना था, महीने के

रुपये पेशगी माँगते हैं। न जाने वे कितने रुपये माँग लें! यदि उसके पास उतने रुपये न निकलें तो उसे खिसियाना-सा मुँह बना कर लौटते हुए शर्म आयेगी। यही सोच कर किसी होटल में जाने की अपेक्षा उसने यादराम से पूछा था कि कहीं कोई ढाबा आदि नहीं क्या?

यादराम उसे सहर्ष नीचे 'चोर बाज़ार' के एक अत्यन्त घटिया-से ढाबे पर ले गया था। "सात रुपये महीने पर जितनी चाहो रोटी खाओ," उसने सोल्लास चेतन से कहा था," ये होटल वाले तो चोर हैं, मुझसे बारह रुपये माँगते थे।"

चेतन और भी सहम गया था। लाहौर में शुरू-शुरू में वह जिस तन्दूर पर खाना खाया करता था, उस पर बड़ी कठिनाई से उसका बिल चार रुपये महीने तक पहुँचता था। जब यादराम से (जो साधारण घरेलू नौकर था।) वे बारह रुपये माँगते हैं तो उससे तो पन्द्रह-बीस ही माँगेंगे—उसने सोचा था—यदि उसे पता होता कि शिमला इतनी महँगी जगह है तो वह कभी पचास रुपये मासिक पर वहाँ न आता और उसने उसी ढाबे पर खाना-खाना आरम्भ कर दिया था।

ढाबा चाहे घटिया था, पर वहाँ सफ़ाई यथेष्ट थी और जब वह टाट पर बैठ कर थाली में खाना खाता तो उसे कुछ परायापन न लगता। चंगड़ मुहल्ले में रहने वाले चेतन के लिए वह ढाबा जैसे कुछ अपनत्व का भाव लिये हुए था। फिर ढाबे का स्वामी उसे कुछ सभ्य समझ कर, शाम-सवेरे उसकी तरकारी और दाल में दो पैसे का घी छौंक दिया करता था। खाते समय चेतन को तेल और घी का मिला-जुला स्वाद आया करता था। किन्तु होटलों के परायेपन की अपेक्षा उसे वह कहीं अधिक सह्य था। वह संतुष्ट था और उसने कहीं दूसरी जगह जाने की इच्छा तक भी न की थी।

'काश्मीर हिन्दू होटल' के नीचे सोडावाटर का एक कारखाना था। बोतलों की पेटियों में से होते हुए एक बड़े तंग लकड़ी के जीने से ऊपर पहुँचे। चेतन ने देखा कि सीढ़ियाँ जिस कमरे में खुलती हैं उसमें चार मेज़ लगे हुए हैं, जिन पर सफ़ेद मेज़पोश बिछे हैं। मेज़पोश वास्तव में उतने साफ़ न थे,

किन्तु गंदे सील भरे ढाबे की फटी मैली चटाइयों की अपेक्षा ये गंदे मेज़पोश भी चेतन को साफ़ लगे।

वे दोनों जा कर सामने की मेज़ पर बैठ गये। चेतन दीवार से पीठ लगा कर सीढ़ियों की ओर मुँह करके बैठा और नारायण मेज़ के दूसरी ओर उसके सामने। बायीं ओर एक छोटे-से कमरे के बाद तनिक ऊपर को रसोई-घर था। खाने के कमरे और रसोईघर के मध्य यह छोटा-सा कमरा था और रसोई के धुएँ के कारण काला भी पड़ गया था। दीवार के साथ, मैल की मोटी परत के कारण काला-स्याह पड़ जाने वाला, एक मेज़ रखा हुआ था। इसके साथ एक कुर्सी भी लगी थी। बराबर की आलमारी का आधा भाग ही वहाँ से दिखायी देता था। आलमारी के शीशे टूटे हुए थे और उसमें घी के डिब्बे पड़े थे जो कदाचित होटल के स्थायी ग्राहकों के थे। चिकनाई के कारण आलमारी के किवाड़, उसके तख्ते, शीशे सब मैल की मोटी काली परत से ढके हुए थे और दूर से काले वारनिश से रँगे दिखायी देते थे।

उधर से दृष्टि हटा, चेतन ने तनिक मुड़ कर दायीं ओर को देखा। दोनों ओर को लटकते हुए पर्दे और बीच में एक छोटा-सा मार्ग दिखायी दिया। जब हाथ धोने के लिए उस मार्ग से गुज़र कर वह बारजे पर गया और उसने मुड़ कर कमरे का निरीक्षण किया तो उसने देखा कि कमरा तो वास्तव में एक ही है। उसी में प्लाईवुड के स्थान पर लम्बी-लम्बी सलाखों से पर्दे लटका कर केबिन-से बना दिये गये हैं।

अन्दर के केबिनों में उस समय शायद बोतलें खुल चुकी थीं, क्योंकि बहकी-बहकी बातों की ध्वनि आ रही थी और कई लड़खड़ाती रुद्ध आवाज़ें यदाकदा 'ब्वाय' 'ब्वाय' पुकार उठती थीं। उधर से दृष्टि हटा कर उसने बारजे को देखा। बाज़ार की ओर को बढ़े हुए उस छोटे-से बारजे में एक ओर हाथ-मुँह धोने के लिए नल लगा था, दूसरी ओर अत्यधिक छोटा-सा शौचगृह था। खिड़कियों के पट बाज़ार की ओर को खुलते थे। चेतन क्षण भर के लिए खिड़की में जा खड़ा हुआ।

बाहर बाज़ार में बादल घुस आये थे। बत्तियों के सिमटे, धुँधले प्रकाश

में नीचे बहती हुई भीड़ चेतन को कुछ विचित्र-सी लगी। उस बहिया में सभी भारतीय थे। निम्न-मध्य-वर्ग अथवा बीच के मध्य-वित्त के लोग। अँग्रेज़ या उच्च वर्ग के भारतीय लोअर बाज़ार में दिखायी नहीं देते। उनके लिए माल। और माल की वैभवशाली दुकानें और ऐसे शानदार होटल हैं, जहाँ दिन में खाने के छै-छै कोर्स आते हैं, और जहाँ ऊँचे दर्जे के मध्यवर्गीय का मासिक वेतन एक ही दिन की भेंट हो सकता है। माल वालों में से लोअर बाज़ार की सैर को तभी कोई आता है जब उसकी जेबों में माल की दुकानों के नाज़ उठाने की शक्ति नहीं रहती। गोरी चमड़ी का ऐसा ही कोई जोड़ा कभी-कभी लोअर बाज़ार में दिखायी दे जाता है—जैसे नदी की धारा में कमल का पत्ता—उस धारा का हो कर भी उससे अलग। चेतन भी प्रतिदिन उस बहती भीड़ का अंग बनता था। वह 'काश्मीर हिन्दू होटल' की खिड़कियों को मध्य वर्ग के उन सैकड़ों लोगों की तरह अरमान भरी दृष्टि से देखता था जो माल से गुज़रते हुए वहाँ के बड़े होटलों को देख कर सोचा करते हैं कि शीघ्र ही वे उनमें जाने के योग्य हो सकेंगे। उस बारजे की खिड़कियों पर पड़े हुए पर्दे सदैव उनके सामने कल्पना-लोक बसा देते थे। और वह भीड़ में ठिलता हुआ दिवा-स्वप्नों में खो जाता था। वह जब भी नारायण को छोड़ने जाता, कई बार उसे इच्छा होती कि वह उसके साथ होटल के ऊपर चला जाय, पर संकोच सदैव उसके पैरों की बेड़ी बन जाता और वह उसे छोड़ कर अपना स्वप्न बनाता-मिटाता नीचे चोर बाज़ार के उसी घटिया-से ढाबे की ओर चल पड़ता। आज उसी बारजे में खड़ा वह कुछ विचित्र प्रकार की अनुभूति से अभिभूत था। कुछ हल्का, कुछ उत्फुल्ल, छलकने के डर से मधुर पेय को अपने किनारों में सयत्न समेटने वाले प्याले की भाँति वह उस उल्लास को अन्तर में सँजोये था। विमोहित-सा वह नीचे के उस धुँधले, शीतल प्रकाश में अनवरत बहती उस जन-सरिता की ओर देख रहा था....तभी नारायण ने उसे आवाज़ दी।

नल पर जल्दी-जल्दी हाथ धो और खूँटी से लटकते हुए, बार-बार हाथों के पोंछे जाने के कारण निचुड़ते-से तौलिये से हाथ पोंछ कर जब वह वापस

मेज़ पर पहुँचा तो खाना आ चुका था। नारायण ने उसे बताया कि होटल वाले स्थायी ग्राहकों से आठ रुपया मासिक लेते हैं और आठ रुपये में एक दाल, तरकारी और रोटियाँ देते हैं।

"कितनी रोटियाँ ?" चेतन को जैसे विश्वास न आया।

"जितनी भी कोई खा ले," नारायण ने थाली उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "हाँ यदि कोई दाल-तरकारी छौंकी हुई चाहे तो घी उसका अपना।" फिर कुछ क्षण रुक कर उसने कहा, "मैं तो नहीं खाता, किन्तु यहाँ गोश्त हर किस्म का पकता है और दो पैसे को सलाद की प्लेट मिलती है।"

और चेतन के 'न' 'न' करने पर भी नारायण ने सलाद की प्लेट मँगा ली। दाल और तरकारी अत्यधिक स्वादिष्ट बनी थीं। दोनों में घी का तड़का लगा हुआ था। सलाद का स्वाद चेतन ने जीवन में पहली बार चखा। प्लेट में टमाटर भी थे, प्याज़ भी और सलाद के कतले भी। शिमले के अपने इस निवास-काल में चेतन ने पहली बार पेट भर खाना खाया। उसी दिन नारायण की सिफ़ारिश पर, बिना कुछ पेशगी दिये, वह 'काश्मीर हिन्दू होटल' का स्थायी ग्राहक बन गया।

खाना खाने के बाद तत्काल नारायण से छुट्टी ले कर वह भागा-भागा औषधालय गया कि यादराम को अपने इस आविष्कार की सूचना दे। यादराम औषधालय बन्द करके जा चुका था। तब चेतन ढाबे की ओर भागा। यादराम खाना खा कर कुल्ला कर रहा था कि चेतन ने उसे जा पकड़ा।

"तुम तो महामूर्ख हो," वह दूर ही से चिल्लाया, "इस घटिया से ढाबे में खाना खा रहे हो। वहाँ 'काश्मीर हिन्दू होटल' में केवल आठ रुपये महीना लेते हैं और इतना बढ़िया खाना मिलता है कि वाह ! पतले-पतले लुच्चियों* से फुल्के, स्वादिष्ट तरकारियाँ और सिर्फ़ दो पैसे में सलाद की प्लेट ! मैं कहता हूँ, दो पैसे में सलाद की प्लेट ! कभी खायी भी है तुमने सलाद !"

---

*मैदे की बहुत पतली और चौड़ी पूरियाँ।

और उसमें निहित विटामिनों पर (नारायण द्वारा सुना हुआ) एक छोटा-सा भाषण देते हुए उसने यादराम से अनुरोध किया कि कल से वह भी होटल ही में खाना खाया करे!

किन्तु यादराम ने निराश-भाव से केवल इतना कहा, "अरे बाबू जी, हम कहाँ होटलों में जायेंगे!

चेतन बेसब्र हो कर बोला, "अरे भई कल तुम मेरे संग चलना, आखिर तुम क्यों होटल में न खाओ। अपने पैसों का खाओगे, कोई मुफ़्त तो खाओगे नहीं," और फिर यादराम के असमंजस को देख कर उसने कहा, "वे एक थाली के तीन आने लेते हैं, न होगा मेरे हिसाब में खा लेना।"

और यादराम को यह संदेश दे कर चेतन इस प्रकार माल को ओर चल पड़ा जैसे अचानक अलादीन का चिराग़ उसके हाथ आ गया हो।

●

५२ दूसरे दिन शाम को यादराम ने घर की धुली कमीज़ और कुछ साफ़ निकर पहनी और चेतन के साथ चल पड़ा।

यादराम को ऊपर बैठा कर अपनी इस कारगुज़ारी की दाद मैनेजर से पाने के लिए चेतन नीचे आया और उसने सहर्ष मैनेजर से कहा, "लीजिए आपके लिए एक और ग्राहक ले आया हूँ।"

मैनेजर ने खीसें निपोर दीं, "आप की कृपा है महाराज!"

"वह भी स्थायी ग्राहक बन जायगा," अपने जोश में चेतन ने कहा और वह ऊपर पहुँचा। तब तक यादराम डट कर एक मेज़ पर बैठ गया था। किन्तु उस लम्बे-तगड़े, हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति के लिए वह मेज़-कुर्सी बहुत छोटी दिखायी देती थी। लगता था जैसे कोई बड़ा आदमी बच्चों की मेज़-कुर्सी पर बैठ गया हो। उसकी लम्बी अधनंगी टाँगें मेज़ के नीचे आ न रही थीं और वह उन्हें कुर्सी के दोनों ओर फैलाये अकड़ा बैठा था।

चेतन ने अन्दर रसोईघर में रसोइये को आवाज़ दे कर कहा कि-यादराम भी खाना खायेगा।

रसोइये ने किचन के दरवाज़े से गर्दन बढ़ा कर यादराम की ओर देखा और फिर सिर हिलाते हुए विचित्र मुद्रा बना कर चेतन से कहा, "पहले आप खा लीजिए।

चेतन को उसका यों मुँह बनाना बड़ा बुरा लगा। किन्तु तभी नारायण बारजे से हाथ पोंछता हुआ वहाँ पहुँच गया और बोला, "आओ पहले हमीं निबट लें, एक साथ वे किस प्रकार इतने आदमियों के लिए रोटियाँ पका सकते हैं ? वह बाद में खाता रहेगा।"

थालियाँ परोस कर आ गयीं और यद्यपि चेतन के लिए यादराम को खिलाये बिना खाना दुष्कर हो रहा था, किन्तु वह नारायण के साथ खाने लगा। जब वे खाना खा चुके तो नारायण ने घूमने का प्रस्ताव किया। तब रसोइये को ताकीद करके कि वह यादराम को खाना खिलाये और अपने आदेश के महत्व को जताते हुए इतना और कह कर कि वह स्थायी ग्राहक बनेगा, चेतन नारायण के साथ नीचे उतरा।

जब वे बाहर जाने लगे तो मैनेजर ने उन्हें रोक लिया और उपालंभ भरे स्वर में उसने कहा, "यह होटल है बाबू साहब, यहाँ भले आदमी खाना खाने आते हैं, यहाँ दफ़्तरों के बाबू आते हैं, मज़दूरों के खाना खाने का ढाबा नहीं यह !"

जब वे खाना खा रहे थे तो कदाचित् रसोइया अथवा बैरा नीचे आ कर मैनेजर से शिकायत कर गया था। उसकी बात सुन कर चेतन किं-कर्त्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह गया। अब वह यादराम से जा कर कैसे कहे कि उसे खाना नहीं मिलेगा। क्षण भर सोच कर उसने कहा, "अच्छा उसे आज तो खा लेने दीजिए, फिर वह नहीं आयगा। अब तो मैं ले आया हूँ उसे। उसका आज का खाना मेरे हिसाब में लिख लेना।"

यह कह कर वह नारायण के साथ चला। लोअर बाज़ार में जीवन की नदी अपने यौवन पर थी। चेतन इस बहती इठलाती नदी में अपने को पेड़ से टूट कर गिरी हुई किसी निर्जीव शाखा-सा अनुभव कर रहा था। लहरों से इधर-से उधर होता वह बहा जा रहा था। किन्तु नारायण रौ में था।

लोअर बाज़ार में आर्य-समाज के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी शुद्धदेव की कथा कई दिनों से हो रही थी और उसकी इच्छा थी कि माल का एक चक्कर लगाते और कुछ विचार-विनिमय करते हुए वहाँ पहुँचा जाय। तर्क-वितर्क करने का उसे व्यसन था। उसने 'त्रिगुणातीत' की बात चलायी। किन्तु चेतन को 'त्रिगुणातीत' के आध्यात्मिक आदर्श से किसी प्रकार की दिलचस्पी न थी। उसका मन तो 'काश्मीर हिन्दू होटल' के उस खाने के कमरे की ओर लगा हुआ था। वह सोच रहा था कि यादराम को खाना मिला होगा कि नहीं। नारायण की गम्भीर, पांडित्यपूर्ण व्याख्या को प्रकट सुनता और 'हूँ,' 'हाँ' करता हुआ वह वास्तव में उन होटल वालों की असभ्यता पर आग-बबूला हो रहा था, मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर रहा था कि वह भी उनके यहाँ खाना न खायेगा। कितने दुष्ट हैं ये लोग! वह उनके लिए एक ग्राहक लाया और इसके बदले कि वे उसको धन्यवाद देते, उलटे ऐसे पेश आये जैसे उससे कोई अपराध बन पड़ा हो 'कम्बख़्त होटल लिये फ़िरते हैं!' मन-ही-मन उपेक्षा से उसने कहा, 'चार पर्दों या चार साफ़ चादरों से ढँकी मैली-कुचैली मेज़ों से कोई ढाबा होटल तो नहीं बन जाता। वह होटल ही क्या जिसके खाने के कमरे में बैठें तो किचन अपनी समस्त कुरूपता के साथ दिखायी दे और हवा के हल्के-से झोंके के साथ लहसुन-प्याज़ की तीखी गंध नथुनों में समा जाय। इतने गंदे और मैले बैरे हैं कि हलवाई के नौकर भी न होंगे; और दम यह है कि शरीफ़ों का होटल है!....'

वह मन-ही-मन उबल रहा था। किन्तु नारायण अपने साथी की मानसिक स्थिति से अनभिज्ञ उसके कानों में अनवरत गीता का विशद ज्ञान उँडेल रहा था।

"....ज्ञान उसका स्वभाव है, स्वरूप है। उसी का प्रकाश सारी इन्द्रियों को प्रकाशित करता है। स्वामी शुद्धदेव ने कितना सुन्दर, मौलिक और अति आधुनिक दृष्टान्त दिया है। जैसे एक ही विद्युतधारा अनेक बत्तियों के गुच्छे को एक ही बार प्रकाशित कर देती है, ठीक उसी प्रकार एक ही आत्म-ज्योति सारी इन्द्रियों को ज्योति प्रदान करती है। मनन और बोधन

का प्रकाश भी उसी का है, वह स्वतः प्रकाश है....''

वे लोअर बाज़ार पार करके ऊपर माल को मुड़ने लगे थे कि चेतन ने अचानक नारायण की वक्तृता का क्रम तोड़ते हुए कहा, "मैं तो वापस जाऊँगा नारायण।"

"तो क्या स्वामी शुद्धदेव की कथा सुनने न जाओगे? अभी आरम्भ होगी नौ बजे। कथा क्या कहते हैं अमृत बरसाते हैं।"

"इस समय अमृत की भी इच्छा नहीं!" और उसने विदा लेने को हाथ आगे बढ़ाया।

किन्तु नारायण ने उसके हाथ को अपने हाथ में ले कर वापस मुड़ते हुए कहा, "चलो मैं इधर ही से समाज मन्दिर चला जाऊँगा।"

होटल के पास पहुँच कर चेतन ने कहा, "मैं ज़रा देख आऊँ, उन्होंने यादराम को रोटी दी है या नहीं।" और वह चला। मैनेजर नीचे नहीं था। वह जीने की ओर बढ़ा। नारायण भी उसके पीछे-पीछे तंग ज़ीना चढ़ने लगा।

जब वह ऊपर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि यादराम पूर्ववत सीना ताने कुर्सी पर डटा बैठा है और मैनेजर से झगड़ रहा है।

"क्या बात है?" चेतन ने क्रोध को बरबस दबाते हुए कहा, "जब मैंने कहा था कि पैसे मेरे हिसाब में लिख लेना...."

बाबू जी अठाइस रोटियाँ खा चुका है, आटे की सारी लोई ख़त्म कर दी।"

"जब पैसे मैं दूँगा....!" 'मैं' शब्द पर ज़ोर देते हुए चेतन ने कहना चाहा।

"लेकिन रोटी ही का सवाल नहीं। दाल सारी ख़त्म हो गयी। हम आदमियों के लिए खाना पकाते हैं, देवों के लिए नहीं। अठाइस रोटियाँ....!"

फुफकारता हुआ यादराम उठा, "इन दो तोले के 'फुल्कों' को रोटियाँ कहते होंगे!" बड़बड़ाते और धमधमाते हुए वह बारजे में पहुँचा। हाथ

धो कर, भीगे हाथों से मुँह-पोंछ, उन्हें सिर के बालों पर फेरता हुआ, वह उनके पास से धमधमाता हुआ सीढ़ियाँ उतर गया—"वाह बाबू जी, किन मूज़ियों के यहाँ ले आये मुझे !" सीढ़ियों से चेतन को उसके यही शब्द सुनायी दिये।

तब मैनेजर साहब भी बड़बड़ाते नीचे चले गये और धम से जा कर अपनी गद्दी पर बैठ गये। नारायण ने चेतन के कंधे को छुआ। "चलो अब छोड़ो इस क़िस्से को"—उसने कहा।

चेतन का मन अत्यन्त खिन्न था। वह उस होटल से किसी तरह का सम्बन्ध न रखना चाहता था। उसने जा कर मैनेजर के सामने अपने दोनों जून खाने के पैसे रख दिये और कहा, "यह लो तीन आने यादराम के !"

मैनेजर ने व्यंग्य से दाँत निपोरते हुए पैसे वापस कर दिये—"अठाइस फुल्के तो वह खा गया। सात आने तो सिर्फ़ रोटियों के हो जाते हैं।"

"पर एक थाली के जब तीन आने लेते हो तुम ?" चेतन चिल्लाया।

"तीन आने लेते हैं !" गद्दी पर उकड़ूँ बैठ कर मैनेजर चेतन से भी ऊँची आवाज़ में चिल्लाया, "तीन आने आदमियों की खुराक के लेते हैं, जन्म से भूखे जानवरों के नहीं।"

झगड़े को सुन कर बाज़ार में भीड़ इकट्ठी होने लगी थी। बड़ी कठिनाई से नारायण ने और आठ आने चेतन से दिलवा कर मैनेजर को शांत किया और दोनों समाज मन्दिर की ओर चल पड़े।

बायीं ओर घाटी पर तैरती हुई, जल-बिन्दुओं से भारी, बोझीली बयार अज्ञात रूप से हल्के-हल्के बह रही थी। अदृश्य फुहार जैसे निःस्वप्न पंखों के सहारे उड़ रही थी। उसके स्पर्श से गाल, नाक, मुँह, आँख सब ठंडे हुए जा रहे थे। सहसा बादल बाज़ार में बढ़ आये ! बाज़ार की रोशनियाँ सिमट कर बत्तियों के गिर्द छोटे-छोटे वृत्तों में समा गयीं और चलते-चलते लोग छायाएँ बन कर रह गये। अचानक चेतन की ऐनक के दोनों शीशे धुँधले हो गये। ऐनक उतार कर उसने कमीज़ के छोर से उन्हें पोंछा, किन्तु शीशे अच्छी तरह साफ़ न हुए और जब उसने ऐनक को फिर नाक पर रखा

तो सब चीज़ों पर विचित्र सा झीना, झिलमिला पर्दा छा गया। बिजलियाँ और बत्तियाँ सब झिलमिलाती-सी दिखायी देने लगीं ! उसने फिर ऐनक को साफ़ किया, किन्तु वह साफ़ न हुई। उसकी कमीज़ कदाचित गीली हो चुकी थी और उसकी ऐनक के नमदार शीशों से छू कर उड़ता हुआ वाष्प पानी बन जाता था। हार कर उसने ऐनक उतार ली और अंधों की भाँति चलने लगा। उसकी आँखों पर दोहरा अँधेरा छा गया था—क्रोध का और 'मायोपिया' का।

नारायण के कोट की जेब में रूमाल अभी सूखा था। उससे अपनी ऐनक को साफ़ करते हुए, फिर नाक पर रख कर उसने कहा, "यह ऐनक भी एक मुसीबत है कम्बख़्त !"

चेतन ने उत्तर नहीं दिया। उसके सामने स्पष्ट वस्तुएँ भी अस्पष्ट हो रही थीं। पानी में डुबकी लगाने के बाद जैसे आँखों पर पानी का पर्दा छा जाता है, वैसा ही पर्दा-सा उसकी आँखों पर छा गया। उसे अपनी इस ऐनक पर बड़ा क्रोध आया, उसके जी में आया कि ज़ोर से घुमा कर उसे घाटी में फेंक दे। उसने धीरे से घुमाया भी, पर घाटी में फेंकने के बदले उसने उसे कोट के अन्दर की जेब में रख लिया। और वह फिर उसी घटना के सम्बन्ध में सोचने लगा।

वे दोनों सुरंग के पास से गुज़र कर चोर बाज़ार को जाने वाले मार्ग के समीप पहुँच गये थे। तभी नारायण ने कहा, "छोड़ो भी अब इस किस्से को, अन्दर-ही-अन्दर क्यों विष घोलते हो। तुमने उसे वहाँ ले जा कर ग़लती की ! इन लोगों का काम तो ढाबे-तंदूरों पर ही चलता है।"

"पर यदि कोई पेटू धनी वहाँ आ जाता तो क्या उसके साथ भी वे लोग ऐसा ही व्यवहार करते ?" चेतन ने कहा।

किन्तु उसके स्वर की कटुता दूर हो चुकी थी। देने को तो उसने यह युक्ति दे दी थी, पर अन्तर में उसे कहीं अपनी मूर्खता का आभास मिल गया था और मैनेजर के दुर्व्यवहार की अपेक्षा उसे अपनी इस मूर्खता पर अधिक दुःख था। वह इतना बड़ा हो गया है। बी० ए० पास करके एक समाचार

पत्र के सम्पादन-विभाग में काम कर चुका है। अभी तक उसे इतनी समझ नहीं कि उसे यादराम को उस होटल में न ले जाना चाहिए था। इस पुण्य-भूमि में जहाँ जाति-जाति, वर्ण-वर्ण और वर्ग-वर्ग ही में भेद नहीं, बल्कि हर जाति, हर वर्ण के अन्दर अगणित भेद-प्रभेद हैं, वहाँ होटलों और ढाबों में क्यों न अंतर हो ? तनिक साफ़-सुथरे ढाबे का स्वामी, जिसके ग्राहकों में ४० रुपये मासिक से १०० रुपया तक पाने वाले हैं, उस ढाबे को उपेक्षा की दृष्टि से क्यों न देखें, जहाँ ४० रुपया मासिक से कम पाने वाले जाते हैं ? और यह 'डेविको', 'वेंगर', 'इम्पीरियल' और 'क्लार्क' —ये अपने अहं में महान माल के होटल—ये लोअर बाज़ार के इस 'काश्मीर हिन्दू होटल' को क्यों न हेय ख़याल करें ? यदि चेतन या नारायण अपने इन कपड़ों से उनमें चले जायँ तो खाना खिलाना तो दूर रहा, शायद उन्हें कोई अन्दर भी न घुसने दे।

वे समाज मन्दिर के पास पहुँच गये थे। बाहर अहाते ही से स्वामी शुद्धदेव का गहर गम्भीर स्वर हाल में गूँजता हुआ आ रहा था। उनकी कथा शायद आरम्भ हो चुकी थी। चेतन अपनी उन मानसिक उलझनों में इस हद तक उलझा हुआ था कि नारायण कब उसका हाथ थामे उसे हाल में ले गया उसे मालूम नहीं हुआ। वह तब चेता जब वह नारायण के साथ पीछे हाल की दीवार से लगी ठंडी बेंच पर बैठ गया।

स्वामी जी तब बड़े मनोयोग से भक्ति की महिमा का बखान कर रहे थे :—

"जो मनुष्य भगवान के योग से दूर है, भक्ति-धर्म में रत नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिरता को नहीं लाभ कर सकती। निश्चयात्मक बुद्धि को स्थिर-बुद्धि कहा गया है और वह निश्चय तब तक होना कठिन है, जब तक आत्म-परमात्म-स्वरूप की उपलब्धि न हो जाय!"

चेतन ने पहले के शब्द नहीं सुने। 'आत्म-परमात्म' शब्द से वह तनिक चौंका। स्वामी जी तब कह रहे थे :

"आत्म-परमात्म स्वरूप की प्राप्ति केवल धर्म-मय-भक्ति योग से होती है। भक्ति-रहित जन को भावना भी नहीं मिलती। शुद्ध भावों का उसके

भीतर अभाव बना रहता है। ध्यान में, विचार में, मनन में, श्रद्धा और विश्वास में वह डाँवाँडोल बना रहता है। एक बात में उसकी चित्तवृत्ति नहीं ठहरती। ऐसे भावनाहीन मनुष्य को शांति नहीं मिलती। वह सदा अशांत, चंचल-चित्त रहता है। उसे सुख कहाँ मिलेगा? शांति कैसे मिलेगी?"

शांति—शांति—शांति—चेतन ने बेज़ारी से सिर हिलाया और उठ खड़ा हुआ। इतनी कटुताओं, विषमताओं, भूख, बेकारी, ग़रीबी अवहेलना, उपेक्षा, निरादर, शोषण, उत्पीड़न में घिरा कोई स्वाभिमानी स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति शांति-लाभ कैसे कर सकता है? और फिर यादराम जैसे करोड़ों अपढ़, अशिक्षित लोग इस गहन दर्शन को समझ कर उस पर कैसे चल सकते हैं? उनके पास इस मनन, बोधन और चिन्तन के लिए बुद्धि, विवेक और समय ही कहाँ है?

और समाज मन्दिर से निकल कर वह सीधा रुल्दू भट्टे के अपने उस कमरे में पहुँचा और गयी रात तक जलता-सुलगता बिस्तर पर करवटें बदलता रहा। शिमला ने एक दिन के लिए भी उसे अपने में न समोया था। परायेपन का जो आभास कविराज के घर, रुल्दू भट्टा के वातावरण और शिमले के उस दिखावे के जीवन में उसे लगा करता था, वह जैसे पूरे दल-बल से साथ उस पर छा रहा था। और वह उसी दिन वहाँ से भाग कर अपने उसी जालन्धर और लाहौर के जीवन में अपनेपन को पा लेना चाहता था। प्रातः के चार बजे होंगे, जब उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि अब वह एक दिन को भी शिमला न रहेगा, पुस्तक तो उसकी समाप्त हो ही चुकी है, सवेरे ही कविराज जी को सौंप कर कह देगा कि वह वापस जाना चाहता है।

न जाने इस निर्णय से उसे संतोष हो गया अथवा उसके तन-मन दोनों थक कर चूर हो चुके थे कि यह निश्चय करके जब वह लेटा तो उसे तत्काल नींद आ गयी।

सुबह अभी वह बिस्तर से पूरी तरह उठा भी न था कि मन्नी ने खिड़की में हाथ बढ़ा कर एक पत्र उसके सामने कर दिया :

"आप की चिट्ठी आयी है बाबूजी," उसने कहा, "कल वैद्य जी ने दी थी, पर आप तो बहुत देर में आये ।"

चेतन ने लेटे-लेटे हाथ बढ़ा कर लिफ़ाफ़ा ले लिया, फाड़ा और वहीं लेटे-लेटे पढ़ा और सहसा रज़ाई को एक ओर फेंक, उछल कर उठ बैठा।

"मन्नी मैं जा रहा हूँ ।" उसने सहसा कहा।

"कहाँ ?"

"घर ! मेरी साली की शादी है ।"



५३

"एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को, चलो भाई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को !"

एक पाँव ताँगे के बम पर और दूसरा अगले पायदान पर रखे खुले गले का कुर्ता और एड़ियों के नीचे लटकता हुआ तहमद पहने, ताँगे पर खड़ा बायें हाथ से लगाम को हिलाता और दाँयें से मूँछों को ताव देता हुआ ताँगे वाला आवाज़ लगा रहा था, "चलो भई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को, चलो कोई एक सवारी....ी....ी....ी...."

चेतन को बड़ी सड़क पार करके बस्ती के अड्डे की ओर बढ़ते हुए देख कर उसने आवाज़ लगायी—

"बैठिए बाबू साहब, बस एक ही सवारी की दरकार है ।"

अगली सीट पर एक जगह ख़ाली थी । चेतन चुपचाप वहाँ जा कर बैठ गया, किन्तु ताँगे वाला चला नहीं । तहमद को ऊपर खोंसते हुए, घोड़े को हंटर जमा कर उसने ताँगे को वहीं अड्डे पर एक चक्कर दिया और यद्यपि चार सवारियाँ पूरी हो चुकी थीं तो भी उसने ज़ोर से हाँक लगायी—

"चलो भई कोई एक सवारी बस्ती गज़ाँ को!"

चेतन चुप बैठा रहा। पहले की तरह वह ज़रा भी नहीं झल्लाया। एक और सवारी के पैसे भी उसने नहीं दिये। अपने विचारों में मग्न बैठा वह चुपचाप सामने के मकान की ओर देखता रहा जिसके परनाले से गंदा पानी निरन्तर अड्डे के नाले में गिर रहा था।

वह प्रातः जालन्धर पहुँचा था। घर पहुँच कर माँ के पाँव छुए और आशीर्वाद पाने के बाद जब उसने चन्दा के बारे में पूछा तो उसे पता चला कि चन्दा तो सात दिन से बस्ती गयी हुई है। नीला की बारात आज ही आने वाली है और उसका साला रणवीर दो बार चेतन के सम्बन्ध में पूछ गया है।

तब सितार और दिलरुबा (जिनसे उसका प्रेम कब का ख़त्म हो गया था और जिनके साथ चिटें लगा कर उसने सुन्दर अक्षरों में 'चन्दा के लिए' लिख रखा था) एक ओर रख कर, नहा-धो, कपड़े बदल वह बस्ती की ओर चल दिया था।

चल तो दिया था, किन्तु उसका मन जाने को तनिक भी न हो रहा था। एक विचित्र प्रकार का संकोच उसके मन में कहीं से आ बैठा था। उसके सामने आ गयी थी नीला; उसके साथ बीती हुई घड़ियाँ; इलावलपुर के वे दिन; उसकी अपनी मूर्खता; नीला का होने वाला विवाह और बीसियों दूसरी बातें! और उसे संकोच होता कि इलावलपुर की अपनी उस मूर्खता के बाद वह कौन-सा मुँह ले कर नीला के सामने जायगा।

कभी वह सोचता कि नीला उस घटना को भूल गयी होगी, अपने विवाह की प्रसन्नता में उसे वह सब याद न रहा होगा। और यह सोच कर वह अपेक्षाकृत त्वरा से पग धरने लगता, किन्तु दूसरे क्षण उसे ख़याल आता, यदि वह न भूली? यदि वह प्रसन्न न हुई?....और उसकी गति मन्द पड़ जाती। इसी प्रकार तीव्र-मन्द गति से चलता-चलता वह बस्ती के अड्डे

पर पहुँच कर ताँगे में आ बैठा था। किन्तु उसकी विचारधारा न टूटी थी। उसे पता नहीं कब ताँगा चला, कब बस्ती के अड्डे पर पहुँचा, वह कब उतरा और बस्ती का टेढ़ा-मेढ़ा, बाज़ार पार कर पंडित वेणी प्रसाद के मकान के सामने जा पहुँचा।

ड्योढ़ी पार करते ही सब से पहले जिससे उसका साक्षात्कार हुआ, वह थी स्वयं नीला। आँगन के कोने में नाली पर अपनी पतली बाँह बढ़ाये हुए वह बैठी थी। उसकी कलाई पर जोंकें लगी हुई थीं और उसका लोहू पी कर धीरे-धीरे फूल रही थीं।

पल भर के लिए चेतन उस गोरी-गोरी कलाई और उससे चिमटी हुई उन भूरी-भूरी जोंकों को देखता रहा। फिर वहाँ से हट कर चेतन की दृष्टि उसके मुख पर गयी। उसे लगा जैसे वह कुछ पीला हो गया है। उसे लगा जैसे नीला कुछ दुबली हो गयी है। परन्तु उसने यह भी पाया कि पीली दुबली हो कर वह पहले से भी सुन्दर दिखायी देने लगी है। वह शायद 'माइयाँ' बैठी थी, क्योंकि उसके कपड़े मैले थे और उन पर जगह-जगह पीले उबटन के धब्बे पड़े हुए थे। उन मटमैले कपड़ों में भी उसकी देह का सोना जैसे कुन्दन बन कर दमक उठा था। यौवन अभी पूरे वेग से न उतरा था और वह उस अर्ध-विकसित कली-सी लगती थी जिसे सूर्य के स्नेह-स्पर्श ने अभी फूल न बनाया हो।

एक रूखी-सी 'नमस्ते' चेतन की ओर फेंक कर नीला फिर अपनी कलाई से चिमटी हुई जोंकों को देखने लगी।

चेतन का समस्त संकोच जैसे पूरे वेग ले लौट आया। उसके पास से हो कर वह चुपचाप दालान की ओर बढ़ गया और लोहे की खाली कुर्सी पर जा बैठा।

क्या शिमले से जालन्धर तक इतनी दूर वह केवल यह रूखी-फीकी नमस्ते पाने के लिए आया था? उसे खेद हुआ, वह क्यों चला आया इस विवाह में। इलाबलपुर की घटना के बाद उसे कभी नीला के सम्मुख न

आना चाहिए था।

उसने कनखियों से नीला की ओर देखा। चेतन की ओर पीठ किये वह निरन्तर उन जोंकों को देख रही थी। एक बार भी पलट कर उसने चेतन की ओर न देखा था। कदाचित वह उस घटना को न भूली थी, उसने उसे क्षमा न किया था। वह क्यों चला आया वहाँ ? और उसका जी चाहा कि वापस भाग जाय। किन्तु तभी उसकी बड़ी-साली गोद में अपने डेढ़-दो वर्ष के रिरियाते बच्चे को उठाये हँसती-मुस्कराती वहाँ आ गयी।

"नमस्ते जी !" बच्चे को पुचकारते हुए उन्होंने चेतन को अभिवादन किया।

निमिष भर के लिए चेतन के कानों में नीला के वे शब्द गूँज गये जो उसने इलावलपुर में अपनी इस बड़ी बहन के गृह-जीवन के बारे में कहे थे। इस फूहड़ को कौन इंजीनियर पसन्द करेगा—चेतन ने सोचा, किन्तु प्रकट उसने हँस कर कहा, "नमस्ते मीला जी, कहिए प्रसन्न तो हैं।"

"कहिए कब आये ?" मीला जी बोलीं, "आप की राह देखते-देखते तो आँखें पक गयीं।"

"आज ही सुबह आया हूँ।" चेतन बोला और फिर उसने नीला की ओर देख कर कहा, "नीला की बाँह में क्या कष्ट है ?"

"फोड़ा उठ आया था कलाई पर, हकीम ने जोंकें लगाने का आदेश दिया है।"

"ब्याह स्थगित क्यों नहीं कर दिया आपने ?"

"लड़के को (दूल्हे को) फिर छुट्टी नहीं मिल सकती। बड़ी मुश्किल से एक महीने की छुट्टी ले कर आया है। सेना की नौकरी ठहरी, फिर जगह समीप हो तो भी कुछ हो सकता है। किन्तु बर्मा से तो बार-बार नहीं आया जा सकता।"

"बर्मा !" चेतन के दिल को धक्का-सा लगा, "क्या करता है वह ?"

"मिलिट्री एकाऊंटेंट है रंगून में।"

तब चेतन के सामने नीला का पीला दुर्बल मुख घूम गया। उसके गले में गोला-सा आ कर अटक गया। आर्द्र हो कर उसने कहा, "पर आपने बड़ी दूर तय की नीला की शादी।"

उत्तर में उसकी साली ने बताया कि लड़का अढ़ाई सौ रुपया मासिक पाता है और नाते में उनका देवर होता है—उनके श्वसुर के बड़े भाई का लड़का। बड़ा नेक, सहृदय और परिश्रमी है। पाँच वर्ष हुए, उसकी पत्नी मर गयी थी। इसके बाद उसने विवाह नहीं किया। एक से दूसरे स्थान पर बदली होती रहती थी, एक जगह टिक न पाता था। अब उसे विश्वास है कि शीघ्र ही उसकी बदली पंजाब में हो जायगी, इसलिए उसने लिखा था कि उसके लिए लड़की देख दी जाय। उन्हें पता चला तो उन्होंने झट नीला की सगाई वहाँ कर दी।

अपनी इस क्रियाशीलता पर अपने आप हँसते हुए मीला जी ने बच्चे के निरन्तर रिरियाने पर एक हल्का-सा थपेड़ा उसकी पीठ पर जमाते हुए कहा, "कम्बख्त इतना बड़ा हो गया है, फिर भी मेरी जान खाये जाता है।" तभी शायद काम में व्यस्त चन्दा उधर से गुज़री। तब चिल्ला कर उसे चेतन के लिए कुछ लाने का आदेश दे कर चेतन की बड़ी साली पड़ोसिन से बात करने को बढ़ गयी और वह मर्माहत-सा वहाँ बैठा रह गया।

रंगून, विधुर (पाँच वर्ष का) और मिलिट्री एकाऊँटेंट—ये तीनों शब्द उसके कानों में बार-बार गूँजने लगे। चेतन ने एक बार फिर नीला को देखा। उसके हाथों से जोंकें उतार ली गयी थीं। फोड़े का उभार कम हो गया था। रक्त-स्राव के कारण उबटन की केसर से मिला उसका पीलापन कुछ और अधिक बढ़ गया था। उसकी आयु पन्द्रह-सोलह वर्ष की थी, पर उस समय वह तेरह की दिखायी देती थी। यह कली खिलने से पहले ही बिंध जायगी और फिर धीरे-धीरे मुरझा जायगी! चेतन के हृदय में टीस-सी उठी। यदि वह इलावलपुर में पण्डित वेणीप्रसाद से वह सब न कहता तो क्यों नीला इतनी जल्दी काले कोसों दूर, एक विधुर मिलिट्री एकाऊंटेंट की दूसरी पत्नी बनने जाती? अपनी मूर्खता की गुरुता और भी बढ़ कर

चेतन के सामने आने लगी। उसके लिए वहाँ बैठना दुष्कर हो गया। वह उठा, पर तभी अपने गोल गुलगोथने मुख पर मृदु-हास बिखेरती हुई, तश्तरी थामे चन्दा वहाँ आ गयी।

सारा दिन चेतन चोरों की भाँति नीला से बातें करने का अवसर ढूँढ़ता रहा। वह अवश्य उससे रुष्ट थी। वह इतने महीने के बाद आया था, यदि वह रुष्ट न होती तो अपनी मुखर चंचलता से घर भर को गुँजा देती। विवाह में उसकी चंचलता रुक जाय—चाहे वह उसका अपना ही क्यों न हो—ऐसा सम्भव न था। पर वह तो ऐसे यन्त्रचालित-सी घूमती थी, जैसे विवाह उसका अपना नहीं, किसी दूसरी सर्वथा अपरिचित लड़की का हो। चेतन से वह कन्नी काटती रही। सहेलियों, बहनों, भावजों या पड़ोसिनों में घिरी रही। दो-एक संक्षिप्त शब्दों या एक-आध वाक्य के अतिरिक्त उन दोनों में कोई भी बात न हो सकी थी।

"नीला कैसी हो ?"

"अच्छी हूँ !"

और वह किसी सहेली से कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात करने चल दी।

"नीला तुम तो दुर्बल हो गयी हो।"

"नहीं तो जीजा जी।"

और सहसा भावज से कोई आवश्यक मन्त्रणा करना उसे याद आ गया।

"नीला अब तो बड़ी दूर चली जाओगी।"

"हाँ जीजा जी !"

"नीला तुम मुझसे रुष्ट हो ?"

"नहीं जीजा जी !"

और इससे अधिक उत्तर चेतन उससे न पा सका था। उस छोटे-से आँगन में एक साथ इतना कुछ हो रहा था। इतनी चहल-पहल थी, इतने लोग आ-जा रहे थे और फिर इस सब कोलाहल में उसकी बड़ी साली अपने देवर के स्वभाव, वेतन, रहन-सहन आदि का बखान निरन्तर इस प्रकार करती रही थी कि नीला से सदा को बिछुड़ने से पहले उससे खुल कर बातें कर लेने, उससे क्षमा माँग कर हल्का हो लेने का अवसर चेतन न पा सका था। झल्ला कर खाने के बाद वह ऊपर चौबारे में निवाड़ के पलंग पर जा लेटा था।

रंगून के उस विधुर मिलिट्री एकाऊंटेंट की प्रशंसा न जाने चेतन को क्यों अच्छी न लगी थी। लेटे-लेटे उसके मन में सहसा विचार उठा कि नीला के इस मौन का कारण कदाचित कहीं इतना अच्छा दूल्हा पाने का गर्व तो नहीं। उसकी साली नीचे आँगन में फिर किसी पड़ोसिन के सामने अपने देवर की प्रशंसा कर रही थी, अपनी बहन के भाग्य को सराह रही थी और लड़का रोक लेने में उसने जिस त्वरा से काम लिया था, उसकी प्रशंसा चाह और पा रही थी। चेतन के लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया। अपने भावी पति के इन गुणों को सुन कर नीला की आकृति पर कैसे भाव आते हैं, यह जानने के लिए वह आतुर हो उठा। झपाके के साथ वह नीचे गया। दालान के अँधेरे कोने में घुटनों पर ठोड़ी टिकाये, अपने दोनों हाथ पैरों पर रखे, नीला चुप बैठी थी। न जाने वह अपनी बहन की कोई बात सुन भी रही थी या नहीं। चेतना-हीन, भावना-हीन-सी वह बैठी थी। बहाने से जब चेतन उसके पास जा बैठा जो नीला ने ठोड़ी के बदले गाल अपने घुटनों पर टिका कर मुँह दूसरी ओर कर लिया। क्या नीला रो रही है? चेतन का हृदय धक-धक करने लगा। क्या उसे इस विवाह का दुख है? और चेतन मन-ही-मन सान्त्वना भरे, पश्चात्ताप भरे, क्षमा भरे कुछ शब्द सोचने लगा। पर तभी उसकी सास ने नीला को आवाज़ दी। (बारात आने

वाली थी और उससे पहले किसी रस्म का पूरा होना आवश्यक था।) नीला उठ कर आँगन में गयी तो प्रकाश में चेतन ने देखा कि नीला के मुख पर रोने जैसा कोई चिन्ह नहीं। वहाँ दर्प की भी कोई भावना नहीं। राग-द्वेष, उल्लास-विषाद, सुख-दुख का कोई भी भाव वहाँ नहीं। एक विचित्र, कठोर, उदासीनता ही वहाँ छायी है। चेतन विमूढ़-सा खड़ा रह गया।

तभी बाहर बारात के आने का शोर मचा और उसकी सास ने उसे बारात के स्वागत को जाने के लिए कहा।

बस्ती के एक एडवोकेट से माँगी हुई ब्यूक कार में दूल्हा के रूप में जो व्यक्ति मुँह पर सेहरे लगाये बैठा था, उसे देख कर न केवल चेतन को किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं हुई, बल्कि नीला के भाग्य और भविष्य पर उसका हृदय करुणा से भर आया।

क्या यही वे देवर महोदय हैं, जिनके गुण सुबह से गाये जा रहे थे? बस्ती के एक दरवाज़े से बस्ती के दूसरे दरवाज़े के बाहर धर्मशाला तक (जहाँ बारात के ठहराने का प्रबन्ध था) बारात के साथ जाते-जाते, उसके उतरने और नाश्ते आदि का प्रबन्ध करते-कराते चेतन ने इस मिलिट्री एकाऊंटेंट दूल्हा को हर कोण से देख लिया। गंजी होती हुई चाँद पर ज़वानी की यादगार के रूप में चंद बाल, आँखों के नीचे बढ़ते हुए गढ़े, उभरे हुए जबड़े, पिचके हुए कल्ले, (जहाँ हँसने से तो दूर, मुस्कराने ही से झुर्रियाँ पड़ जाती थीं) कृत्रिम दाँत और पैंतीस से चालीस को पहुँचती हुई उम्र, यह था वह 'लड़का' जिसे श्रीमती प्रमिला देवी ने अनदेखे ही अपनी छोटी बहन के लिए चुना था।

बारात को धर्मशाला में उतार कर जब चेतन घर पहुँचा तो उसने रसोई घर की चौखट में खड़ी अपनी सास को अपनी बड़ी साली से कहते पाया :

"तुमने देखा न था लड़के को मीला?"

चेतन की बड़ी साली ने आँखों में आँसू भर लिये। "मुझे क्या पता था चाची कि इतनी उम्र है, वह तो बर्मा ही में था जब मैं ससुराल गयी, मुझे तो चित्र दिखाया गया था। पिता जी नीला की सगाई जल्दी करने पर ज़ोर दे रहे थे। अढ़ाई सौ रुपया लड़के का वेतन था। मैंने रोक लिया।"

"बेचारी नीला! चेतन की सास ने दीर्घ-निश्वास छोड़ा, "वह तो बच्ची है अभी।"

अपनी सास के यह शब्द तीर की भाँति चेतन के अन्तर में पैठ गये। उसके लिए वहाँ बैठना, नीला से आँखें मिलाना कठिन हो गया। वह फिर ऊपर चौबारे में चला गया और जा कर अनबिछे पलंग पर लेट गया।

नीला के पिता ने जल्दी की और उसकी बहन ने अनदेखे अनजाने (रिश्ते में अपने दूर के) देवर का केवल चित्र देख कर, उससे अपनी छोटी बहन की सगाई कर दी। पर उनकी इस जल्दी की तह में था क्या? इलावलपुर की वह छोटी-सी घटना, जब नीला ने अपने इस डरपोक जीजा जी के बालों पर हाथ फेरते हुए अपना स्नेह प्रकट किया था! क्या वह इतना बड़ा अपराध था? इतना बड़ा पाप था कि उसको जीवन भर उस बूदम मिलिट्री एकाऊंटेंट से बाँध दिया जाय। उसने क्यों नीला के पिता से वह सब कहा? क्यों वह चुप न रहा? उसे लगा जैसे इस प्रकार नीला का गला घोंटने में समस्त दोष उसी का है। आत्म-भर्त्सना से उसका गला भर आया, उसके सामने नीला और उसके दूल्हा का चित्र साथ-साथ आया और उसके जी में आया कि जा कर नीला के सामने फर्श पर माथा पटक दे और उस समय तक न उठाये जब तक वह उसे क्षमा न कर दे। तभी उसने सुना कि चौबारे के बाहर दो स्त्रियाँ धीरे-धीरे मिसकौट कर रही हैं:

"लड़की का गला घोंट दिया बहन ने, ललतो की माँ! कुछ सुना तुमने. चालीस-पैंतालीस वर्ष का होगा दूल्हा।"

"और नीला तो अभी बच्ची है," ललिता की माँ बोली।

"मैंने तो यह भी सुना ललतो की माँ कि यह तो उसकी तीसरी शादी है।"

"तीसरी !" ललिता की माँ आश्चर्य प्रकट कर रही थी कि किसी ने नीचे से आवाज़ दी, "ललतो की माँ, छन्ने भरने जा रही हैं हम, आओ जल्दी।"

और ललिता की माँ अपनी साथिन को साथ लिये नीचे चली गयी !

"तीसरी शादी"—ये दो शब्द हथौड़े की निरन्तर चोटों की भाँति चेतन के मस्तिष्क को ठकोरने लगे और लेटे रहना उसके लिए कठिन हो गया। वह फिर उठा।

नीचे आँगन में मुहल्ले भर की स्त्रियाँ इकट्ठी हो रही थीं। रणवीर और उसकी पत्नी रस्सी, डोल और मिट्टी के छन्ने (कूज़े-कुल्हड़) लिये हुए उन्हें भरने के लिए चलने को तैयार थीं। चेतन के नीचे उतरते-उतरते स्त्रियाँ रणवीर को आगे-आगे किये, नीला को झुरमुट में लिये, छन्ने भरने की रस्म पूरी करने के लिए चल दीं। चेतन चुपचाप उनके पीछे हो लिया।

डोल के ऊपर भर कर आने पर उसे फिर कुएँ में उलटती, रणवीर को सताती, गाती, हँसी-ठठोली करती, बस्ती के विभिन्न कुओं से छन्ने भरती हुई स्त्रियाँ जब दरवाज़े के बाहर उस धर्मशाला की ओर को मुड़ीं जिसमें बारात उतरी थी तो चेतन उनके साथ नहीं गया, वह सीधा चलता गया। धर्मशाला के आगे की दो-एक दुकानें और लकड़ी के टाल पीछे रह गये। चेतन चलता गया, यहाँ तक कि वह खेतों के समीप पहुँच गया। तब वह एक खेत की मेड़ पर हो लिया।

तृतीया का चाँद रात के उस पहले पहर ही में क्षितिज की गोद में सो गया था। तारे अपनी टिमटिमाती हुई ज्योत्सना से रात के बढ़ते हुए अंधकार को भरसक दूर रखने का प्रयास कर रहे थे। खेतों की मेंड़ों पर जहाँ-तहाँ उगे हुए शीशम के घने पेड़ अपनी सत्ता की सारी भयावहता के साथ प्रहरियों-से खड़े थे। चारों ओर निस्तब्धता छायी हुई थी। केवल दायीं ओर पेड़ों के झुरमुट में रहँट निरन्तर रिरिया रहा था और दूर धर्मशाला में छन्ने भरती हुई स्त्रियाँ गीत गा रही थीं। चेतन को लगा जैसे रहँट के रिरियाते संगीत में और उन स्त्रियों के गाने में कोई अंतर नहीं। वे भी जैसे उस

रहँट ही की भाँति रिरिया रही थीं। उनकी रूह का कोई तार जैसे उनके संगीत में न था, केवल प्रथा की पूर्ति के लिए उनके ओठ हिल रहे थे।

चेतन रहँट के पास ही पड़े हुए एक पुराने शीशम के तने पर बैठ गया। कोई कुत्ता ज़ोर-ज़ोर से भूँक उठा, एक चमगादड़ पंख फटफटाता हुआ ऊपर से गुज़र गया और फिर सन्नाटा छा गया। दूर धर्मशाला में स्त्रियाँ छन्ने भर और इस बहाने नीला को दूल्हा के दर्शन कराके चली गयीं। किन्तु चेतन वहीं बैठा रहा और रहँट उसी तरह रीं-रीं करता रहा।

●

५४

"जीजा जी, जीजा जी ?"

करवट बदल कर चेतन ने आँखें खोलीं। सामने के दरवाज़े से नवोदित सूर्य की धूप सीधी उसकी आँखों में पड़ रही थी। वह जान न सका कि गहरी नींद से उसे यों झकझोरने वाला कौन है ? किन्तु दूसरे क्षण सूर्य की किरणों को सीधे चेतन के मुख पर पड़ने से रोकता हुआ उसका बड़ा साला रणवीर उसके सामने आ गया।

"जीजा जी हुनर साहब आये हैं।"

"हुनर साहब ?" चेतन ने व्यंग्य भरी दृष्टि रणवीर के उल्लसित मुख पर डाली और करवट बदलते हुए कहा, "तुम चलो रणवीर, मैं कुछ देर बाद आता हूँ।"

रणवीर आशा करता था कि हुनर साहब जैसे प्रसिद्ध कवि का नाम सुनते ही उसके जीजा जी उछल कर उठेंगे और उसके साथ नीचे को भाग चलेंगे, किन्तु चेतन की अन्यमनस्कता और उसकी दृष्टि के व्यंग्य को देख कर उसे अधिक अनुरोध करने का साहस न हुआ। "वे सुबह से आये हुए हैं। मैं पहले भी दो बार आप को बुलाने आया था, पर आप सोये हुए थे। हमारे सामने के मकान की बैठक में ठहरे हैं। आप वहीं आइएगा।" एक ही साँस में यह सब जैसे चेतन की गर्दन के पृष्ठ-भाग को सुना कर रणवीर चलने को हुआ। किन्तु फिर कुछ रुक कर उसने इतना और कहा, "हुनर

साहब एक बड़ा सुन्दर सेहरा लिख रहे हैं।"

"सेहरा"—चेतन मन-ही-मन हँसा। न जाने उस सेहरे की रचना में किस-किस कवि की कृति पर डाका पड़ेगा, न जाने वह (अभी लिखा जाने वाला) सेहरा पहले कितने दूल्हों और उनके सगे-सम्बन्धियों को प्रसन्न कर चुका होगा और उसके बल पर 'हुनर' साहब ने कितनी जेबों को हल्का करने का 'हुनर' दिखाया होगा? रणवीर की आँखों में जो उल्लास और उसकी वाणी में जो उत्साह था, उसे देख कर चेतन को अपना उस समय का उल्लास और उत्साह स्मरण हो आया, जब पहली बार हुनर साहब से उसकी भेंट हुई थी। मन-ही-मन रणवीर की मूर्खता पर दया-भाव से हँस कर उसने आँखें मूँद लीं।

चेतन सारी रात जागता रहा। बारात के आने से ले कर विवाह-संस्कार के अन्तिम मन्त्र तक खोया-खोया-सा प्रत्येक रस्म को देखता रहा था। नीला के इस अनमिल विवाह पर उसे अतीव दुख था। और यद्यपि वह अपने मन को कई तरह से समझा चुका था, किन्तु फिर भी हृदय के किसी कोने में वह अपने आप को उसका दोषी समझता था। नीला जीते जी, उसके देखते-देखते, कब्र में डाली जा रही थी और वह विवश था। और फिर ये बाजे, ये रस्में, ये गीत? जिस चीज़ ने उसकी मानसिक पीड़ा और भी अधिक बढ़ा दी थी, यही गीत थे। उसने ज्यों ही दूल्हा को देखा था उसके कानों में 'सोहाग' के वे बोल गूँज उठे थे जो उसने घर में प्रवेश करते ही सुने थे—

चन्दन दे ओहले ओहले क्यों खड़ी नी बेटी ?
चन्दन दे ओहले ?
में तें खड़ी आं बाबल जी दे कोल, बाबल वर लोड़िए।
नी बेटी !
केहो जेहा वर लोड़िए ?

बाबल, ज्यों तारियाँ विच्चों चन्न, चन्न विच्चों कान्ह,
कन्हैया वर लोड़िए*

साँझ को देर तक रहँट के पास बैठे रहने के बाद जब वह लौटा था तो घोड़ी की रस्म कभी की समाप्त हो चुकी और लग्नों की तैयारियाँ हो रही थीं। दूल्हा वेदी के नीचे आ बैठा था, पंडित जी हवन की आग सुलगा रहे थे और आँगन में वर और वधू-पक्ष के लोग इकट्ठे हो चुके थे। चेतन चुपचाप जा कर आँगन की दीवार से पीठ लगा कर बैठ गया था।

नीला का विवाह आर्यसमाजी रीति के बदले सनातनी ढंग से हो रहा था। पंडित वेणीप्रसाद स्वयं आर्यसमाजी विचार के थे, किन्तु मध्य-वर्गीय घरानों में प्रायः लड़की के पिता का धर्म, वर अथवा उसके पिता के विचारों के अनुसार बदलता रहता है। समस्त रस्में जिनका अभाव चेतन को अपने विवाह पर खटकता था, अपने समस्त गुण-दोषों के साथ यहाँ विद्य-मान थीं। भाँवरें भी सनातनी ढंग से हो रही थीं। जब गठरी-सी बनी नीला को दो बालिश्त का घूँघट काढ़े वेदी के नीचे खारे पर बैठा दिया गया तो सामने बरामदे में बैठी हुई स्त्रियों ने गीत छेड़ दिया।

ओह दिन याद कर कान्हा....

कान्हा! और चेतन के कानों में फिर सुहाग के वे बोल गूँज उठे। 'कैसा कान्ह वर ढूँढ़ा है नीला के लिए!' उसने मन-ही-मन कहा और एक व्यंग्यमयी मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी। कौन लड़की है जो चाँद-सा वर नहीं चाहती? किन्तु चाँद-सा वर क्या सभी को सुलभ है? उनकी बात तो दूर रही जो स्वयं कुरूपा होने पर भी चाँद-सा वर चाहती हैं, पर उन युवतियों में से भी कितनों को ऐसा वर मिलता है जो हर प्रकार से ऐसे वर

---

*ऐ बेटी तू चन्दन के पेड़ की ओट में क्यों खड़ी है?
मैं तो बाबल (पिता) के हुजूर में खड़ी हूँ क्योंकि मुझे वर चाहिए!
ऐ बेटी तुझे कैसा वर चाहिए?
ऐ पिता, जैसे तारों में चाँद और चाँद में कान्ह, वैसे ही मुझे भी कन्हैया-सा वर चाहिए।

के योग्य हैं ? प्रति दिन कान्त-कामिनी तरुणियाँ, अनमिल युवकों, अधेड़ों अथवा विधुरों के संग बाँध दी जाती हैं और ये अपढ़ स्त्रियाँ अपने गीतों में निरन्तर उन्हें कान्ह और कन्हैया बनाया करती हैं। क्या इनके आँखें नहीं ? क्या ये चुप नहीं रह सकतीं ? यदि लड़की का गला घोंटना ही अभीष्ट है तो क्या यह 'सत्कार्य' मौन रूप से नहीं हो सकता ? क्या इन बाजों-गाजों और बेचारी लड़की के जले हुए जी को और भी जलाने वाले इन गीतों के बिना काम नहीं चल सकता ? चेतन ने देखा उन गाने वालियों में उसकी सास भी थी, जिसने साँझ ही को भरे हुए गले से कहा था—'और नीला तो अभी बच्ची है,' और वह पड़ोसिन भी थी जो बोली थी, 'लड़की का गला घोंट दिया बहन ने ललतो की माँ !' यन्त्र-चालित-सी वे इन घिसे-पिटे गीतों को भावना-रहित, निर्लिप्त भाव से गा रही थीं। उनके लिए जैसे इन गीतों को गाना विवाह की इस रस्म की पूर्ति का एक अंग मात्र था।

और चेतन को यह सब सोचते-सोचते उन समस्त रस्मों से घृणा हो उठी—उन अंधी-बहरी रस्मों से—जो भावनाहीन चक्की की भाँति मानवों के हृदय और जीवन पीसे जा रही थीं। क्या कभी ऐसा समाज न बनेगा जो इन रस्मों से स्वतन्त्र हो या जहाँ ये रस्में देखें, सुनें, अनुभव करें और समय के अनुसार (बलिदान चाहे बिना) अपना चोला बदलती रहें।

अपने मनोभावों का, उस पीड़ा का जो उसके अन्तर में प्रति पल तीव्र-तर हो रही थी, विश्लेषण करते-करते चेतन नीला की मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में सोचने लगा। वह क्या सोचती होगी ? ये गाने और रस्में उसके मन पर क्या प्रभाव डाल रहे होंगे। उसने आँख उठा कर नीला की ओर देखा। गठरी-सी बनी वह चुपचाप बैठी विवाह-संस्कार में योग दे रही थी। चेतन को लगा, जैसे वह मिट्टी का एक बड़ा-सा लौंदा बन गयी है और उससे अन्तर की बिजली सदा के लिए बुझ कर रह गयी है।

आँगन की दीवार से पीठ लगाये वह इसी प्रकार खौलता रहा था और विवाह की ज़ंजीर नीला के गिर्द क़ठिन से कठिनतर होती गयी थी। वह

बैठा रहा था और पण्डित ने अन्तिम मन्त्र पढ़ कर वर के बड़े भाई को बधाई दी थी और स्त्रियों ने अलसाये हुए कंठों से नया गाना छेड़ दिया था।

रणवीर के चले जाने के बाद चेतन ने फिर सोने का प्रयास किया। पर उसकी मुँदी हुई आँखों के समक्ष रात की घटना अपने छोटे-से-छोटे ब्योरे के साथ घूमने लगी और उसके विशृङ्खल विचार और भी बिखर उठे। उसकी नींद एकदम उड़ गयी। उसकी आँखें भी मुँदी न रह सकीं। उसने करवट बदल ली। दिन बहुत चढ़ आया था। प्रकाश से कमरा जगमगा रहा था। नीचे खूब चहल-पहल थी। पर वह उठा नहीं। वहीं लेटा चुपचाप शून्य में देखता रहा।

यदि वह नीला के पिता को सब बात न बताता, उसकी विचारधारा ने एक दूसरा मोड़ लिया—तो करता भी क्या? क्या वह चन्दा को छोड़ सकता था? क्या नीला से विवाह कर सकता था? और वह मन-ही-मन हँसा। उस आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति में यह कब सम्भव था। फिर यदि नीला का विवाह किसी सुन्दर, स्वस्थ, तरुण से होता तो क्या वह इतना दुख मानता। तब उसका यही कृत्य जो पाप बन कर रह गया था, पुण्य हो जाता। बारात में उसका परिचय एक अति सुन्दर स्वस्थ लड़के के साथ हुआ था। उसका नाम था त्रिलोक और वह नीला के जेठ का लड़का था। चेतन ने सोचा, यदि नीला का विवाह चचा से न हो कर भतीजे से होता तो कितना अच्छा होता? पर त्रिलोक शायद किसी सम्पन्न किन्तु मूर्ख, कुरूप लड़की से ब्याहा जायगा और चचा उस लड़की का पति बनेगा जो कदाचित भतीजे के लिए उपयुक्त थी। और चेतन को लगा कि उसके, नीला के, त्रिलोक के इस जर्जर मध्य-वर्ग के समस्त स्त्री-पुरुषों के गिर्द रूढ़ि-ग्रस्त समाज की लौह-दीवारें खड़ी हैं। क्या दीवारें कभी न गिरेंगी? क्या इनकी चारदीवारी में घुट कर मरने वाले स्वतंत्र हो कर कभी सुख की साँस न ले सकेंगे?

बाहर गली में बाजे बजने लगे। बारात कदाचित खाना खाने के लिए आ रही थी। चेतन उठा। अँगुलियों में अँगुलियाँ डाल कर उसने एक लम्बी

अँगड़ाई ली और अपने उन्मन विचारों को सिर के एक झटके से दूर करने का प्रयास करते हुए वह बाहर निकल गया।

●

५५ नहा धो कर जब वह गली के चौक में गया तो बारात खाना खा चुकी थी और खादी का कुर्ता-धोती पहने, बड़ी अदा से हाथ में कागज़ लिये हुए हुनर साहब खड़े थे। रणवीर ने बड़े गर्व-स्फीत शब्दों में उनकी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया था और वे सेहरा पढ़ने वाले थे। चेतन ने सोचा था कि सेहरा पढ़ा गया होगा। उसके जी में आया कि मुड़ जाय, किन्तु इस प्रकार आ कर चला जाना किसी को बुरा न लगे, इस विचार से वह एक ओर जा कर चुपचाप खड़ा हो गया।

सेहरा पढ़ने से पहले हुनर साहब ने एक छोटा-सा भाषण देना आवश्यक समझा। बताया कि उनका सम्बन्ध वर तथा वधू दोनों पक्षों से है। जन्म उन्होंने जालन्धर में लिया है, किन्तु युवावस्था उनकी अमृतसर में बीती है। इसलिए यद्यपि वे वधू-पक्ष की ओर से आये हैं तो भी उन्हें अधिकार होता है कि वर का सेहरा पढ़ें। और इस तरह वर के साथ अपना नाता स्थापित करके उन्होंने सेहरा पढ़ना आरम्भ किया।

वही पुरानी तरज़ और वही पुराने विचार—सेहरे और दूल्हे की प्रशंसा में चाँद-तारों की उपमाएँ। हर शेर के बाद चेतन सोचता—क्या इस कवि को दिखायी नहीं देता कि दूल्हा के मुख से एक भी उपमा मेल नहीं खाती। रात स्त्रियों के गीतों को सुन कर उसके हृदय में क्रोध का जो बवंडर उठा था, वह इस सेहरे को सुन कर फिर हरहरा उठा। तभी हुनर साहब ने उपस्थित सज्जनों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हुए शेर पढ़ा—

ये तार हैं सेहरें के गर सीमीं शुआएँ तो
अपने में है आरिज़ भी दूल्हे का महे कामिल*

---

*सेहरे के तार यदि चाँद की किरणें हैं तो वर का मुख भी पूर्णमासी का चाँद है।

चेतन और न सुन सका। अधेड़ उम्र के इस गंजे विधुर को पूर्णिमा का चाँद कहना! चेतन को लगा कि न केवल सेहरा पढ़ने वाला ही अंधा है, बल्कि सुनने वाले भी आँखों से वंचित हैं। उसका ध्यान सहसा रणवीर की ओर गया। विस्फारित नेत्र, सिर से पैर तक मानो कान बना वह खड़ा था। ऐसा लगता था जैसे हुनर साहब के मुखारविन्द से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अमृत-समान वह पी रहा है। चेतन ने चाहा जा कर दो थप्पड़ उस बूदम के मुँह पर जमा दे। सेहरा पढ़ने के लिए हुनर साहब को बुला लाया है! यदि कहीं उसकी अपनी बहन इस जैसे दूल्हे से ब्याही जाती, चेतन ने सोचा तो वह सेहरे के बदले मरसिया ‡ पढ़ता, फिर चाहे उसके पिता मार-मार कर उसकी चमड़ी ही क्यों न उधेड़ देते।

पर उसने रणवीर से कुछ भी नहीं कहा, केवल मन-ही-मन उसे गधे की उपाधि से विभूषित करके और दाँतों में उसे 'गदहा' पुकार कर वह चुपचाप वहाँ से खिसक आया।

नीला गठरी-सी बनी दालान के एक कोने में बैठी थी। सहानुभूति का एक अथाह सागर उसके लिए चेतन के हृदय में ठाठें मार उठा। वह उसके पास पड़ी हुई लोहे की कुर्सी पर जा बैठा। किन्तु नीला ने उस ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। वह बैठी रही और पाँव के अँगूठे से धरती पर बे-नाम-से चित्र बनाती रही।

चेतन नीला से कुछ कहना चाहता था। पर क्या कहे, उसे सूझ न पड़ा। वह चुपचाप बैठा रहा और नीला ही की भाँति पाँव के अँगूठे से धरती पर बे-नाम-से चित्र बनाने लगा।

सहसा बाहर ज़ोर-ज़ोर से बाजे बज उठे। शायद हुनर साहब ने सेहरा ख़त्म कर दिया था और बारात वापस जाने को तैयार थी। तभी बाहर आँगन में चेतन को अपनी बड़ी साली के ये शब्द सुनायी दिये, "चले

‡ मरसिया = किसी के देहांत पर पढ़ी जाने वाली कविता।

आओ इधर त्रिलोक, यह रही तुम्हारी चाची।"

दूसरे क्षण हँसता-लजाता त्रिलोक दालान की चौखट में आ खड़ा हुआ। चेतन उसके लिए कुर्सी छोड़ कर अलग हो गया।

"नीला यह है त्रिलोक, तेरे जेठ का लड़का।"

चेतन की दृष्टि उस नवयुवक पर गयी। पंच-शर-हस्त मदन-सा सुन्दर! फिर उसने नीला की ओर देखा—रति क्या इससे अधिक रूपवती होगी?

तभी त्रिलोक ने कहा, "चाची जी नमस्ते!"

नीला ने आँख उठा कर देखा। चेतन को लगा जैसे क्षण भर के लिए नीला की दृष्टि त्रिलोक के मुख पर रुकी, उसका पीला-सा मुख लाल हो उठा और उस अँधेरे में उसकी उदास आँखों में एक अज्ञात-सी चमक कौंध गयी।



५५

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे, बाबल असाँ उड़ जाना।
साडी लम्बी उडारी वे, खबरे किस देस जाना?*

आधी रात की निस्तब्धता में यह करुण गीत, जैसे किसी दूरस्थ प्रदेश से आ कर निरन्तर चेतन के कानों में दर्द उँडेल रहा था। उसका गला भरा आ रहा था और आँखें आर्द्र हो चली थीं।

नीला की शादी हो गयी थी। चेतन अपनी पत्नी को वापस जालंधर ले आया था। यद्यपि चन्दा इतने दिनों के पश्चात् उससे मिली थी और यद्यपि रात के आकाश पर बादल रिमझिमा रहे थे और ऋतु अत्यन्त सलोनी और सुहानी थी, किन्तु चेतन का मन जैसे एक दम निस्पन्द-सा हो गया था।

चन्दा ने एक-दो बार बात चलाने का प्रयास भी किया, पर चेतन के

---

*हमारा तो चिड़ियों का झुण्ड है, ऐ पिता हम चिड़ियों सरीखी भिन्न-भिन्न दिशाओं में उड़ जायँगी।

ऐ पिता हमारी उड़ान बड़ी लम्बी है, न जाने किस-किस देश जायेंगी?

संक्षिप्त उत्तरों ने उसे हतोत्साह कर दिया था। वह कई दिनों की थकी हुई थी, इस लिए चेतन की उदासीनता ने उसके शरीर में सोयी हुई नींद उसकी पलकों में भर दी थी और वह चेतन से शिमले की बातें पूछते-पूछते सो गयी थी।

उसका इस तरह सो जाना चेतन को बुरा लगा था, परन्तु उसका ध्यान उस समय अपने अथवा अपनी पत्नी के मानापमान की ओर न था। उसके सामने तो नीला की बिदाई का दृश्य बार-बार आ रहा था। और उसके कान निरन्तर सुन रहे थे—वही मधुर-करुण गीत—

सारी लम्बी उडारी वे ख़बरे किस देस जाना !

लम्बी उड़ान ! कितनी लम्बी !! कहाँ जालंधर और कहाँ रंगून ? न जाने सदियों पहले अपने मायके और सहेलियों से दूर, अपनी ससुराल में बैठी किस दुःखिनी की भावनाएँ उस करुण गीत में फूट पड़ी थीं। सदियाँ बीत गयीं, पर उस दुःखिनी की परवशता उसी प्रकार बनी हुई है।

चेतन सोचता था, इस गीत को सुन कर नीला के हृदय पर क्या बीत रही होगी ? कितना पूरा उतरता था उसकी स्थिति पर यह गीत :

साडी लम्बी उडारी वे....

बाहर वर्षा थम गयी थी। चेतन अपनी पत्नी के साथ बरसाती में लेटा था। वह उठ कर छत पर चला आया। बादल छँट कर नीलाम्बर पर बहे जा रहे थे। हल्की-हल्की समीर चल रही थी। दूर सामने के मकान की ओट में छिपा हुआ पंचमी का चाँद अपनी मन्द ज्योत्सना से काली छत को बादलों की बराबरी करने से रोक रहा था। चेतन के देखते-देखते रजत-वक्र सींग की नोक-सी छत के ऊपर बादल से बाहर निकलने लगी। आकाश में कई जगह फटे हुए मेघों में नीलिमा चमक उठी, नीचे के अंधकार में सोये-खोये-से मकानों की रेखाएँ उभर आयीं। धीरे-धीरे वह वक्र सींग बाहर निकल आया, कुछ क्षण तक बहते हुए बादलों पर तैरता रहा, फिर शायद कोई भयानक काला बादल चढ़ दौड़ा और वह जैसे एक ओर से निकला था, वैसे ही दूसरी ओर से बढ़ती हुई उस कालिमा में डूब गया। मकान

की छत फिर बादलों की बराबरी करने लगी। मकानों की रेखाएँ फिर तिमिर के उस बढ़ते सागर में डूब गयीं।

चेतन कुछ क्षण छत पर चक्कर लगाता रहा फिर सीमेंट की ठंडी गीली रौंस (शहनशीन) पर बैठ गया। बायीं ओर मकानों की छतों के ऊपर दिखायी देता हुआ 'बरने पीर' का नीम एक बड़ा-सा धब्बा बन कर रह गया था। चेतन निर्निमेष उस धब्बे की ओर देखता रहा, फिर उसी धब्बे पर नीला के विवाह की समस्त घटनाएँ अपने छोटे-से-छोटे ब्योरे के साथ चित्रित हो उठीं।

दिन भर चेतन उखड़ा-उखड़ा-सा घूमता रहा। अपने सहपाठी मित्रों को उसने उनके घरों से जा खोद निकाला था और उनकी संगति में किसी-न-किसी प्रकार समय का गला घोंट कर, वह संध्या को अपने चौबारे में जा लेटा था। जब बारात खाना खाने आयी थी तो वह अस्वस्थता का बहाना कर के वहीं लेटा रहा था।

किन्तु जब बारात जाने लगी और बाजे बजने लगे तो उसके लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया था। उठ कर वह आँगन की मुँडेर पर जा बैठा और जब नीचे आँगन में उसने त्रिलोक की आवाज़ सुनी तो उसका दिल धक-धक करने लगा।

नीचे चची और जठीए (जेठ के लड़के) में क्या बातें हुईं, यह चेतन न जान सका, किन्तु जब त्रिलोक चला गया तो वह सब जानने के लिए वह आतुर हो उठा। अपनी छोटी साली शीला को अपने 'जीजा जी' के लिए पानी का गिलास लाने का आदेश दे कर वह फिर अन्दर चारपाई पर जा लेटा था। जब शीला गिलास ले आयी तो उसने एक घूँट भर कर गिलास को सिरहाने के ताक में रख दिया और अपनी उस नन्हीं मुन्नी साली को गोद में ले कर पूछा—"नीचे कौन आया था शीलो ?"

और भोली-भाली शीला ने अपने जीजा जी की प्यार भरी गोद में बैठे-बैठे कुछ बता दिया था कि और कौन आता, त्रिलोक आया था। नीला बहन से हँसी-मज़ाक करता रहा। बेचारी नीला लजा-लजा कर रह गयी,

पर उसे लज्जा न आयी।

और अपने जीजा जी के गले में बाहें डाल कर उसने कहा, "आप तो बड़े 'बीबे'[1] हैं जीजा जी, पर त्रिलोक बड़ा 'गोला'[2] है!"

"क्या मज़ाक किए त्रिलोक ने तुम्हारी बहन से शीलो?"

पर शीलो बेचारी इस सम्बन्ध में अपने जीजा जी को कुछ न बता सकी। चेतन ने उसे गोद से उतार दिया और चुपचाप जा कर फिर बिस्तर पर लेट गया।

रात को चन्दा उसे स्वयं खाना खिलाने आयी थी और उसने चेतन को बताया कि सुबह ही नीला विदा हो जायगी। वर को शीघ्र ही अपनी नौकरी पर जाना है, इसलिए तीन से अधिक 'रोटियाँ'[3] वे लोग नहीं चाहते, सुबह नाश्ते के बाद ही वे नीला को विदा कराके ले जायेंगे। चन्दा ने उससे यह भी प्रार्थना की थी कि यदि उसका जी वैसा ख़राब न हो तो नीला की विदाई के समय चेतन को अवश्य नीचे जाना चाहिए। गौना साथ ही दिया जा रहा था, इसलिए चन्दा ने उसे बताया था कि पहले नीला सुबह ही विदा हो कर बारात के अड्डे (धर्मशाला) में जायगी। फिर जब बारात नाश्ते को आयगी तो साथ ही उसे लेती आयगी और दस बजते-बजते दूसरी और अन्तिम विदाई हो जायगी। चन्दा ने पाँच रुपये भी उसके सिरहाने रख दिये थे कि विदाई के समय वह नीला के हाथ में रख दे।

चेतन ने कुछ उत्तर न दिया था। रुपये उसने तकिये के नीचे रख लिये थे और चुपचाप लेटा रहा था। तब चन्दा ने पूछा—"क्या आपका जी बहुत ख़राब है?"

"नहीं-नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, मैं दे दूँगा शगुन के रुपये!" और चन्दा आश्वस्त हो कर नीचे चली गयी थी।

पर चेतन का जी वास्तव में ख़राब था! तन से न सही मन से वह अस्वस्थ था। वहीं लेटे-लेटे एक बार फिर उसके सामने इलावलपुर की घटना

---

[1] बीबा = अच्छा, = [2] गोल = बुरा, [3] दावतें

घूम गयी। किस तरह उसकी बीमारी की ख़बर सुनते ही नीला उसकी सेवा-शुश्रूषा में आ जुटी थी, उन चार-छै दिनों में वह कितना उसके समीप आ गयी थी। किन्तु अब ?....वह कितना भी बीमार क्यों न हो जाय, वह न आयगी। चेतन का जी चाहा, वह सचमुच बीमार पड़ जाय, मरणासन्न हो जाय। वह मर रहा है, यह सुन कर तो वह एक बार अवश्य आयगी। मर कर वह अपने उस पाप का प्रायश्चित्त कर देगा जो उसने अनजाने ही नीला का जीवन नष्ट करने में किया था। तब उसकी विकृत-अस्वस्थ-कल्पना के सामने उसकी अपनी मृत्यु का दृश्य भी घूम गया—वह मर रहा है; चन्दा उसके सिर को गोद में लिये बैठी है; उसकी सास, उसकी माँ उसके भाई सब आँखों में आँसू भरे उसके आस-पास बैठे हैं। बाहर बाजे बज रहे हैं। नीला को जाना है। वह रुक नहीं सकती। उसके मिलिट्री-एकाऊंटेंट पति सैनिक के नियन्त्रण से बँधे हैं। उन्हें रंगून पहुँचना है। उनकी नव-परिणीता पत्नी के 'जीजा जी' की बीमारी या मौत, कोई भी घटना उन्हें नहीं रोक सकती। जाने से पहले नीला क्षण भर के लिए आती है। अपने जीजा का मरणासन्न देख कर दो आँसू आप-से-आप उसके गालों पर ढुलक आते हैं। फिर वह चुपचाप उसके चरणों को छू कर, मुँह फेर कर भाग जाती है....

और चेतन की रात करवटें बदलते बीत गयी थी। दूर किसी मुर्ग ने प्रातः की बाँग दी थी जब उसका मस्तिष्क थक कर सो गया था।

सुबह जब वह जगा था तो बारात नाश्ता करके जा चुकी थी। नीला की पहली बिदाई हो चुकी थी और वह दूसरी और अन्तिम बार जाने को तैयार थी।

"जीजा जी उठिए, जीजा जी उठिए!" शीला के निरन्तर झकझोरने से वह उठा था और यद्यपि उसने 'चलो मैं आता हूँ शीलो' कह कर फिर लेटने का प्रयास किया था, किन्तु शीला ने उसे सोने न दिया था, "चन्दा बहन ने आपको बुलाया है," उसने उसे फिर झकझोरा था, "नीला जा

रही है ।"

वह उठ कर बैठ गया था और शीला नीचे भाग गयी थी। पर चेतन नीचे न गया था। मन में उसने निश्चय कर लिया था कि जब नीला लम्बा-सा घूँघट निकाले अपने बड़े भाई या चाचा की गोद में बैठ, अपने वर के पीछे-पीछे ताँगे में जा कर बैठ जायगी तो वह बिना उससे आँखें मिलाये उसके हाथ में पाँच रुपये की भेंट दे आयगा।

न जाने क्यों, न जाने कहाँ से, एक अज्ञात संकोच उसके मन में आ कर बैठ गया था। वह सोचता भी था कि वह किससे रूठा हुआ है? नीला से? उससे रूठने का उसे क्या अधिकार है? इसका उत्तर उसे न मिला था। किन्तु उत्तर न पा कर उसके मन का संकोच कम न हुआ और न वहाँ से वह हिला ही था।

अभी शीला को गये चन्द ही मिनट हुए होंगे कि चन्दा भागी-भागी ऊपर आयी....चलिए भी! आप अभी तक यहीं बैठे हैं।"

"तुम घबराओ नहीं," चेतन ने अपनी पत्नी को आश्वासन देते हुए कहा था, "मैं जा कर नीला को शगुन दे आऊँगा। अभी मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं।

"आपका जी ठीक नहीं तो आराम कीजिए," चन्दा घबरा गयी थी, "क्या करूँ इतना काम है नीचे कि आपके पास बैठ नहीं पायी। नीला की बिदाई हो जाय तो आपके सिर में तेल मल दूँगी। लाइए रुपये दे दीजिए, आपकी ओर से मैं उसको शगुन दे दूँगी।"

किन्तु चेतन को यह स्वीकार न था। चन्दा को तसल्ली देते हुए बोला, "नहीं, नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, तुम चलो मैं आता हूँ।"

और चन्दा के जाने के बाद वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि कब बाजे बजने लगें, कब नीचे स्त्रियाँ नीला को ले कर गाती हुई चलें तो वह भी नीचे उतर कर उनके पीछे हो ले।

तभी बाजे बजने लगे और स्त्रियों ने गीले भारी स्वर में गाना आरम्भ किया :

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबल असाँ उड़ जाना
साडी लम्बी उडारी वे
खबरे किस देस जाना

चेतन के जी को कुछ होने-सा लगा था। उसे अपने आप पर क्रोध हो आया था। क्यों उसने चन्दा को रुपये न दे दिये। उसका जी कहीं भी जाने को न हो रहा था। वह चाहता था, वहीं लेटा रहे और इतने दिन से मन में एकत्र होने वाली पीड़ा को आँखों के रास्ते बहा दे।

क्षण भर को वह फिर लेट गया। जब बाजे दूर चले जायँगे तब वह उठेगा, उसने मन-ही-मन सोचा और करवट बदली। पर तभी सीढ़ियों में उसे गहनों-कपड़ों में लदी नीला छम-छम करती हुई आती दिखायी दी।

चेतन उठ कर बैठ गया। उसका हृदय धक-धक करने लगा।

नीला चौखट में आ कर खड़ी हो गयी। दोनों हाथ बाँध कर मस्तक तक ले जाते हुए उसने लगभग आर्द्र स्वर में कहा, "जीजा जी नमस्ते, मेरी भूल-चूक क्षमा कर दीजिएगा।"

वह तेज़ी से मुड़ने को थी कि चेतन ने उठ कर उसका हाथ थाम लिया। उसके क्रोध-ईर्षा, दर्प-संकोच, मान-अपमान की चट्टानें जैसे नीला के एक ही वाक्य से पानी-पानी हो कर बह गयीं।

"नीला मुझे क्षमा कर दो, मैंने सचमुच तुम्हारा बड़ा अपराध किया है!" और वह उसके चरणों में झुक गया!

"जीजा जी आप क्या करते हैं।" नीला ने उसे कंधों से थामा, और फिर पीठ मोड़ कर सिसकी को दबाती हुई वह नीचे को भाग गयी।

बादलों की नयी तहें आकाश पर छा गयी थीं, पंचमी के चाँद की ज्योत्सना गहरे अंधकार में जा छिपी थी; मकान, उनकी छतें, बरसातियाँ और बरने पीर का नीम—सब अंधकार का अंग बन गये थे। एक दो बूँदें

चेतन की नाक पर गिरीं। उसके विचारों का क्रम टूट गया। गीली रौंस पर बैठे-बैठे उसकी कमर दुखने लगी। वह उठा, अन्दर बरसाती में चला गया और चुपचाप बिस्तर पर जा लेटा।

बाहर ज़ोर-ज़ोर से वर्षा होने लगी और आँगन के जँगले पर पड़ी हुई टीन की चादरें वर्षा के निरन्तर थपेड़ों से क्रन्दन कर उठीं।
